ZERO BUDGET NATURAL FARMING

भारत में 70 करोड लोग हैं. जो खेती पर जिदा हैं मतलब किसानो की संख्या 70 करोड हैं.उनको हर साल आपने खेतो में 5 लाख कारोड का जहर डालना पडता है.जो बाद में हमारे ही पेट आ रहा हैं ! यदि हम उनको देसी खेती करने का ये आसान सा फार्मूला समझा दे. तो हम हर साल उनका और देश का 5 लाख करोड बचा सकते है! और ये जहर खाने से लोगो को जो बीमारीया हो रही हैं. और इलाज पर खर्चा भी बचा सकते है !!

BY Rajiv Dixit

किसान साथियों, हरित क्रांति को क्रांति कहा गया है। क्या हरित क्रांति वास्तव में क्रांति है ? क्रांतिका अर्थ क्या है ? क्रांतिका अर्थ है, अहिंसक नवनिर्माण। क्रांतिका परिणाम विनाश नहीं होता। वह तो सृजन क्रिया है। क्रांतिका उद्देश्य होता है, राक्षस तत्व से संत तत्व की ओर ले जाना। हरित क्रांति हिंसा की रूपांतरण क्रिया है, नवनिर्माण नहीं। रासायनिक खाद और विषैली कीटनाशक दवाओंका उपयोग करके भूमि में अनंत करोडों जीव–जंतूओं का विनाश, अनंत पंछियों का विनाश और कैन्सर, मधुमेह (डायबिटीस), हृदयरोग, एड्स, जैसी मानवी बीमारियों का निर्माण करके मानव का विनाश। जो भूमि बीस साल पहले प्रति एकड़ सौ टन गन्ने की या चालीस क्विंटल गेहूँ की उपज देती थी, वहाँ अब, हरित क्रांति के कारण, भूमि इतनी बंजर और निरउपजाऊ बन गयी है, की उस भूमि में अब घास भी उगती नहीं है। ऐसी लाखों एकड़ भूमि है, जहाँ घास नहीं उगती। और मानवी स्वास्थ्य का क्या? क्या पचास साल पहले डायबिटीस, हार्ट अटैक, कैन्सर, एड्स जैसी बीमारियाँ विशेष रूप में चर्चा में थीं? एकाध दूसरा पेशंट दिखाई देता था। आज यह बीमारियाँ इतनी तेजी से बढ़ रही है, की मानव विनाश की कगार पर खड़ा है। क्या कारण है। जहरीली विनाशक हरित क्रांति। हरित क्रांति का परिणाम केवल विनाश है। भूमि, जीव, पाणी, पर्यावरण और मानवी स्वास्थ का विनाश। अगर, हरित क्रांति का अंतिम परिणाम विनाश ही है, तो उसे क्रांति कैसे कहा जाता है? हरित क्रांति क्रांति नहीं, एक शोषणकारी विश्वव्यापी षड्यंत्र है। किसानों का और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का शोषण, यही हरित क्रांति का कार्यक्रम है।

हरित क्रांतिका निर्माण कैसे हुआ? दुनिया में कुछ लोग हैं, जिन्हें श्रम न करके अपनी संपत्ति बढाना है। वे खुद को संपत्ति कमान में सबसे आगे रखना चाहते हैं। संपत्ति का निर्मिती कौशल्य तो ईश्वर ने मानव के हात नहीं दिया, वह तो निसर्ग के हात में दिया है। अगर मानव निर्मिती नहीं कर सकता, तो संपत्ति कैसे बढ़ाएँ? तो अगर आप अपनी संपत्ति बढाना चाहते हो, और अगर वह क्षमता आप में नहीं है, तो कहीं से भी चोरी करके, लुटकर या शोषण करके लाना होगा। वही हुआ। उन्होंने संपत्ति बढाने का रास्ता शोषण को चुना; लेकिन, जहाँ निर्मिती है, वहीं शोषण होता है। निर्मिती खेती में होती हैं, तो शोषण केवल खेती में हो सकता है। अगर तिल्ली का एक दाना हम भूमि में डालते है, तो उस एक पौधे से हमें चार हजार दाने मिलते हैं। अगर धान का एक दाना भूमि में डालते हैं, हजारों दाणे उस पौधे से मिलते है। जहाँ जमाव होता है, वहीं से उठा सकते हैं। तो शोषण खेती में है। लेकिन, कारखाने में शोषण नहीं होता। क्योंकि कारखाने में निर्मिती क्रिया नहीं है, रूपांतरण क्रिया है। अगर कोर्ठ वस्तु बनाना चाहते हो, तो अगर सौ किलो कच्चा माल यंत्र में डाला जाए, तो बाहर निकलने वाली वस्तु सौ किलो की नहीं होती। वह नब्बे किलो की होती है, पंचान्नवे किलो की होती है। घट है। जहाँ घट है, वहाँ शोषण नहीं। शोषण केवल खेती और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ही होता है। तो उन्होंने अपनी एक विश्वव्यापी शोषण व्यवस्था बनाई, जिसको नाम दिया गया हरित क्रांति। उन्होंने सोचा कि, अगर किसानों का शोध्षण करना है, तो वह खरीदने के लिए शहर आना चाहिए। क्योंकि, जब किसान कुछ संसाधन खरीदने के लिए शहर आएगा तभी गाँव का पैसा या संपत्ति (estate) शहर आएगी और बाद में शहर से संसाधन निर्मिती करने वाले कंपनी की यानी शोषणकारी व्यवस्था की (System) ओर जाएगी। हरित क्रांति चाहती है, की, देहातों में या ग्रामों में गृहस्थी की कोई भी वस्तु (Thing) या कृषि का कोई भी संसाधन न निर्माण किया जाए, जहाँ निर्माण चालू है, वह बंद हो जाए, और देहातों से या गाँवों से हर किसान मजदूर हर वस्तु या संसाधन खरीदने के लिए शहर आये। इतना ही नहीं, हरित क्रांति चाहती है, कि देहातों में या गाँवों में ग्राम न्याय पंचायत न रहे, न्याय पंचायत न्याय न दे, न्याय मिलने के लिए वह ग्रामीण हर समय शहरों के चक्कर लगाता रहे, और न्याय मिलने की व्यवस्था इतनी जटिल बने की, न्याय कई सालों बाद मिले, ताकि, उसका शहर आना निरंतर चलता रहे, यात्रा में और वकालत में या न्यायालय में ज्यादा से ज्यादा पैसे खर्च (व्यय) होकर उसका पैसा शहर में बरबाद होता रहे। पहले गाँवों में जो पंचायत थी, वह न्याय देती थी। न्याय देवता की आँखों पर पट्टी बँधी नही थी। पंचायत को मालूम होता था, की गाँव का कौनसा आदमी गुनाहगार होगा, क्योंकि, वे उसको उसके बचपन से पहचानते थे। तो, उससे सही न्याय होता था। लेकिन हरित क्रांति लाने वाले शोषणकारी व्यवस्था ने (System) गाँवों में होने वाला न्याय शहरों में भगा लिया; न्याय देवता के आँखों पर पट्टी बाँधी; जिससे न्याय देवता सत्य न जाने सके, केवल वही सत्य माने, जो न्यायालय में (कोर्ट में) ॲडव्होकेट (वकील) कोर्ट के सामने रखेगा। वह ॲडव्होकेट या वकील असल में सत्य नहीं जानता, वही सत्य मानता है जो उसे गुनाहगार बताता है। और दूसरी बात, न्यायदान की

इतनी पादाणे रखी, जैसे तालुका, जिला, हाईकोर्ट, सुप्रीम कोर्ट, ताकि न्याय तुरंत न मिले और न्याय में बहुत ज्यादा से ज्यादा विलंब हो, कोर्ट की तारीख पर तारीख पड़े और किसान मजदूर हर बार शहर आये, तो पैसा देहातों से और गाँवों से शहर निरंतर आता रहे। गाँवों का शोषण होता रहे।

हरित क्रांति का और एक उद्देश्य (मतलब) था की, देहातों का किसान या मजदूर अपनी स्वास्थ चिकित्सा के लिए शहर आने पर मजबूर हो। देहातों में स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ न हो। ईश्वर ने (नास्तिक लोग ईश्वर शब्द की जगह प्रकृति या निसर्ग शब्द ले सकते हैं) मानव को प्रतिरोध शक्तिका अद्‌भुत वरदान दिया है। वह प्रतिरोध शक्ति बीमारियों को आने नहीं देती। हमारे शरीर में जो आँतड़ी (intenstine) है, उसमें कुछ उपयुक्त सूक्ष्म जिवाणु (bacteria) होते है, जो हमें बीमारियों के प्रति प्रतिरोध शक्ति देते हैं। ऊन उपयुक्त जीवाणुओं का विनाश जंतुनाशक (Antibiotic) दवाओं से होता है। इस शोषणकारी व्यवस्था ने, हमें हरित क्रांतिकी तरह औषधी विज्ञान (Medical Science) द्वारा ॲलोपॅथी शास्त्र हम पर थोपकर उन जंतुनाशक (Antibiotic medicines) दवाओं द्वारा हमारे शरीर में उन प्रतिरोध शक्ति दनेवाले जंतुओं को नष्ट करने का षडयंत्र रचाया। ताकि, हमारे शरीर की प्रतिरोध शक्ति नष्ट हो, और हमें जानलेवा बीमारियाँ हों। मृत्यु की डर से हमें उन आधुनिक दवाओं को खरीदने पर मजबूर किया गया और हमारी प्राचीन स्वास्थ्य सेवाएँ थी, जैसे आयुर्वेद, बारहक्षार पध्दति, यूनानी, होमिओपॅथी, जो ॲलोपॅथी से भी कारगर और उपयोगी है, उनको दबा दिया गया। ॲलोपॅथी की शिक्षा इतनी महंगी बना दी गयी की कोई साधारण किसाना का लड़का वह शिक्षा न ले पाये, देहातों में आधुनिक ॲलोपॅथी चिकित्सा न मिले। और किसान या मजदूर महंगी चिकित्सा लेने के लिए अपना सब कुछ बेंचकर शहर आये और देहातों का पैसा शहर आता रहे।

उनको याने सिस्टीम को मालूम हुआ की किसान खरीदने के लिए शहर आता ही नही। स्वयं के रक्षित, स्थानीय बीज बोता है, देशी गाय का गोबर डालता है और दवाके स्वरूप गोमूत्र का और नीम की पत्तियों का उपयोग करता है। शहर में आता है तो केवल अपनी कृषि उपज बेचने के लिए। मैं सो साल पहले की बात कर रहा हूँ। उनको किसानों को खरीदने पर बाध्य करना ही थी। तो उन्होंने सोचा, यह किसान श्रद्धालु होता है, वह जहाँ चमत्कार दिखाई देता है, वहीं वह नमस्कार करता है, नतमस्तक होता है। उन्होंने सोचा कि भारतीय किसान स्थानीय (Local) बीज बोता है। उनका उत्पादन कम होता है। जैसे स्थानीय धान किस्में (Paddy) प्रति एकड़ पंद्रह से अठारह क्विंटल पैदास देता है, स्थानीय गेहूँ की किस्में प्रति एकड़ छह से लेकर दस क्विंटल प्रति एकड़ पैदास देती है। अगर उनको ऐसा चमत्कार करने वाला बीज दिया जाये, जो प्रति एकड़ चालीस पचास क्विंटल धान या गेहूँ की पैदास दे, तो श्रद्धालु किसान यह चमत्कार देखकर जरूर नतमस्तकह ोकर यह संकर बीज खरीदेगा। उसके अंदर की पिपासा (तृष्णा) वह संकर बीज खरीदने पर उसे बाध्य करेगी। वह जरूर इस महंगा संकर बीज खरीदने के लिए शहर आएगा; तो देहातों का पैसा शहर आएगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि किसानों को केवल बीज खरीदने के लिए ही शहर नहीं लाना है। वह बार–बार हर वस्तु या संसाधन खरीदने को शहर आये, ऐसी व्यवस्था खडी करनी है। तो उन्होंने वह चमत्कार करने वाले अधिक पैदास देने वाले संकर बीज इस तरह निर्माण किए, जो रासायानिक खाद नहीं डालते तो उसकी फसल बढ़ती ही नहीं। तो वह किसान यह महंगे संकर बीज भी खरीदेगा और रासायनिक खाद भी खरीदेगा। लेकिन यह संकर बीज इस तरह निर्माण करे, तांकि उनमें कीटों के प्रति और बीमारियों के प्रति कोई प्रतिरोध शक्ति न बचे। साथ–साथ रासायनिक खाद इस तरह निर्माण करना है कि, जो भूमि में डालते ही भूमि निर्जीव बनेगी, बंजर बनेगी, भूमिकी प्रतिरोध शक्ति नष्ट होगी, तो उस बंजर भूमि में उगने वाली संकर फसल कमजोर होगी, तो उस पर बहुत सारे फसल को खाने वाले कीट ाऐर बीमारियाँ आयेगी, तो वह किसान इन कीटों का खातमा करने के लिए विषैलरी कीटनाश दवा भी खरीदेगा और फंगीसाइट दवा भी खरीदेगा तो देहातों का पैसा शहर आता रहेगा। याने वह महंगे संकर बीज भी खरीदेगा, साथ में रासायनिक खाद भी खरीदेगा, किटनाशी दवा भी खरीदेगा और रासायानिक खाद से भूमि सीमेंट जैसी कठिन होती है तो खुदका लकडीका हल उस कठिन भूमि को छेद नहीं सकता। वे चाहते थे कि किसान खुद बनाया हुआ कोर्ठ भी काश्तकारी की (cultivation) औजार न बनाये। वह हर औजार कारखाने में बनाया हुआ ही उपयोग में लाये। रासायनिक खाद भूमिको इस तरह कठिन बनाने के लिए लाये गये, ताकि उस भूमि की मशागत (cultivation) किसी लकड़ी की हल से या बखर से (harrow) न हो, और किसान आखिर लोहे के हल या ट्रॅक्टर खरीदने पर मजबूर हो; अपने लकड़ी के औजार

छोड़कर ट्रॅक्टर भी खरीदेगा। किसान का और गाँव का सारा पैसा शहर आता जाएगा। उनको मालूम पड़ा कि किसान यह जरूर खरीदेगा, लेकिन खरीदने के लिए उनके पास पैसा नहीं है, तो वह कैसे खरीदेगा? उनको मालूम हुआ, यह किसान उधारी में हाथी भी खरीदता है, तो क्यौ न उसे उधार देने की व्यवस्था की जाये? इसलिए उन्होंने कर्जा देने के लिए बैंक, पतसंस्थाये निर्माण की। किसानों को बीज, खाद, दवा, औजार खरीदने के लिए खींचकर शहर लाने की सारी सुव्यवस्था निर्माण की गयी, जिसका नाम है, हरित क्रांति।

उन्होंने संकर बीज निर्माण करने के लिए कृषि विश्वविद्यालयों का निर्माण किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बेकार पड़े हुए गोला बारूद और बम बनाने में काम आने वाले रसायनों के कारखानों में रासायानिक खाद और कीटनाशी दवाओंका निर्माण कार्य चालू करके उन कारखानोंका रासायनिक खाद और कीटनाशी दवाओं का निर्माण कार्य चालूं करके उन कारखानोंका सदुपयोंग (?) किया। कृषि विश्वविद्यालयों को और सरकारी कृषि संशोधन संस्थाओं को आधुनिक कृषि तंत्र का अविष्कार करने का कार्य सौंपा गया। सरकारी कृषि विभाग द्वारा यह तंत्र किसानों तक पहुँचाने के लिए सुनियोजित व्यवस्था खडी की गयी। किसानों को कर्जा देने के लिए सहकारी पतसंस्थाओं का और जिल्हा केंद्रीय सहकारी बैंको का जाल बिछाया गया। सहकार क्षेत्र में अलग कानून बनाये गये, जिनसे कर्जा लेने वाला किसान अगर कर्जा वापस नही करता है तो उस पर सरकारी जब्ती लायी जा सके और उसकी इज्जत खुलेआम बाजार में नीलाम हो सके। हरित क्रांति के पहले किसान मजदूरों के लिए दैनंदिन उपजीविका लिए और गृहस्थी चलाने के लिए आवश्यक हर वस्तु या संसाधन गाँव में ही पैदा होते थे। हमारे गाँवों में हर वस्तु बनाने के छोटे–छोटे लघु उद्योग होते थे। कपड़ा बनाने वाला बुनकर, तेल बनाने वाला तेली, लोहे के औजार बनाने वाला लोहार (लुहार), जूते बनाने वाला चमार, खेती के औजार बनाने वाला और घरों की लकडी का कार्य करने वाला मिस्त्री, आदि सभी देहाती उद्योग संभालने वाले परंपरा से चले आए थे। कोई भी वस्तु बाहर से देहातो में नहीं आती थी (बगैर नमक)। ऊन लघु उद्योगों को आवश्यक कच्चा माल (raw material) गाँवों में ही पैदा होता था। गाँवों से कोई भी पैसा शहर नहीं जाता था, उलटा जब किसान अपनी अतिरिक्त उपज शहरों की मंडियों में बेचने के लिए जाता था, तब शहर से पैसा गाँव आता था। इस शोषणकारी व्यवस्थाने हरित क्रांतिके पहले औद्योगिक क्रांति (industrial revolution) लाकर हमारे देहातों में निर्मित वस्तुओं से सस्ती वस्तुएँ देहातों में व शहरी उपभोक्तओं को देकर हमारे ग्रामीण लघु उद्योग बंद करने के लिए मजबूर किया। इस तरह इस हरित क्रांतिने किसानों के इर्द गिर्द एक गहरा सुनियोजित सुनियंत्रित शिकंजा कसकर खड़ा कर दयिा, एक चक्रव्यूह उसके सामने तैयार करके खडा कर दिया, जिसका नाम है हरित क्रांति।

कृषि विश्वविद्यालयों ने इस चक्रव्यूह में प्रवेश करने की शिक्षा जीव, भूमि, पाणी, पर्यावरण और मानवी स्वास्थ्य नष्ट करने वाले कृषि विज्ञान का (विज्ञान? या अज्ञान?) शोध कार्य करके, और उन विनाशकारी और किसानों को आत्महत्याओं के तरफ खीचकर ले जाने वाले रासायनिक कृषि के तंत्रज्ञान (technology) किसानों को सरकारी कृषि विभागों द्वारा प्रदाण की, लेकिन उस चक्रव्यूह से बाहर निकलने का मार्ग नहीं बताया गया। जिससे वह कर्जे में पूरा डूब जाये, उसके फसल उपज को लाभकारी दाम कभी न मिले, ऐसी व्यवस्था खडी करके उसे कर्जा घटाने का अवसर ही न हमलने दे और अंत में वह अपनी खोई हुई इज्जत बचाने के लिए आत्महत्या ही करे, दूसरा रास्ता न रहे, ऐसा चक्रव्यूह किसानों के सामने खडा करके उनको उस व्यूह में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया। अगर आप इस चक्रव्यूह से बाहर निकलना चाहते हैं तो आपको कोई मार्ग नहीं दिखाई देगा। क्योंकि हरित क्रांति ने बाहर पड़ने के सभी मार्ग पहले ही बंद कर रखे हैं। केवल एक ही मार्ग आपके सामने हैं. एण्डोसल्फान का एक घूंट–आत्महत्या– Suicide। आज हर दिन सैंकडो किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं। हमारी केंद्र सरकारी किसानों की आत्महत्याओं को रोकने के लिए हजारों करोड रूपये राशी के पॅकेजेस किसानो के सामने रख रही है, जो पॅकेजेस किसानों को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होने से बचाने के बजाएँ, उन्हें, औश्र तेजी से आत्महत्याओं की ओर ले जाने का कार्य करने वाले है। इन पॅकेज में आत्महत्याओं के पीछे कारणों का अभ्यास नहीं है; किसानों को और अधिक ज्यादा से ज्याद ऋण देकर और ऋणों के पहाड़ो के नीचे दबाने का केवल एक महलम निहित है। इस ज्यादा ऋणों से वह जरूर आत्महत्या करने पर मजबूर होगा। किसानों को आत्महत्या पर मजबूर करके कोई किसान का बेटा खेती नहीं करेगा, वह शहर नौकरी के लिए दौडेगा, अपनी खेती कंपनियों को बेचेगा और इसे कंपनियाऋ

यांत्रिक खेती करके संपूर्ण खेती का यांत्रिकीकरण करेगी तो स्वालंबी कृषि व्यवस्था बरबाद होगी, ग्रामीण कृषि संस्कृति नष्ट होगी। आत्महत्या को अगर रोकना है, तो किसानों को ऋण हीन लेना पड़े, ऐसी कृषि विधिकी आवश्यकता है। हरित क्रांति की देन रासायनिक कृषि (Chemical farming) और अब किसानो पर थोंपी जा रही सेंद्रीय कृषि (Organic farming) किसानों को कुछ संसाधन खरीदने पर मजबूर करती है, निसर्ग व्यवस्था का विध्वंस करती है, किसानों को कर्जे में डूबाकर आत्महत्या की तरफ दौडाती है लेकिन, घबराइएँ नहीं। इस विनाशकारी हरित क्रांति के चक्रव्यूह से बाहर पड़ने का मार्ग मै आपको बताने जा रहा हूँ– वह है निसर्ग कृषिका जीरो बजट।

क्या है यह नैसर्गिक कृषि का जीरो बजट ?

नैसर्गिक कृषि का जीरो बजट का अर्थ है, चाहे कोई भी फसल हो, या फल की फसल हो, उसका उपज मूल्य जीरो होगा। (Cost of production will be zero)। क्योंकि निसर्ग कृषि में कोई भी वस्तु या संसाधन बाहर से खरीदकर नहीं लाना पड़ता है। फसलों को बढ़ने के लिए जो संसाधन चाहिए वह उनके जड़ोंके पास ही पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। ऊपर से कुछ भी देने की जरूरत नहीं। क्योंकि हमारी भूमि अन्नपूर्णा है। हमारी फसलें भूमि से कितने तत्व लेती है। केवल 1.5 से 2.0 प्रतिशत लेती है। बाकी 98 से 98.5% हवा और पानी से लेती है। ये कृषि विश्व विद्यालय झूठ कहते हैं, कि आपको ऊपर से खाद और रासायनिक खाद डालना ही पड़ता है। वास्तव में अगर मूलभूत विज्ञान कहता है। कि 98% हवा–पानी से ही फसलों का शरीर बनता है, तो ऊपर से कोई संसाधन डालने की जरूरत ही कहाँ पैदा होती है? कोई भी हरा पत्ता (पौधों का या पेडों का) हर दिन दिनभर खाद्य निर्माण करता है। वह पत्ता खाद्य निर्माण करने का कारखाना है। किन संसाधनों से वह पत्ता खाद्य बनाता है? वह हवा में से (वातावरण से) कर्बाम्लवायु (Carbon di oxide) और नत्र (Nitrogen) लेता है; मानसून के बादलोंने बरसाया हुआ बारिश का पानी कुएँ या कनॉल से उठाकर उससे सिंचित भूमि से जड़ों द्वारा पानी उठाता है; और सूरज से सौरशक्ति (Per sqft/per day/12.5Kg.calory) लेता है। इन चीजोंसे वह खाद्य तैयार करता है। कोई भी फसल या पेड़ पौधोंका का हरा पत्ता अपनी प्रति चौ. फीट सतह पर दिन के दस घंटों में 4.5 ग्रॅम खाद्य (कच्ची शुगर – Carobhydrates) बनाता है, जिसमें से (4.5 ग्रॅमसे) हमें 1.5 ग्रॅम अनाज के दाणे मिलते हैं या 2.25 ग्रॅम फल या टनेज मिलते हैं। यह खाद्य बनाने के लिए आवश्यक हवा, सौर शक्ति और पानी ये संसाधन वह निसर्ग से लेता है, किसी किसानों से नहीं लेता। मानसून के बादल पानी का बिल नहीं भेजते, हवा कर्बाम्लवायु का बिल नहीं भेजती या सूरज सौरशक्ति का बील नहीं भेजती। सब मुफ्त में या फोकट में मिलता है। हरे पत्ते जब हवा से कर्ब–द्वि–प्राणीद (Co2) वायु उठाते हैं, तो किसी कृषि विश्वविद्यालय का तंत्र (Technology) उपयोग में लाते नहीं; मानसून के मेघ जल वर्षा बरसते है, तो कृषि विश्वविद्यालय का तंत्र उपयोग में लाते नहीं और पत्ते सूरज से सौर शक्ति लेते हैं तो कृषिविद्यालयों का तंत्र

उपयोग में लाते नहीं। बाकी बचा 1.5% खनिजक्षार जो जड़े भूमि से लेती है तो फोकट में लेती है, उस भूमि से लेती है, जो मूलतः अन्नपूर्णा है; और उसके लिए कृषि विश्वविद्यालयों का तंत्र उपयोग में लाती नहीं।

यह अगर वास्तविक वैज्ञानिक सत्य है, तो उस खड़ीं फसलो में कहाँ खड़े हैं ये आपके तारणहार कृषि विशविद्यालय और उनके तंत्र? कहाँ है आपकी सरकार और उनकी सबसिडीयों की भीख? और आप कृषि पंडीत कहाँ खड़े हो? किसान भाईयों, हमें आज तक मूर्ख बनाया गया है। अगर वे कृषि विशविद्यालय कहते हैं कि भूमि में कुछ नहीं, ऊपर से खाद डालना ही पड़ता है, तो मेरा उनसे एक सीधा प्रश्न है, जंगल में उनकाो क्यों डालने की जरूरत नहीं? आप जंगल में जाइएँ या आपके खेत के बाँध पर ज (Boundary) चाइये। वहाँ आपको फलों से लदे हुएँ आम के, बेर के, जामुन के या इमली के विशालकाय पेड़ खड़े दिखाई देंगे। ऊन पेड़ों को हर साल अकाल में भी अनगिनत निर्यातक्षम (Uncountable export quality) फल लगते हैं। ये कृषि विश्वविद्यालय आपको भूमिकी जुताई (Cultivation) ट्रॅक्टर से या बड़े लोहे के वचार बैल या छह बैलों से खिंचने वाले हल से करने की सलाह देते है। जंगल में कहाँ जुताई (Cultivation) है? वे आपको देशी गोबरा (Farm yard manure) और रासायानिक खाद डालने को कहते हैं। जंगल में कहाँ खाद है? वे कृषि विश्वविद्यालय आपको कीटनाशक विषैली दवा छिड़कने के लिए कहते हैं, जंगल में कहाँ छिड़काव है? सिंचन के लिए बड़े–बड़े बाँध खडे. किये जाते हैं या कॅनॉल निकाले जाते हैं। जंगल में कहाँ मानवी सिंचन है? याने वे कृषि विश्वविद्यालय आपको जो जो तंत्र बताते हैं, जो जो करने को कहते हैं, वह वहाँ अस्तितव में नहीं है। तो भी जंगलों में आम, इमली, बेर या जामुन के पेड़ों को बिना जुताई (किश्त – Cultivation), बिना खाद, बिना पानी, बिना दवाओं का छिड़काव, बिना मानवी अस्तित्व, हर साल, अकाल में भी अनगिनत फल लगते हैं। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है, पेड़ों को या पौधों को बढ़ाने के लिए और अनगिनत फल लेने के लिए ऊपर से कुछ भी डालने की कोई जरूरत नहीं।

जब यह वास्तविक सत्य है की, बिना कुछ डाले, जंगल में पेड़ों को हर साल अनगिनत फल लगते हैं, इसका मतलब है, उन पेड़ों के जड़ों के पास वह सब तत्व पहले से ही मौजूद है। हमने नही डाला लेकिन जड़ों को मिल गया। इसका मतल ब है वह तत्व निसर्ग ने दिये हैं। वे सब खाद्यत्तव वहा पहले से ही मौजूद है, इसलिये जड़ोने उठाया। इसका मतलब है जमीन अन्नपूर्णा है। भूमि अन्नपूर्णा है, यह सिद्धदांत जब मैं आपके सामने रखता हूँ, तो उसके वैज्ञानिक प्रमाण भी देता हूँ। सन 1924 में डॉ. क्लार्क और डॉ. वाशिंग्टन ये दो भूगर्भ वैज्ञानिक भारत आये। बर्मा शेल नाम के तेल शोधक कंपनी ने उन्हें भारत की भूमी में एक हजार फीट तक छेद करके कहाँ तेल लगता है, इसके खोज कार्य के लिए भेजा था। भूमि के तसह से लेकर अंदर एक हजार फीट तक उन्होंने हर छह इंच मिट्टी के नमूने लिए और उनको प्रयोग शाला में परीक्षण किया। उस वैज्ञानिक जाँच के परिणाम बताते हैं, कि भूमी में आप जितना अंदर जाओगे, उतनी ही चढ़ते मात्रा में सभी खनिज तत्व मौजूद हैं। भूमि अन्नपूर्णा है। भूमि में कुछ भी कमी नहीं हैं।

अगर ये वैज्ञानिक रिपोर्ट, भूमि को अन्नपूर्णा बताते हैं, तो ये कृषि विश्वविद्यालय मिट्टी परीक्षण कराके यह कयों कहते हैं, कि भूमि में पोटाश बहुत है, लेकिन जड़ों को उपलब्ध स्थिति में नहीं है; इसलिए ऊपर से देना ही पड़ता है। वास्तव में वे झूठ नहीं कहते। सच कहते हैं। लेकिन आधा सच कहते हैं। भूमि में प्रचंड मात्रा में अन्न भंडार है। लेकिन दो बातो से वह जड़ों को उपलब्ध होता नहीं। पहली बात यह है की भूमि में जो खनिज तत्व है, वह जड़ों को जिस स्थिति में चाहिये, उस स्थिति में नहीं है। जैसे, हम रोज भोजन करते हैं तो पकायी हुई रोटी खाते हैं। कच्चे दाने नहीं खाते। अगर घर में कच्चा अनाज भरा पडा है, और पकाने वाली माता या पतनी घर में नहीं है, और आपको पकाना आता नहीं, तो आप भूखे नहीं रहते। आप बाहर से हॉटेल का डिब्बा लाकर खाते हैं। अगर आप हॉटेल का डिब्बा नहीं लाना चाहते, तो पकाने वाली माता या पत्नी को पुनश्च लाना होगा। यह रासायनिक खाद वास्तव में हॉटेल के डिब्बे हैं। भूमि में जो भी खाद्य तत्व होते हैं वह पकाये हुए नहीं होते। दाने के स्वरूप में होते हैं रोटी के रूप में नहीं होते। जड़े उन्हें जैसे थे स्थिति में नहीं ले सकती। इस दाने के स्थिती में (नत्र–अमोनिया; फॉस्फेट – डायव्हॅलंट कॅलशियम ऑर्थो फॉस्फेट; पोटाश – सिलीकेट) जड़े नहीं ले सकती। इसलिए मिट्टी परीक्षण रिपोर्ट कहता है कि भूमि में है, लेकिन उपलब्ध नहीं (Non available stage) हैं। ऊन अनुपलब्ध (Non available stage) खाद्य तत्वों को उपलब्ध (available stage) स्थिती में पकाकर लाने का कार्य भूमि में स्थित अनंत कोटी जीवजंतू करते हैं। जंगल में यह जीवजंतू प्रचंड मात्रा

में भूमि में (प्रति ग्राम मिट्टी कई लाख या करोड़) होते हैं, पकाते हैं और जड़ों तक खाद्य पहुँचा देते हैं। इसलिए जंगल में कुछ भी डालने की जरूरत होती नहीं।

लेकिन हमारे खेतो में ऊपर से रासायनिक खाद डालने की जरूरत होती है। क्योंकि हमारे रासायनिक खेती मै भूमि में ये अनंत कोटी जीवजंतु होते नहीं। हमने उनको रासायनिक खाद, ट्रॅक्टर की किश्त (Cultivation) विषैली कीटनाशक दवाएँ और घासनाशक दवाओं के द्वारा नष्ट कर डाला है। अगर पकाने वाले नहीं है तो जड़ों को मिलेगा कैसे? इसका मतल ब है अगर हमें बाहर के हॉटेल के डब्बे (खाने के) याने रासायनिक खाद देना बंद करना है, तो भूमि में इन पकाने वाले अनंता कोटी जीवजंतुओं को पुनश्च प्रस्थापित करना होगा, उन्हें भूमि में डालना होगा, उन्हें पकाने के काम में लगाना होगा तभी हम रासायनिक खाद बंद कर सकते हैं। किस साधन से हम इन अनंतकोटी जीवजंतूओं को भूमि में डालकर पकाने में लगा सकतें हैं? वह साधन है हमारे स्थानीय देशी (Local) गाय का गोबर (Cow dung of local Cow) देशी गाय का गोबरा एक अद्‌भुत मोहन या जामुन (जिवाणु समूह) (Culture)! जैसे, हमारी माताएँ दूध का दही बनाने के लिए शाम को हंउा भर दूध में एक चम्मच, दही जामुन के रूप मै (as a culture) डालती है, तो दूसरे दिन सुबह पूरे दूध का दही बन जाता है। वैसे ही देशी गायका (local cow) गोबर एक अदभुत कल्चर (microbial culture) हैं। देशी गाय के एक ग्रॅम गोबर में 300 से 500 करोड़ उपयेागी पकाने वाले जीवाण्यणु होते हैं। एक एकड़ भूमि के लिए कितना गोबर (Cow dung) चाहिये, इस पर मैंने छह साल संशोधन परीक्षण किए। भारतवर्ष की प्रमुख स्थानीय गाय की नस्लो पर प्रयोग किए। हर फसल पर प्रयोग किए। महाराष्ट्र राज्य की 'गौलाऊँ', 'लाल कंधारी', 'खिलारी', 'देवणी', 'डाँगी', 'निमारी', पश्चिमी भारत की गीर, 'थारपरकर', 'साहीवाल', 'रेडसिंधी', दक्षिणी भारत की 'अमृतमहल' और 'कृष्णाकाठी'; और उत्तर भारत की 'हरियाणा', इन देशी गाय की नसले अभ्यास के लिए लायी। उनके गोबर का और गोमूत्र का हर फसल पर, हर फल पेड़ पर, हर नक्षत्र में, हर नक्षत्र के हर चरण में अभ्यास किया, शोध कार्य किया। क्या परिणाम होता है, इसका अभ्यास किया। अव्याहत छह सालों के शोध कार्य के बाद मुझे कुछ निष्कर्ष मिले।

पहला निष्कर्ष यह की, केवल देशी गाय चाहिये; देशी बैल या भैस चलेगी, लेकिन किसी भी स्थिति में जर्सी होलस्टीन विदेशी जनावर नहीं चलेगी। क्योंकि वह गाय नहीं है, अलग ही प्राणी है। दूसरा निष्कर्ष काले रंग की कपीला गाय (देशी) सर्वोत्तम है; तीसरा निष्कर्ष गोबर जितना ताजा उतना ही अच्छा एवं प्रभावी होता है और गोमूत्र जितना पुराना उतना ही प्रभावी व असरदार होता है। चौथा निष्कर्ष मुझे यह मिला कि, अगर आपके पास केवल एक देशी गाय है, तब वह तीस एकड़ की किसानी (कृषिकार्य) करने के लिए पर्याप्त है। न आपको गाय का गोबरा (Farm Yard Manure) ट्रक ट्रॅक्टर से खरीदने जरूरत है और रासायनिक खाद एवं सेंद्रीय खाद जैसे कंपोष्ट, व्हर्मी कंपोष्ट, कंपनियों द्वारां निर्मित सेंद्रीय खाद (Organic Fertilizer) बायोडायनॅमिक खाद एवं अग्रीहोत्र जैसे रासायानिक खाद खरीदकर या निर्मित करके खेती मै उपयोग में लानेकी जरूरत नहीं है। मेरे छह सालों के शोधकार्य के फलित स्वरूप मुझे यह निष्कर्ष मिला कि एक एकड़ के लिए एक महीने में एक बार कम से कम दस किलों देशी गाय का गोबर उपयोग में लाने की जरूरत है। एक देशी गाय एक दिन में औसतन 11 किलो गोबर देती है, एक बैल एक दिन में औसतन 13 किलो गोबर देता है और एक भैंस एक दिन में औसतन 15 किलो गोबर देता है। एक गाय का एक दिन का गोबर एक एकड़ के लिए पर्याप्त है। महीने के तीस दिन। तीस दिन के गोबर में तीस एकड़ खेती। ट्रक ट्रक्टर से गोबर खाद नहीं चाहिये। गोबर के साथ्ज्ञ क्या मिलाया जाए, इस पर भी मैंने चिंतन और शोध कार्य किया। मैंने देखा कि जंगल के उस अनगिनत फल देने वाले पेडत्र के नीचे भटके हुये जनवरों की विष्टा, केंचवों की विष्टा, पंछियों की विष्टा पड़ी है और साथ में इन सभी का मूत्र भी पड़ा है। मैंने सोचा इन विष्टा का जरूर उस पेड़ के बढ़ने से और फलों की उपज से संबंध है। एक ग्रॅम देशी गाय के गोबर में 300 करोड़ उपयेागी विघटर करने वाले सूक्ष्मजीव होते हैं। सूक्ष्मजीव भूमिपर पड़े काष्ट पदार्थो का (dried biomass) विघटित करके मुक्त हुए अन्नघटक जड़ों तक पहुँचाते हैं। निसर्ग, निसर्ग में याने उसके खेती में गोबर और मूत्र का उपयोग करता है। इसका अर्थ मैने समझा, जो सत्य है, कि, निसर्ग खेती में विष्टा एवं मूत्र का उपयोग नैसर्गिक है, वैज्ञानिक है।

मैने उस जंगल के पेडत्र के नीचे छाँव के अंदर बहुत सारी चिंटी यों को और जीवजंतुओं को कार्य करते हुये देखा, छाँव के बाहर नहीं। मैंने छह सालो तक जंगलों का अीयास किया है, वहाँ चल रहे नैसर्गिक

कार्यकारी व्यवस्था का अभ्यास (शोध) किया है। मैंने वहाँ देखा कि जड़ों से जो मीठा स्राव (मीठे द्रव पदार्थ स्त्रवित) बाहर निकलता है, उसे जीवजंतुओं को खिलाया जाता है, और उसके बदले में वे जीवजंतु उनके द्वारा संस्कारित अन्नघटक जड़ों तक पहुँचाते हैं। सहजीवन। विज्ञान ने (Science) यह सिद्ध किया है। निसर्ग पौधों को और पेड़ों को बढ़ाने के लिए और उपज देने के लिए मीठे पदार्थ का उपयोग कराता है। अर्थात, मीठे पदार्थ मिलाकर फसलों पर उपयोग किया तब क्या परिणाम मिलेगा? मैंने तुरंत गोबर और गोमूत्र के साथ गुड़, शक्कर, शहद का उपयोग हर फसल पर हर नक्षत्र में किया, परीक्षण किए। निष्कर्ष चमत्कारिक मिले।

मैंने जंगल के उस घने फलों से लदे पेड़ के निचे अनगिनत वनस्पतियाँ पलती हुई देखि। मैंने उनका वर्गीकरण किया। मुझे 268 वनस्पति प्रकार वहाँ मिले। उनमें तीन गुणा द्विदल (Dicot) और एकगुणा (Monocot) एक दल है, यह मैंने देखा और चकित हुआ। सोचने लगा कि निसर्ग ने द्विदल की तीनगुण संख्या क्यों रखी? मन में एक और बिजली चौकी की द्विदलों में प्रोटीन्स पचुर मात्रा में होती है, प्रोटीन्स में बहुत सारी सूरज की ऊर्जा भरी पड़ी होती है। जब बीज पके होने पर नीचे गिरते हैं, उनका विघटन होकर उनमें बंदीस्त ऊर्जा जीवाणुओं को मिलती है और जीवाणुओं की संख्या तेजी से बढत्रती है। मैंने सोचा, कयों न द्विदल अनाज का (मूग, उड़द, चवलाई, चना, अरहर) आटा, गोबर, गोमूत्र और गुड़के साथ मिलाकर परीक्षण किया जाये? तुरंत मैंने अलग–अलग मात्रा में निरंतर परीक्षण किए। अंत में परिणाम स्वरूप मालू हुआ की एक एकड़ के लिए केवल दस किलो गोबर के साथ गोमूत्र, गुड़ और द्विदलों का आटा (Pulses) मिलाकर उनके परस्पर प्रमाण निश्चत किए। और अंत में एक अंतिम फॉर्मूला निश्चित हुआ। उसको मैंने नाम दिया "जीवामृत"। जीवामृत में मैंने वहीं संसाधनों का उपयोग किया, जो जंगल में उस अनगिनत फल देने वाले पेड़ के नीचे निसग्र ने उपयोग में लाए हैं। जीवामृत बनाने के लिए देशी गाय का ही गोबर और मूत्र चाहिये। विदेशी जर्सी या होलीस्टीन संकर गाय का गोबर या मूत्र नहीं चलेगा। क्योंकि यह जर्सी, होलस्टीन या संकर गाय, मूलतः गाय नहीं है। उनमें गाय के एक भी लक्षण नहीं है। वह अगल दूसरे ही प्राणी है। मेरे प्रयोग में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए पहला यह कि स्थानीक देशी गाय का पर्याप्त मात्रा में गोबर और मूत्र सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण्हा है। अगर देशी गाय का पर्याप्त गोबर और मूत्र मिलता नहीं, तो आधा देशी गाय का औश्र आधा देशी बैल का मिलाकर चलेगा, लेकीन केवल बैल का नहीं। आधा देशी गाय का औश्र आधा भैंस का मिलाकर चलेगा। लेकिन केवल भैंस का नहीं। देसरा तथ्य यह सामने आया कि जो देशी गाय ज्यादा दूध देती है, उसका गोबर और गोमूत्र कम प्रभावी होता है। और जो गाय कम दूध देती है, उसका गोबर और गोमूत्र ज्यादा प्रभावी होता है।

****

जीवामृत कैसे बनाएँ!

1) देशी गाय का (देशी बैल, भैंस) गोबर 10 किलो
2) देशी गाय का गोमूत्र (देशी बैल, भैंस) या मानवी मूत्र 5 से 10 लीटर
3) गुड 1 से 2 किलो या 4 लीटर गन्ने का रस
4) मूंग या उडद, या तुअर या चने का आटा 1 से 2 किलो
5) जीव मिट्टी मुठठीभर (बाँध पर की मिट्टी)
6) पानी 200 लीटर

यह द्रावण दो से सात दिन छाँव में रखना है। दिन में दो बार (सुबह–शाम) लकड़ी से घोलना है। बाद में उसे इस्तेमाल करना है।

जीवामृत कैसे डाले ?

साथ में नीचे दिखार्ठ हुई आकृति में दिखाये गये तरीके से जीवामृत प्रयोग में लाना है।

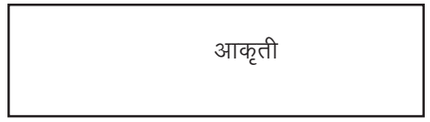

कुँए से खींचकर पानी हौद में डाला जाता है, उस हौद में से जो नाली (furrow) लीख खेत में पानी देने के लिए निकाली जाती है, उस नालियों में बहते हुए पानी में जीवामृत कॉक चालू करके छोड़िये! जीवामृत पानी में मिलाकर अपने आप फसलों के जड़ों तक पहुँचेगा। फलौ के पेड़ों के पास पेड़ की दोपहर को 13 बजे जो छाया पड़ती है, उस छाया विस्तार की बाहर के कक्षा के पास (दोपहर की छाँव) प्रति पेड़ दो से पाँच लीटर जीवामृत भूमिपर डालना है। जीवामृत डालते वक्त भूमि में नमी होना

आवश्यक है। अगर आपके पास बॅरल या सीमेंटकी टंकी नहीं है, तो खरीदकर न लाएँ। हमारा जिरो बजट है। कुछ भी खरीदना नहीं है। हमारे गाँव का कुछ भी पैसा अब शहर नहीं जाना है। शहरो का पैसा गांवों में लाना है। आपके खेत में जो कुआँ या टयूबवेल है, उसके पास मुख्य नाली के किनारे जिसमें 500 लीटर पानी समाता है, ऐसा एक खड्डा खोदिये। खड्डे की मिट्टी बाहर चारों ओर डालें। एक पत्थर से खड्डेकी सभी दीवार अच्दी तरह से पीट लें। गोबर और मिट्टी के घोल से (slurry) सभी दीवारे अंदर से लिप दें। सूखने के बाद उस खड्डे में जीवामृत तैयार करें। अगर खड्डेकी मिट्टी भारी काली (Black Cotton soil) है, तब, गोबर मिट्टी के घोल स लिंपन के बाद (लिपाई के बाद) अंदर से एक प्लॅस्टिक कपड़ा (शीट) बिछा दें, उसके आखरी पलटे पर (Border of the cloth) पत्थर रख दें; ताकि कपड़ा ना सिमटे। उसमें जीवामृत तैयार करें। कपड़ा खरीदने पर दुकान मालिक को पैसा न दें, अनाज दें। अब वस्तु विनिमय करके ही आवश्यक व्यवहार करना है, एक मजदूर महिला सिंचन की मुख्य नाली के किनारे बैठकर, नाली में बहते हुये पानी में थोड़ा थोड़ा जीवामृत डालती जायेगी।

अगर आपके कुएँ में एक दिन में एक एकड़ भूमि सिंचित हो सकती है, तो 200 लीटर जीवामृत कपड़े से अच्छे तरह छानकर कुएँ में पानी में डाल दे, या अगर दो यचा तीन एकडत्र भूमि सिंचित होती है तो, 400 या 600 लीटर जीवामृत कुएँ में पानी में डाल दे। फुटव्हाल्व से यह जीवामृत पानी में घुल जाएगा और जीवामृत सिंचन के इस पानी के साथ फसल के जड़ों तक थेठ पहुँच जाएगा। यह एक सरल विधि है। अगर आपके पास ड्रिप सिंचन यां स्प्रिंकलर सिंचन है, तब, बाजूमें दी हुई आकृति में दिखाई विधिसे जीवामृत दिजिये।

इसके लिए, बॅरल के निचले तल में (bottom) छेद करके उस छेद में एक छोटा नल लगा दें, जिसे टोटी (cock) हो। बॅरल के तल में छह इंच गोल छोटे–छोटे पत्थर का स्तर (layer) भरें। उसके ऊपर पाँच इंच का गिट्टी का स्तर डाल दें। इस गिट्टी के ऊपर चार इंच का रेत का स्तर भर दें। उसके ऊपर एक प्लॅस्टिक की चालनी डाल दें और उस चालनी पर कपड़ा डाले। जीवामृत अंदर डालने पर धनपदार्थ कपड़े पर जमा होगा और छाना हुआ जीवामृत कपड़ा, चालनी और अंदर के फिल्टरिंग सिस्टिम से टोटी से बाहर आएगा। अब आपके कुएँ में जो मोटरपंप है, उसके सक्शन पाइप को (पंप से नीचे पानीकी तरफ जाने वाला) पंप के नीचे एक छेद करें और उसमें डिव्हायडर लगा दें। उस डिव्हायडर में एक नली लगा दें और उसे कॉक लगा दें। इस नली को एक रबरि टयूब जोड़कर दें और उस टयूब की दूसरी बाजू उस फील्टर बॅरल के टोटी नल से जोड़ दें। मोटर पंप चालू करते ही, सक्शन पाइप से ऊपर आते कुएँ के पानी में रबरि नली द्वारा आया जीवामृत अपने आप घुल जाता है और फसलों के जड़ों तक पहुचता है।

गोबर खाद कितना ?

मैं देख रहा था, विगत सैकड़ों सालों से गाँव के किसान गोबरे का खाद दूसरे किसानों से या शहर से ट्रक ट्रॅक्टर से खरीदकर प्रति एकड़ पंद्रह से लेकर पचास बैलगाड़ी (Cart loads) डालते हैं। इसके लिए गाँ के सधन किसानों में बड़ी स्पर्धा लगती है। लेकिन छोटा मध्यम किसाना गोबर खाद नहीं खरीद सकता। उसकी आर्थिक क्षमता नहीं होती। इस तरह अगर आपको नैसर्गिक खेती करनी है तो गोबर खाद बहुत मात्रा में डालना ही पड़ेगा, यह बात हर किसाना के दिमाग में पक्की बैठ गयी। इससे उलटा ही परिणाम हुआ। जो छोटे मध्यम किसान ि, वह हर साल गोबर खाद खरीदकर नहीं डाल सकने से, उन्होने पर्यायस्वरूप ज्यादा से ज्यादा मात्रा में रासायनिक खाद डालना शुरू किया। इससे तेजी से भूमि बंजर बनती गयी, अनुत्पादक बनती गई। यह किसाना आर्थिक संकट में और कर्जे के जंजीर से इतना ग्रस्त हुआ कि, उसे आत्महत्या के सिवा कोई दूसरा मार्ग बचा नहीं। या खेती छोडत्रकर बड़े शहर कोई काम ढूंडने या काम नहीं मिले तो गुंडागर्दी में शामिल होने भागने लगा। मैंने इस स्थितिको बदलने के लिए कुछ ऐसी तकनीक (तंत्र) विकसित करने हेतु शोधकार्य चालू किया। जिस में, हर फसल लेने के लिए और उपज बढ़ाने के लिए न तो रासायनिक खाद खरीदने की जरूरत पडत्रे और नहीं गोबर खाद खरीदकर डालने की जरूरत पड़े? लगातर छह साल के अनुसंधान कार्य

के बाद मुझे मालूम पड़ा कि, अगर आपके पास 15 से 30 एकड़ भूमि है, तो आपके पास एक देशी गाय और दो बैल होना पर्याप्त है। मैंने प्रयोगस्वरूप हर फसल में हर हंगाम में (Season) प्रति एकड़ 40, 35, 30, 25, 20, 15, 10, 8, 6, 5, 4, 3, 2 और 1 बैलबंडी (Cart load) गोबर खाद और चालणी से छाना हुआ गोबर खाद 500Kg., 400Kg., 350Kg., 300Kg., 250Kg., 200Kg., 150Kg., 100Kg., & 50Kg. प्रती एकड़ गोबर खाद निरंतर छह साल उपयेाग में लाया। मैं देखना चाहता था कि कम से कम प्रति एकड़ कितना किलोग्राम गोबर खाद आवश्यक है। निरंतर प्रयोगों से मैं एक बात से पूरी तरह आश्वस्त हो गया था कि, जैसे रासायनिक खाद फसल का खाद्य नहीं है, उसी तरह गोबर खाद भी फसल का अन्न नहीं है। केवल डालना ही है तो जीवाणु समूह (Culture) के रूप में याने मोहन के रूप में डालना है। कितना यही तय करना है। इन सारे प्रयोग के बाद अंत में मैं निश्चित कर पाया कि चाहे फसल कोई भी हो, हर एकड़ में हर ऋतु में (season) 100 किलो (दो थैलियाँ पचास–पचास किलो की) गोबर खाद बारानी खेती में या सिचिंत खेती में पर्याप्त है। उससे ज्यादा डालनेकी कोई जरूरत नहीं है।

अगर आपके पास एक देशी गाय है ओर दो बैल हैं, तो आप उनके गोबर खाद से इस तंत्र से पन्द्रह एकड़ भूमि में अच्छी खासी फसल ले सकते हैं। न कोई रासायनिक खाद डालने की जरूरत है और न ट्रक ट्रॅक्टर से गोबर खाद खरीदने की जरूरत है। बस अपना गोबर खाद को बाहर निकालकर सात दि सुखाइये, अगर ढेले हो तो फोड़िये और चालनी से छान लिजिये और छाँव में भरकर रखें। बीज बोते समय (खरीफ हो या रबी फसल) बीज के साथ्ज्ञ प्रति एकड़ सौ किलो 8पचास–पचास किलो की दो थैलियाँ) वह खाद बुआई यंत्र से या पीछे पकड़े सरते से (बांबुकी नली) बोइये। रासायनिक खाद या गोबर खाद खरीदकर मत डालिए। इस तंत्र से आपको उतना ही अनाज उपज या फसल की उपज मिलेगी, जितनी आप रासायनिक खेती से लेते हो। एक आत ध्यान से खयाल में रखिये। देशी गाय का गोबर पेड पौधोंका खाद्य नहीं है, जामन याने कल्चर है। जैसे सौ लीटर दूध को अगर दही में (Curd) परिवर्तित करना है, तो मोहन या जामन (कल्चर) केवल एक ही चमचा दही चाहिये। जब आप शाम को यह एक चमचा दही मोहन के स्वरूप में (As a culture) शाम को उस सौ लीटर दूध में डालते हो तो सुबह सारा दूध दही बन जाता है। जैसे सौ लीटर दूध के लिए केवल एक चमचा दही मोहर के स्वरूप में पर्याप्त है, उसी तरह प्रति एकड़ केवल देशी गाय का दस किलो गोबर चाहिये या सौ किलो छान हुआ खोबद खाद। आप इस गोबर खाद में घन स्वरूप जीवामृत मिलाकर बीज के साथ बो सकते है।

गीला घन जीवामृत :–

जीवामृत आप दूसरी तरह भी दे सकते हैं। गीले घन जीवामृत के माध्यम से। उसके लिए क्या करना है? 100 किलो देशी गाय का और बैल का साथ में भैस का गोबर ले। उसमें 2 किलो गुड़ और 2 किलो द्विदल का आटा (अरहर, चना, मूँग, उड़द) मिला दें। खेतो के बाँध की मुट्ठी भर मिट्टी उसमें डालें। और थोड़ा–थोड़ा गोमूत्र डालकर उसे अच्छे तरह मिला लें, गूथ लें ताकि उसका सीरा या उप्पीट या घन जीवामृत बने। उसे इतना घना बनाएँ जिससे उसके लड्डू बने। अब इस घनजीवामृत के लड्डू बनाएँ। एक–एक लड्डू ड्रीपर के नीचे रख दें, उसके ऊपर सूखी हुई घास डाले और ऊपर से इस घास पर ड्रीपर से पानी पड़ने दें। ये घन जीवामृत के लड्डू आप पेड़ पौधों के पास रख सकते हैं ताकि जीवामृत जड़ोतक पहुचे। गीले या सूखे घन जीवामृत में आप बीज रखकर बीजारोपण कर सकते हैं।

सूखा घन जीवामृत – इस गीले घन जीवामृत को आप छाँव में अच्छी तरह फैलाकर सूखा दे। सूखने के बाद उसको लकड़ी से ठोकं कर बारीक करें, बोरों में भर दें और छाँव में स्टोअर करें। यह घन जीवामृत आप सूखाकर छह महीने संग्रहीत कर सकते हैं। सूखने के बाद घन जीवामृत में स्थित सूक्ष्मजीव समाधि लेकर कोष धारण करते हैं। जब आप घन जीवामृत भूमि में डालते हैं, तब नमी मिलते ही, वे सूक्ष्मजीव कोष तोड़कर समाधि भंग करके पुनश्च कार्य में लग जाते है। जिसके पास गोबर ज्यादा है, उसके लिये ज्यादा मात्रा में घन जीवामृत बनाकर दोनों बारानी (बारिश पर निर्भर) और सिंचित फसलों में गोबर खाद में मिलाकर उसका उपयोग करें। बड़े अच्छे चमत्कारिक परिणाम मिले है। किसी भी फसल के बोआई के समय प्रति एकड़ 100 किलो छाना हुआ गोबर खाद (Farm Yard manure) और 10 से लेकर 100 किलो सुखा हुआ घनजीवामृत बीज के साथ बीजके सामने बोइये। बहुत ही अच्छे परिणाम मिलते हैं। मैंने यह परीक्षण हर फसल में और फलपौधो में किया हैं। चमत्कारिक निष्कर्ष

मिले हैं। इससे आप रासायनिक खेती से ज्यादा उपज ले सकते हैं। बीज बोते समय बीज बोने का जो औजार है, उसे दो नलियों का बाऊल (Bowl- चाडे) लगाये। नीचे आकृति में देखें। एक बाऊल से बीज बोएँ और दूसरे बाऊल से यह गोबर खाद और घनजीवामृत का मिश्रण बोएँ। बीज बोआइकी ये जो तीन दातोंवाली तीफण (औजार) होती है, उसके तीन दातों को रस्सी से तीन बीज बोने वाले सरते (चाँडे) पीछे से बांधे जाते हैं और उनमें से बीज बोएँ जाते हैं। अब आपके छह चाँडे (सरते) लगाकर तीन में से आगे यह खाद मिश्रण और तीन में से बीज डालना होगा। या आपके इलाके में या प्रदेश में बीज और खाद बोने की जो भी विधि हो, उससे ये दोनों बोएँ।

जीवामृत का छिड़काव – मैंने जीवामृत का भूमिमें उपयोग के साथ–साथ उसका हर फसलों पर और फलपेडोत्र पर छिड़कने के अनेक प्रयोग किएँ, उनके परिणामों का (निष्कर्ष) अभ्यास किया, उसकी तीव्रता (Concentration) के परिणामों का अभ्यास किया। जीवामृत के हर नक्षत्र में और नक्षत्र के हर चरण में छिड़कने के परिणाम स्वरूप अीयास किया और निष्कर्ष बहुत ही चमत्कारिक मिले। आप गन्ना, केला, धान (Paddy) गेहूँ, जवार, मका, अहरहर, मूँग उडद, चना, सूरजमुखी, कपास, करडी (Safflower), अलसी, तिल्ली, सरसों, बाजरा, मिरची, प्याज, हलदी, आले, फूल पौधे, बैगण, टमाटे, आलू, हरी सब्जियाँ (Green vegetables) गवार, लसून, औषधी सुगंधी पौधे, आदि सभी सिझनल (दो से लेकर आठ महीने तक आयुष्य) फसलों पर जीवामृत छिड़कने की विधि इस तरह है। आप महीने में कम से कम एक बार या दो तीन बार जीवामृत छिडत्रकिये।

बीज बोआइ के पन्द्रह दिन बाद पहला छिड़काव –
प्रतिएकड़ 5 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 100 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिडकिये।

बीज बोआइ के एक महीना बाद दूसरा छिड़काव –
प्रति एकड़ 5 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 100 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़किये।

बीज बोआइ के 45 दिन बाद तीसरा छिड़काव –
प्रति एकड़ 10 लीटर जीवामृत कपड़े से छान ले और 150 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़किये।

बीज बोआइ के दो महीने बाद चौथा छिड़काव – (60 से 90 दिनों की फसलें)–
प्रति एकड़ 20 लीटर जीवामृत कपड़े से छानकर 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिड़किये।

बीज बोआइ के दो महीने बाद चौथा छिड़काव – (90 से 180 दिनों की फसलें)–
प्रति एकड़ 10 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 150 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलो पर छिंडकिये।

बीज बोआइ के ढाई महीने बाद पांचवा छिड़काव–
प्रति एकड़ 20 लीटर जीवामृत कपडत्रे से छान ले और 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिड़किये।

बीज बोआइ के तीन महीने बाद छटा छिड़काव –
प्रति एकड़ 20 लीटर जीवामृत कपडत्रे से छान लें और 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिड़किये।

बीज बोआइ के साढेतीन महीने बाद सातवाँ छिड़काव–
प्रति एकड़ 25 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिड़किये।

बीज बोआइ के चार महीने बाद आठवाँ छिड़काव–
प्रति एकड़ 25 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिड़किये।

बीज बोआइ के साढेचार महीने बाद नववा छिड़काव–

प्रति एकड़ 30 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिडंकिये।

बीज बोआइ के पाँच महीने बाद दसवा छिड़काव–

प्रति एकड़ 30 लीटर जीवामृत कपड़े से छान लें और 200 लीटर पानी में घोल बनाकर फसलों पर छिड़किये।

****

गन्ना, केला, पपीता पर जीवामृत का छिड़काव–

इन फसलों पर बीज बोने के या रोपाई के बाद पाँच महीने तक ऊपर दिये हुए छिड़काव करें। उसके बाद हर पन्द्रह दिन में प्रति एकड़ 30 लीटर जीवामृत कपड़े से छानकर 200 लीटर पानीमें घोल बनाकर गन्ना, केला, पपीता के पौधोंपर छिड़किये।

****

सभी फल पेड़ोंपर जीवामृत का छिड़काव–

फल पौधों की और फल पेड़ों की कोई भी उमर हो, उन पर हर महीने में एक बार जीवामृत छिड़किये। प्रमाण 20 से 30 लीटर जीवामृत कपडे से छानकर 200 लीटर पानीमें घोलकर छिड़कना है। फल पक्क होने से दो महीने पहले फल पौधों पर और फल पेड़ोंपर पहला छिड़काव नारीयल का पानी 2 लीटर 200 लीटर पानीमें मिलाकर छिड़किये। इसके पन्द्रह दिन बाद 6 लीटर खट्टा मट्ठा या लस्सी (Butter milk) 200 लीटर पानीमें छिड़किये।

****

जीवामृत कैसे कल्चर (जामन) है?

अब आप सोचने लगे होगे की यह जीवामृत इतना चमत्कारी परिणाम देने वाला है, तो क्या यह जीवामृत फसलों की जड़ों का खाद्य है? मैं पहले ही आपको आगाह कर देता हूँ कि जीवामृत यह किसी भी फसल या पेड़ पौधे का खाद्य नहीं हैं। वह अनंत कोटी सूक्ष्म जीवों का महासागर है। ये सभी सूक्ष्मजीव भूमिमें जो खाद्य घटक जड़ों को उपलब्ध स्थितिमें नहीं है।, उन्हें उपलब्ध स्थितिमें (available form) लाते हैं। दूसरी भाषा में, वह सभी सूक्ष्मजीव पकाने वाले आचारी (Cook) है। और देशी गाय के एक ग्रॅम गोबर में 300 करोड़ से लेकर 500 करोड़ जीवाणु होते हैं। जब हम जीवामृत बनानें में 200 लीटर पानीमें 10 किलो गोबर डालते हैं तो 30 लाख करोड़ जीवाणु डालते हैं। जीवामृत बनते समय हर बीस मिनिटमें उनकी संख्या दुगुणी होती है। जीवामृत जब हम दो दिन फरमेंट करते हैं, तो उनकी संख्या अनगिनत (uncountable) बन जाती है। जब हम जीवामहृत भूमिमें पानी के साथ्ज्ञ डालते हैं, तब भूमिमें वे अपने खाना पकाने में लग जाते हैं।

जीवामृत भूमिमें डालते ही और एक कार्य करता है। भूमिके अंदर 10–15 फुट तक जाकर समाधि लेने वाले केंचवों को और जीवजंतुओं को खींचकर ऊपर लाते हैं और कार्य में लगा देते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत करूंगा। आप जब खेतमें सुबह जाते हो, तब पगडंडी के बाजूमें (रास्ते में बाजूमें) देशी गाय का गोबर (कल शाम डाला हुआ) पड़ा हुआ मिलता है। उस गोबर को उठावो, और उसके नीचे भूमिपर देखो, आपको कुछ छेद पड़े हुए दिखाई देंगे। किसने खोदे ये छेद? कौन उन छेदोंमें से ऊपर आया? मैंने ऐसे 2500 छेद अलग–अलग भूमिपर खोदकर परीक्षण किया। मैंने देखा कि, उन छेदोंसे दो प्राणी ऊपर आये। पहला गोबर का गेंद से भी गोल गोला बनाकर उसे आगे आगे ले जाने वाला गोबर कीड़ा (कीट) और हमारे देशी केंचवे। इसका मतलब है, देशी गाय का गोबर भूमिपर पड़ते ही भूमिके अंदर समाधिस्थ केंचवे समाधि तोड़कर तेजी से ऊपर आते हैं और दिन–रात काम में लगते हैं। इसका और दूसरा मतलब यह है की, देशी गाय के गोबर में ऐसी अद्‌भुत आकर्षण शक्ति है, जो केंचवों को और अनंत जीवाजंतुओं को खींचकर बाहर आती है और दिन–रात कार्य मे लगा देती है।

आप गोबर खाद कृतिका नक्षत्रमें (मई महीने के पहले हप्ते) बैलगाड़ी से खेतों में ले जाकर उनके छोटे–छोटे ढेर लगाते हैं। बादमें रोहिणी नक्षत्रमें (मई आखिरमें) उनको (गोबर खाद को) फावडे से भूमिपर फेंकते हो। यह कोई भी आम किसान अपने खेतमें डालता है उतना ही प्रति एकड़ थोड़ासा (आठ–दस बैलगाडी) गोबर खाद होता है, तो भूमिपर थोड़ा–थोड़ा जामुन जैसे पडत्रता है। बाद में बारिश आती है और आप बीज बोते हो। फसल बढ़ते समय अगर अगस्त महीनमें पूरे महीना बारिश नहीं

आयी, तो जहां गोबर खाद के ढेर लगे थे वहाँ की फसल सूखती है, लेकिन जहाँ थोड़ा–थोड़ा खाद (जामुन जैसा) (as a Culture) फेंका था, वहाँ की फसल अच्छी है, उसको कोर्ठ नुकसान नहीं हुआ। दूसरी ओर, जब लगातार भारी बारिश होती है, तब जहा गोबर खाद के ढेर लगे थे, वहाँ की फसल बहुत ऊँची बढती है और पत्ते–फूल–फल गिरते हैं, नुकसान होता है। लेकिन जहाँ गोबर खाद थोड़ा–थोड़ा (जामुन जैसा) फेंका था वहाँ नुकसान नहीं है। इसका मतलब है, जहाँ खाद्य के रूप में गोबर खाद के ढेर लगाये थे वहाँ कम बारिश और ज्याद बारिशमें नुकसान है, लेकिन जहाँ जामुन के रूपमें (as a culture) थोड़ा–थोड़ा डाला था, वहाँ कोई नुकसान नहीं। इसका मतलब है, गोबर का खाद (F.Y.M.) खाद्य के स्वरूप में नहीं चाहिए, बल्कि जामुन के (as a culture) स्वरूप चाहिए। कितना? प्रति एकड़ केवल 100 किलो छाना हुआ गोबर खाद।

Composition of human excretion and human urine :

Ingredients	excretion	Urine
Moist excretion per man per day.	100 to 400 gm.	1000 to 1310 gm.
Dried excretion per man per day.	30 to 60 gm.	50 to 70 gm.
Moisture%	70 to 85	93 to 96
Ingredients Ingrdients/gm/day/wt.	**excretion (Gram)**	**urine (Gram)**
Organic Matter	88-97	65-85
Carbon	44-55	11-47
Nitrogen	5-7	15-19
Phosphorous	3-5.4	2.5-5.0
Potash	1.0-2.5	3.0-4.5
Calcium	4.5	4.5-6.0

Excretion and Urine availability of domestic animal per annum per animal.

Animal	Average weight of the animal	Total excreta: dung of the animal	Total urine (Kg)	Total dung (Kg)
Cow	260	7200	2165	5100
Bullock	360	9600	2880	6800
Goat	44	560	184	380
Pig	89	1120	446	630
Horse	620	11200	2240	9000

Source-Fertilizer and crop production: L. L. Van Slyke

The composition of the dung of variable domestic animals (Ingredients % on dry wt. basis)

Animal dung	Nitrogen	Phoshhate	Potash	Calcium	Magnesium ppm
Pig	2.27	3.1	1.8	0.21	0.54
Cow	1.74	1.7	0.6	0.37	0.53
Horse	1.07	2.1	3.6	0.27	0.49
Camel	1.51	0.35	1.8	0.70	0.69
Poultry	2.17	2.0	4.2	2.68	1.39
Excretion	-	-	-	-	-
Goat	0.65	0.50	0.03	-	-
Excretion	-	-	-	-	-
Animal Dung	**Ferrous**	**Zinc ppm**	**M n**	**copper**	**Boron**
Pig	1200	50	70	8.9	-
cow	1400	90	210	7.1	5.0
Horse	-	2500	150	6101	4600
Camel	-	-	-	-	-
Poultry Excretion	-	-	-	-	-
Goat	-	-	-	-	-

(Source-Gauraw 1984, Sushilkumar & Vishwas 1982)

Ingredients in the Deshi Cow Dung-% on dry basis Nitrogen-1.74%, Phoshphate-1.7, Potash-0.6%, Calcium-0.37%, Magnesium-0.53%, Ferrous-1400ppm, Zinc-90 ppm, Mangenese-210 ppm, Copper-7.1 ppm, Boron-5.0 ppm.

निसर्ग कृषि चार पहियों पर खड़ी है।

1) बीजामृत 2) जीवामृत 3) आच्छादन और 4) वाफसा

जैसे कार का एक पहिया कार से टूटकर बाहर निकल पड़ता है तो गाड़ी बंद पड़ती है, चलती नहीं। वैसे ही निसर्ग कृषि करने के लिए ऊपर दी हुई चारों बातें करनी पड़ती है।

बाजामृत कैसे बनाये ?

बीजामृत बीज संस्कार के लिए बनाये। जीवामृत की तरह ही बीजामृत में मैंने वही बातें डाली हैं, जो हमारे पास मौजूद है। बीजामृत नीचे दी हुई चीजों से बनाएँ।

1) देशी गाय का गोबर (देशी बैल या भैस का चलगा) 5 किलो
2) गोमूत्र या मानवी मूत्र 5 लीटर
3) चूना पाव किलो
4) पानी 20 लीटर

इन चीजों को चौबीस घंटे एक साथ पानी में डालकर रखें। दिन में दो बार लकड़ी से घोलें। बाद में बीज पर डालकर बीजामृत का बीजोंपर संस्कार करें, छाव में सुखाएँ और बाद में बीज बोये। बीजामृत के संस्कार से बीज जलदी और ज्यादा मात्रा में उगर आते हैं, जड़े गतिसे बढत्रती हैं, और भूमिसे पेड़ोंपर जो रोग का प्रादुर्भाव होता है, वह होता नहीं, पौधे अच्छी तरह से बढ़ते हैं। अगर आप केले के कंद या गन्ने के बीज लगाना चाहते हो तो लगाने के पहले उन्हें बीजामृत में डुबोएँ और बाद में तुरंत लगाये। अगर आप धान का या प्याज, मिरची, टमाटे, बैगन, कोबी आदि कोई भी रोप तरूं (Seedling) लगाना चाहते हो तो उनकी जड़े बीजामृत में डुबाये और लगाये।

*****

आच्छादन (Mulching) क्या है।

हम भूमि में जब जीवामृत डालते हैं, तब एक ग्रॅम जीवामृत में 500 करोड़ (अनगिनत) जीवाणु डालते हैं। वे सब पकाने वाले होते हैं। भूमि तो अन्नपूर्णा है। लेकिन जो है, वहा पका हुआ नहीं। पकाने का काम ये जीवाणु करते हैं। जीवामृत उपयोग में लाते ही हर प्रकार का अन्नद्रव्य (नत्र, फॉस्फेट, पोटॉश, लोह, गंधक, ताम्र, जस्त आदि) पकाकर जड़ों को उपलब्ध करा ते हैं। भूमि पर जीवामृत डालते ही एक और चमत्कार होता है, भूमि में करोड़ों केंचवे अपने आप काम में लगते हैं। उन्हें बुलाना नहीं पड़ता। ये केंचवे भूमिके अंदर 15 फुट से अन्नद्रव्य समृद्ध मिट्टी मल के माध्यम से ऊपर भूमि के सतह पर लाकर डालते हैं, जिसमें से फसलें उनके लिए आवश्यक सभी अन्नद्रव्य बड़ीही सुलभता से चाहे जितनी मात्रा में ले लेते हैं। घने जंगलों में अनगिनत फल देने वाले पेड़ पौधे कैसे जीते हैं? वे अन्नद्रव्य कहाँ से लेते हैं? उन्हें केंचवे ही और जीवजंतु खिलाते और पिलाते हैं।

ये अनगिनत जीवजंतु और केंचवे तभी काम करते हैं, जब उन्हें भूमिके ऊपर 25 से 32 अंश शतांश तापमान, 65 से 72: नमी और भूमिके अंदर अंधेरा, ऊब और माया मिलती है। जब हम भूमिपर आच्छादन डालकर भूमिको ढक देते हैं।, तब यह विशेष पर्यावरण अपने आप तैयार होता है।

आच्छादन के तीन प्रकार है।

1) मृदाच्छादन (मिट्टी का आच्छादन) – Soil mulching
2) काष्टाच्छादन (काडीकुटों का या वनस्पतियों के सूखे अवशेषों का आच्छादन) – Straw mulching
3) सजीव आच्छादन (आंतर फसलें और मिश्र फसलें) – (Live mulching)

हम जब हल से या कुल्टी से (harrow) भूमिकी काश्तकारी या मशागत करते हैं, तब भूमिपर मिट्टी का आच्छादन डालते हैं। जिससे भूमिअंतर्गत नमी और तापमान वातावरण में उडत्रकर नही जाता, बचा रहता है। जिससे जीवजंतु अपना कार्य करते हैं। जब हम हमारी फसलों की कटाई के बाद दाने छोडकर जो अवशेष बचते हैं, वह अगर भूमिपर आच्छादन स्वरूप डालते हैं, तो अनंत कोटी जीवजंतु और केंचवे चौबीस घंटे काम करते हैं और हमारी फसलों को बढ़ाते है। इसके लिए हम ज्वारी बाजी, गेहू, धान, सोयाबीन, मूग, उड़द, तुअर आदी फसलों के अवशेष, गन्ने का पाचट, बगॅस, घास के अवशेष, कपास फसल के बचे अवशेष, जो कुछ मिले, उसका हम आच्छादन के लिए प्रयोग करेंगे। यह दूसरा काष्टाच्छादन है। तीसरा आच्छादन का प्रकार है–सजीव आच्छादन। हम

गन्ना, अंगूर, इमली, अनार, केला, नारियल, सुपारी, चिकू, आम, काजू आदि फसलों में जो सहजीवी आंतर फसलें या मिश्र फसलें लेते हैं, उन्हे ही सजीव आच्छादन कहते हैं। ये आंतर फसलें हमारे मुख्य फसल का कुछ नहीं लेती, उलटा देती है, बढाती हैं।

बीजामृत से बीज संस्कार करने के बाद बीज या पौधे लगाने के बाद जब हम फसलों को यां फलों के पेड़ों को जीवामृत देते हैं, तो भूमि बलवान बनती है, सजीव बनी है; माँ बनती है। लेकिन यह परिणाम तब मिलता है जब हम भूमि रूपी माँ को आच्छादन रूपी सारी से ढक देंगे और भूमि के अंदर वाफसा निर्माण करें। वाफसा माने भूमिमें मिट्टी के कणों के बीच जो खाली जगहें होती हैं, उनमें हवा और वाष्प कणों का मिश्रण निर्माण होना। भूमिमें पानी नहीं वाफसा चाहिए; याने हवा 50% और वाष्प 50% इन दोनों का संमिश्रण चाहीए। क्योंकि कोई भी पौधाय या पेड अपने जड़ों से भूमिमें से जल नहीं लेता, बल्कि वाष्प के कण और प्राणवायुके याने हवा के कण लेता है। भूमिमें इतना जल देता है, जिसका भूमिअंतर्गत उष्णता से वाष्प की निर्मिती हो। और यह तभी होता है, जब आप पौधों को या फल के पेड़ों को उनके दोपहर की छाँव के बाहर पानी देते हो। कोई भी पेड़ या पौधे की अन्नपानी लेने वाली जड़े छाँव के बाहरी सरहद पर होती है।

*****

आकृती

निसर्ग कृषि में बीज कौनसे लें ?

बीज के तीन प्रकार होते हैं।

1) पुरातन काल से चले आए देशी बीज
2) सुधारित बीज
3) संकर बीज

संकर बीज बोने से भूमि बंजर बनती है, विषैली बनती है ओर उसमें पैदा हुआ अनाज, फल, सब्जियाँ भी निसत्व होती है, और विषैली होती है, जिससे खाने वाले मानव को अनेक तरह की जानलेवा बीमारियाँ होती है। संकर बीज तभी अधिक उत्पादन देते हैं, जब भूमि में रासायनिक खाद अधिक मात्रा में डाले जाते हैं, और महंगी विषैली कीटनाशक दवाएँ छिड़काई जाती हैं। इससे उपज का खर्चा उपज के कीमत के ऊपर चला जाता है और किसान घाटे में आकर कर्जे में डूब जाता है, परिणाम किसानों की आत्महत्याएँ होती हैं, हो रही है। इसलिए संकर बीज मत बोइये। केवल देशी बीज या सुधारित बीज ही बोएँ।

पेड लगाने की एवं बीज बोने की दिशा कौनसी होनी चाहिये ?

सभी फसलों का एवं फल पेड़ों का बढ़ना केवल बरसात में ही जयादातर होता है। बरसात का काल सूरज का दक्षिण दिशा की ओर से मार्गक्रमण करने का काल होता है। जिसे सूरज के आगे बढ़ने का दक्षिणायण पथ कहते हैं। 21 जून से लेकर 20 दिसम्बर तक इससे सूरज की रोशनी या किरण दक्ष्झिण दिशा की ओर से आती है। अगर हम पूरब–पश्चिम दिशा रखते हैं, तो पेड़ या पौधे की दक्षिण दिशा के तरफ के पत्तो पर ज्यादा रोशनी पडती है, उतनी उत्तर की ओर कम रोशनी पड़ती है। जीतने पत्तों पर ज्यादा रोशनी पडत्रती है, उतना ही ज्यादा अन्न पत्ते बनाते हैं और उतने ही ज्यादा वजन के और संख्या में फल लगते हैं। कम रोशनी पड़ने पर कम फल लगते हैं। इस वजह से पूरब पश्चिम दिशा न लें। अगर हम पेड़ लगाते समय या बोते समय दक्षिणोत्तर दिशा लेते है, तब दिन भर पेड़ के सभी पत्तों पर रोशनी पड़ती है और उपज बढ़ती हैं। तो दिशा दक्षिण–उत्तर ही होनी चाहिये। अगर भूमिका ढ़लान (उतार) ज्यादा हो तो दिशा कोई भी हो, ढलान के विरूद्ध दिशा में नालियाँ निकालकर (सी.सी.टी) पेड़ लगाने चाहिये या बीज बोने चाहिये।

फसलों का या फल पेड़ों का पोषण कैसे संभाले ?

कोई भी पौधा एवं पेड अपने बढ़ने के लिए और फल देने के लिए जो कुछ लेता है, उसका 98.5% हिस्सा हवा, पानी और सूरज की रोशनी से लेता है। हवा में से कार्बनडाय ऑक्साईड वायू–पेड़ या पौधे अपने आप लेते हैं, हमें देना नहीं पड़ता। जडत्रे जल भूमिसे लेती है, जो भूमिमें मानसून की वर्षा से जमा होता है। मानसून वर्षा का जल मोफत में देता है, जिसका बिल हमें चुकाना नहीं पड़ता। सूरज की रोशनी को पेड़ या पौधों के पत्ते सूरज से अपने आप लेती है, हमें देना नहीं पड़ता। याने पेड़ या फलों को निसर्ग या प्रकृति बढ़ाती है, फल प्रकृति देती है, हम नहीं। पेड़ या फसलों की जड़े भूमिसे नायट्रेट के रूपमें नत्र (नायट्रोजन) लेती है। भूमिमें यह नत्र हवा से जमा होता है। हवा में 78.6% नायट्रोजन होता है। यह काम रायझोबियम जैसे जीवाणु करते हैं, जो मूंग, फल्ली, उड़द, चना, तुवर जैसे दलहन फसलो के जड़ों में निवास करते हैं और हवा में से नत्र लेकर पौधों को या पेड़ों को बढ़ाने के लिए देते हैं। इसका मतलब यह है, कि अगर हम धान की फसल लेने के पहले धान फसल को काटते ही दलहन चना, बीन्स जैसे रबी फसल उसी नमी पर लेते हैं, तब अगले मौसम में लगाई धान की फसल को आवश्यक नत्र अपने आप भूमिमें जमा होगा, जो उसे मिल जाता है। फिर ऊपरसे यूरिया डालना नही पड़ता। हवा में 78.6 प्रतिशत नत्र होता है। अगर जवार, बाजरा (Sorghum) या मका फसल लेना हो तो बीज बोते समय ज्वार या मके के 4 किलो बीज के साथ चवली के (Cow pea) लोबीया या उड़द के दो किलो बीज मिलाकर बोइए। तब यूरिया नहीं देना पडत्रता। कपास के दो पौधों के बीच कपास के बीज बोते समय चवली (Cow pea) (लोबीया) या उड़द के बीज बोना है। तब कपास को यूरिया देना नहीं पड़ता। मिर्ची, भिंडी, बैगण, टोमॅटो, गवार आदि सब्जि–फसलों के दो पौधे के बीच चवली (Cow pea) या लोबीया या उड़द या बीन्सय या चना जैसे कोई भी फल–पौधा लगाना हो तो उसके पास तीन चार लोबिया (Cow pea) या उड़द–चने के पौधे और एक झेंडू का पौधा लगाना चाहिए। और हर साल जून में लोबिया (Cow pea) और झेंडू लगाना है। तब फल पेड़ों को यूरिया नहीं देना पड़ता। गन्ना लगाते समय ही गन्ने के पौधे के पास चवली के (लोबीया) (Cow pea) या उड़द, चना जैसे दलहण के बीज बोना चाहिए। गन्ने को यूरिया नहीं देना पड़ता। केले का बीज (कंद) लगाते समय पास ही दो तीन चवली के (लोबीया के) (Cow pea) या दलहण के उड़द, चना के बीज बो दें। दो केले के पौधों के बीचों बीच सहजनाका (Drumstick) बीज या स्टीक लगा दें और एक–दो झेंडू के पौधे लगा दें तो केले के पौधे को यूरिया नहीं देना पड़ता।

अभी निसर्ग कृषिमें हमें सुपर फॉस्फेट, पोटाश एवं अन्य कॉपर, झिंक, मॉलीब्डेनम या फेरस सल्फेट नहीं देना है। हमारी भूमि अन्नपूर्णा है। सभी अन्नतत्व भूमिमें बेशुमार मात्रामें स्थित है। लेकिन जो है, वह पका हुआ नहीं है। याने फसलों के या फल पेड़ों के जड़ों ाके जिस स्थितिमें चाहिए, उस स्थितिमें नहीं है। यह पकाने का काम अनंत जीवजंतु करते हैं। ये जीवजंतु देशी गाय के गोबर में परार्ध याप करोड़ों की संख्या में होते हैं। भूमि पर पानीके साथ जीवामृत देने से ये जीवजंतु भूमिमें पकाने लगते हैं और पकाकर फॉस्फेट, पोटाश, कॉपर, झिंक, लोह, बोरॉन आदि सभी अन्नतत्वों को जड़ों को पहुँचा देते हैं। निसर्ग कृषिमें जीवामृत का प्रयोग करने के बाद यह कार्य अपने आप चालू होता है। हमें किसी भी फसल को ऊपर से कोई भी उर्वरक नहीं डालना पड़ता। हमारे हजारों लाखों किसान ऊपर से कुछ भी उर्वरक भूमिमें नहीं डालते, लेकिन उनकी कृषि उपज आपसे कम नहीं, ज्यादा है।

भूमि अन्नपूर्णा है। भूमि के अंदर आप जितना गहराई में जाए, उतनी ही ज्यादा मात्रा में फसलों को जो अन्नतत्व खाद्यान्न चाहिए, वे ज्यादा से ज्यादा बढती मात्रा में मौजूद होते हैं। यह गहराढ की मिट्टी ऊपर भूमिके सतह पर केंचवे (Local Earthworms) अपने विष्टा के माध्यम से (Vermicast) लाकर डालते हैं। उनका यह काम चौबीस घंटे चलता है। इस विष्टामें फसलों के लिए या फल पेड़ों के लिए आवश्यक सभी अन्न तत्व जड़ों को उपलब्ध स्तिथि में (Available stage) चाहे मात्रामें मौजूद होती है, जड़े उसमें से लेती है। घने जंगलों में अनगित फल देने वाले फल–पेड़ इसी केंचवों के विष्टा परही जीते हैं औश्र हर साल अनगिनत फल देते है। भूमिपर फसलों को या फल पेड़ों को पानीके साथ जीवामृत दिया और भूमिपर आच्छादन (Mulching) ढक दिया कि केंचवे ये काम अपने आप करते हैं। उसी तरह ऊपर–नीचे आते वक्त भूमिकी काश्तकारी भी करते हैं, हल चलाते हैं, भूमि उर्वरा बनाते है। कोई भी फसल हो या फल पेड़, हमे ऊपर से कुछ भी नही देना पड़ता। ये केंचवे भूमिकी मशागत (cultivation) करते हैं, भूमिको लगातार सछिद्र बनाते

है और पूरी बारिश का पानी भूमिमें रिसाव करते हैं।

बारिशकाल समाप्त होते ही, भूमिके अंदर जमा जल की नमी केशाकर्षण शक्ति के द्वारा (Capillary Movement of water) ऊपर भूमिके सतह पर वाष्पी भवन क्रिया चालू होकर आती है, तो अपने साथ भूमिके अंदर स्थित खनिज क्षार उसके साथ घोलकर ऊपर आते हैं और फसलों के या फलपेड़ों के जड़ों को मिलते हैं।

मई या जून महीने में चक्रवात उठते हैं, बिजली चमकती है, और जोर की बारिश होती है, तो उस बारिश की बुंदोमें बिजली के प्रभाव से हवा में स्थित नत्र मिल जाता है और नायट्रिक आम्ल के माध्यम से भूमि पर बारिश के साथ आकर भूमि में रिस जाता है। जो नैट्रेट के रूप में जड़ों को उपलब्ध होता है।

निसर्ग कृषिमें फसलों के बीच या फल पेड़ों के बीच जो घास (weeds) उगकर बढ़ती है, उसे उखाड़कर पेड़ों के नीचे ही हम रखते हैं, जो आगे नमी से विघटित होती हैं और उन घासों में बंदिस्त अन्नतत्व मुख्य फल पेड़ों के जड़ों को प्राप्त होते हैं। घास धन हैं।

*****

गन्ना कैसे लगाए

नीचे दी हुई आकृति का अीयास करें।

परिवार क्यांरी में लीई जानेवाली आंतर फसलें–

जून–जुलै–बासमती धान (Paddy), ज्वार, बाजरी, अरहर, मूगफल्ली, सूर्यफूल (सूरजमुखी), मका, मूग, उड़द, लोबीया, तील्ली, कपास, मिर्ची, हलदी, अद्रक, लहसून, प्याज, सभी मौसमी सब्जियाँ, रागी।

ऑक्टो–नवम्बर–गेहूँ बंसी, चना, मूंगफल्ली, सूरजमुखी, जवस (अलसी), करडी (Safflower), रबी ज्वारी, मका, तील्ली और सभी मौसमी सब्जियाँ।

जानेवारी–मूंगफल्ली, धान (बासमती), मूग, लोबीया, प्याज, सूरजमुखी, मका, सभी मौसमी सब्जियाँ।

गन्ने के लिए आठ फुट का पट्टा रखिए। याने गन्ने के दो पंक्तियों के बीच कम से कम आठ फिट अंतर रखें। अंतर बढ़ाने से गन्ने की उपज घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है। क्योंकि, गन्ने की उपज पत्तो ने उपयोग में लाई सूरज की रोशनी पर निर्भर होती है। आठ फिट अंतर रखने पर हर पत्ता सूरज की रोशनी पकड़ता है। हर हरा पत्ता प्रति चौरस फिट पत्ते की सतह पर एक दिन में 12.5 किलो कॅलरी सौर शक्ति (ऊर्जा) पकड़ कर संगहीत करता है औश्र उसके मदत से हवा में से कर्ब व्दी प्राणीद वायु (Carbon di oxide) और भूमि में से जड़ों द्वारा पानी लेकर 4.5g.m. खाद्य (Sugar) निर्माण करता है। उसमें से हमें 1.5gm. अनाज की उपज या 2.25 ग्रॅम गन्ने का या फलो का टनेज उपज मिलता है। जितनी ज्यादा सौर ऊर्जा पत्तों पर पड़ेगी, उतनी ही ज्यादा उपज मिलेगी। दो फिट अंतर पर क्यारियाँ (Ridges & Furrows) या नालियाँ निकाल लें। आठ फिट पट्टेमें चार कयोरियाँ (Furrows) या नालियाँ मिलती हैं। गनने के बीज सात से लेकर नौ महीना उमर के और पहले साल के खड़े गन्ने से लेना चाहिये। बीज के लिए गन्ना अगर नैसर्गिक खेती में से ले तो गन्ने की उपज 20 प्रतिशत बढ़ती है। गन्ने का बीज एक आँख का ही चाहिये। उसका स्वरूप नीचे जैसा चाहिये।

आकृति–

आठ फिट का पट्टा और बीज के दो आँख के बीच का अंतर दो फिट होना चाहिये। यह अंतर ज्यादा से ज्यादा छह फिट रख सकते हैं। इस तरह आठ फिट बाय दो फिट अंतर से प्रति एकड़ बीज के लिए 170 गनने सिर्फ चाहिये। वजन केवल 250 किलो याने पाव टन चाहिये। आप प्रति एकड़ तीन से चार टन गन्ना बीज के लिए उपयोग में लाते हो, तब चार से पाँच क्विंटल शक्कर (चीनी) मिट्टी में मिलाते हो। यह नुकसान प्रति एकडत्र बारह से चौदह हजार रूपयों का होता है। इसकी जरूरत नहीं। यही नहीं, आप अपने गन्ना बीज खुद निर्माण करें। इसके लिए प्रति एकड़ गन्ना के लिए केवल एक गुंठा (आर) क्षेत्र बीज प्लाफॅट चाहिये। और पप्रति एकड़ गन्ना लगाने के लिए बीज प्लॉट लेने हेतु केवल एक ही गन्ना चाहिये।

बीज प्लॉट की काश्तकारी (मशागत) किजिये। गोबर खाद छिड़ककर दो फिट की नालियाँ निकालें। बीज के लिए एक गन्ना चाहिये, जिससे सोलह आँखें मिलती हैं। इस बीज प्लॉट पर 8 X 8 फिट पर चौफूली निकालकर हर फुली पर एक आँख लगाइये। सोलह आँखें सोलह फुली पर

लगाकर पानीसे जीवामृत दिजिए। 8 x 8 फुट क्षेत्र में जो खाली तीन नालियाँ (furrows) हैं, उनमें अलसंदी (लोबिया Cow pea), चना, मिर्ची, झेंडू लगाइये। हर आँख में से अनेक फुटवे (टिलर्स) निकलते है। इस प्लॉटमें आपको हर आँखमें से कम से कम बारह और ज्यादा से ज्यादा 36 गन्ने मिलते हैं। अंतर बढ़ने से गन्ने ज्यादा मात्रा में मिलते हैं। 12 गन्ने x 16 आँखे = 192 गन्ने बीज मिलते हैं। चाहिए 170 गन्ने। इस तरह केवल डेढ़ किलो के एक गन्ना बीज से एक एकड़ गन्ना लगाईए। गन्ना बीजोंको बीजामृत से बीज संस्कार किजिए। बादमें लगाए। आठ फुटके पट्टे में जो चार क्यारियाँ (Furrows) आती हैं, उनमें से नं. 1 में गन्ना बीज लगाएँ। (बाजू में दी हुई आकृति देखें)। नं. 2 और नं. 4 क्यारिमें (साल में) लोबीया या फलली या चना लगाइए। और बीचमें नं. 3 क्यारी में मिर्ची, झेंडू और सब्जियाँ लगाइए। यह आंतर फसलें गन्ने को बढ़ने के लिए मदत करती है, सहजीवी है, गन्ने का कुछ भी नही लेती, उल्टे गन्ने को देती है। गन्ने को हर 15 दिनमें एक बार या कम से कम महिनेमें एक बार पानीके साथ जीवामृत दिजिए।

गन्ने का पानी व्यवस्थापन नियंत्रित होना चाहिये। गन्ना बीज लगाने के बाद तीन महीने तक हर नालीमें पानी दिजिये। हर पानी के साथ जीवामृत प्रति एकड़ 200 लीटर दें। तीन महीने के बाद गन्ना जींस नाली में खड़ा है, उसमें पानी देना बंद करें और बीच के तीनों नाली में पानी दिजिये। याने आंतर फसलों को पानी दें। गन्ना लगाने के छह महीने बाद केवल बीच की नाली नं. 3 में ही याने मिर्ची फसल को पानी दें। बाकी नाली नं. 1,2 और 4 में पानी देना बंद करें। इस तरह पानी देने से गन्ने की जड़े पानीके तरफ बढ़ती है, भूमि में गन्ने का भक्कम आधार निर्माण करती है और जड़े जैसे पानीको शोध लेते हुए बढत्रती है, वैसे वैसे उनकी चौड़ाई बढ़ती है। परिणाम स्वरूप गन्ने की चौड़ाई और ऊँचाई और वजन बढ़ती है। पानीकी 75 प्रतिशत बचत होती है। गन्ने के बीच और अंतर फसलों के बीच जो घास उगती है, उसे उखाड़कर वहीं भूमिपर बिछाना है। जब लोबिया या मूँग, उड़द, फल्ली, चना, मठ और सब्जियाँ आंतर फसलें भूमि ढक देती है, तब घास ऊपर उगकर आना अपने आप बंद होता है। अगर हम गन्ने के काटने के बाद जो trash (सूखे पत्ते) पड़ा हुआ होता है, उसे गन्ना फसल में जहाँ भी खाली जगह हो, वहाँ भूमिपर आच्छादन स्वरूप ढककर रखते हैं, तो भूमिमें केंचवे अपना कार्य चौबीस घंटे करते हैं और गन्ने के जड़ों को पकाया हुआ अन्न पकाकर पहुँचाते हैं, भ्झूमिकी मशागत (काश्तकारी) करते है और हमारी भूमि बलवान, उर्वरा, सुफला संपन्न बनाते हैं। लोबीया (Cow pea) (या कोई भी दलहन आंतर फसल) जब अपना जीवन समाप्त करती है, तब फलियाँ तोड़कर दाने बेच दिजिये। मिर्ची औश्र सब्जियाँ बेचे और रूपये वसूल किजिये। हमने गन्ना फसल को ऊपरसे खरीदकर दिया कुछ भी नहीं। केवल बिजली, पानी और मजदूरीमें (जो कम से कम लगी है) कुछ पैसा गया है। उसकी वसूली अलंसदी लोबीया और सब्जी मिर्चीकी आंतर फसलों से मिले उत्पन्न द्वारा हो गई और कोरा गन्ना बोनस स्वरूप हमें मोफत में मिला। यही है जीरो बजट। गन्ने की खड़ी फसल पर बताये मात्रामें जीवामृत छिड़के।

******

खड़ी रासायनिक गन्ना फसल का नैसर्गिक फसल में रूपांतरण

अभी आपको गन्ने की फसल खड़ी है। वह रासायनिक खाद डालकर ली है और अभी काटने जा रही है। उसके बाद आपको उस पुरानी गन्ना फसल का रूपांतरण (Conversion) निसर्ग खेती में और 9 फुट पट्टे में (Belt) करना है। जब आपकी गन्ना फसल कटकर जाएगी, तो नीचे गन्ने के सूखे पत्ते (Sugarcane trash) भूमिपर पड़े हैं। आपने कटी हुई फसल दो नालियों में 2.5 से लेकर 3.0 फीट अंतर रखकर ली थी। अब आपको उसका रूपांतर 7.5 से 9 फूट चौड़े पट्टे में करना है। आप नीचे दिए हुए आकृतिको देखिये–

1. Sugarcane stump of harvested Sugarcane crop.
2. Previous furrows in which intercrops are to be taken.
3. & 4. Sugarcane trash put down on the both sides of central furrows for mulching.
5. On the both slopes of furrow, intercro[seeds are dibbled.

The Sugarcane Ratoon (Second generation of same Sugarcane crop) managing to trash mulching Mr. Patil A/p Kandagul, Tq, Barhali, Dist. Bidar (Karnataka)

कटे हुए गन्ने की एक कतार रखना है और दो कतार गन्ने के पत्तों से ऊपर आकृति में दिखाई तरह ढक देना है। ढक देने से आगे उगने वाले अंकुरों को (Ratoon) सूरज की रोशनी नहीं मिलेगी, तो वह नहीं बढ़ेंगे। अगर कुछ बढत्रते हैं तो उन्हे काटकर वहीं आच्छादन के रूप में डालना है। जिस कतार को बढने के लिए रखा, उसके दोनों बाजुकी नालियों से उसमें पड़ेहुये पत्ते ढके हुए कतार पर खींचकर डालिये और पानी देने के लिए दोनों नालियाँ खाली रखे। अब आपका यह 7.5 से लेकर 9.0 फुट का चौड़ा पट्टा (Belt) तैयार हो गया। दोनों नालियों में जीवामृत और पानी दें। बाद में, ढके हुए पत्तो में, जहा दिए हुए पानीकी नमी होती है, यहाँ लोबीया (Cow pea) ककड़ी, करेला, खरबूज, टरबूज (Water melon) जैसी बेल सब्जियाँ और 50% बीज चवली के और 50% बाकी बेल सब्जी के मिलाकर बीज पत्तो में छेद करके भूमि में डालिये। नमी से वह सब पत्तों के आच्छादन से ऊपर लगकर आयेंगे। उन सबको इस आच्छादन पर (Mulching) चढ़ाना है। महीनेमें दो बार पानी के साथ जीवामृत दें। आपका गन्ना बहुत बढ़िया आयेगा। जीवामृत का हर 15 दिन बाद 5 से 10% छिड़काव करें।

******

नैसर्गिक धान की (Paddy) फसल कैसे लें ?

हजारों साल पहले से भ्ज्ञारत में धान की खेती होती आ रही है। धान फसल भारत और दक्षिण पूर्व एशिया की प्रमुख एवं महत्वपूर्ण फसल है। थायलंड में मिले धान के पुरातन अवशेष कार्बन डेटा पद्धतिसे बताते हैं, की ईसा पूर्व 3500 साल याने आज से 6000 साल पहले वहाँ या दक्षिण पूर्व एशियामें धान की खेती होती आ रही है। भारत में पुरातन सिंधु संस्कृतिके हडप्पा में मिले या लोथल में मिले भात के अवशेष बताते हैं की ईसा पूर्व 2300 साल पूर्व से याने आज से 5000 साल पहले से धान उगाया जा रहा है। धान की (Oryza sativa) सारी प्रजातियाँ Oryza कुल से उत्पन्न हुई है। पूरे एशिया, अफ्रीका एवं लॅटीन अमेरिकामें धान की अठराह जंगली प्रकार मिले हैं, जीन में से दो प्रकार Oryza sativa और Oryza glaberrima खेती में लिए जाते हैं। एशियन धान प्रकार Oryza sativa हिमालय के नीचली पहाड़ियाँ, उत्तर–पूर्व भारतीय प्रदेश, ऊपरी ब्रम्हदेश, उत्तरी थायलंड, लाओस, व्हियतनाम और दक्षिण चीन आदि प्रदेशों से प्रसारित हुई है। पुरातन कालमें भारतवर्षमें हजारों स्थानीय Local किस्में थीं, जिनका उत्पादन आज के संकर बीज से कम नहीं था। सन 1912 में जॉन केली ने अपनी पुसतक 'Intensive farming in India' में लिखा है, की उस समय (सौ साल पहले) भारत में धान की करीबन 4000 स्थानीक किस्में थीं और किसान वही बीज चुनकर अगली फसल लेने के लिए संग्रहीत रखते थे। सन 1804 में एक मासिक पत्रिका 'Edingburg Rivue' प्रकाशित हुई थी, उसमें लिखा गया है की आज से दो सौ साल पहले भारत में धान की प्रति एकड़ उपज ब्रिंटिश उपज से ज्यादा थी। सोलाहवी शताब्दी में मुगल साम्राज्य के समय **अबुल फजल अलामी ने सन 1590** में एक किताब लिखी, जिसका नाम था, **'अईने अकबरी'**। उसमें उसने प्रति एकड़ धान उपज के जो आंकड़े दिये हैं वे आज के हरित क्रांतिके आंकड़ोंसे ज्यादा हैं।

दसवीं से लेकर तेरहवी शताब्दी के दरम्यान दक्षिण भारतीय सम्राट चोला राजा ने धान के उपज के बारे में जानकारी अपने रेकॉर्डमें लिखकर संग्रहीत की है। उस रेकॉर्ड का नाम है 'The Cambrige Economic History of Indial' जिसमें लिखा है की आज से 700 से 1000 साल पहले तामिलनाडू राज्य के अर्काट जिले में प्रति हेक्टर 33 क्विंटल औसतन उत्पादन था। तो रामनाथपुरम जिले में वह उससे दुगुणा 66 क्विंटल औसतन था। तब ये कृषि विश्व विद्यालय अस्तित्वमें नहीं थे। थी तो केवल निसर्ग कृषि। सन 1807 में जॉन हॉडसन ने, जो मद्रास प्रसीडेंसी बोर्ड के सभासद (Member) थे, उन्होंने लिखकर रखा है की, उस समय (आज से दोसौ साल पहले) तमिलनाडू राज्य के कोईमतूर प्रदेश में प्रति हेक्टर 60 क्विंटल धान उत्पादन मिलता था।

आज से 60 से 70 साल पहले महाराष्ट्र राज्य के कोंकण प्रदेश में धन की 1500 से लेकर 1600 स्थानीय किस्में (Local varieties of Paddy) किसान बोते थे। आज भी महाराष्ट्र के रायगड जिलेंमें केशेळे स्थित एक अशासकीय संघटन Academy Development of Science में स्थानीय (Local) धान की 450 किस्में संग्रहीत है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण किस्में हैं–सागभात, बाफली भत, बंगाल्या भात, अंत्रसाळ, भूररांता, धन्या, सुलसर, हलवा, गारवेल, जीरासाळ, कडा, जडू, कलारान्ता, चिबार कलंबा, कोलंबा, चमचली, क्रीष्णा साळ, मस्कत्या, मूगाड, पंकोली, ताबंडू हलगा, सुखेल, सन्ना, मलगा, वानेर, सफेद हलगा।

अभी भी किसानों के पास कुछ अच्छी धान की स्थानीय पुरातन (Local) किस्में मौजूद है। महाराष्ट्र राज्य के मावळ प्रांत में (पुणे जिला) सह्याद्री पहाड़ी के तलहटमें एक बढ़िया पुरातन स्थानीय धान किस्म है 'आंबे मोहर'। महाराष्ट्र के दक्षिण प्रदेश में 'बसजीरा', और उत्तरी प्रदेश में 'गरम मसाला' औश्र 8कोळपी' स्थानीय धान किस्में मौजूद है। महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिलेमें 'कोलंब', 'भडास', ठाणे जिलेमे 'कसले', कोलपी, झिनी, खडक्या, बुडका, तलसा, कसबे, कळंबी, जानपाना; रायगड जिलेमें झिनी, मालगुडया, भडास, कलाम, घोसाळी, चिमनसाळ, तामसाळ यह स्थानीय ध ाान किस्में किसान लेते हैं।

पुरातन काल में हमारे भारत वर्ष में जो धान की स्थानीय किस्में लेते थे, उनके संदर्भ पुरातन ग्रंथोंमें (किताबों में) दिये गये हैं। महर्षि कश्यप ने एक ग्रंथ लिखा था 'कश्यपीय कृषि सुक्ति'। उसमें लिखा है कि, आज से 3000 साल पहले दक्षिणी भारत में सर्वोत्तम धान की स्थानीय किस्तें थी। जैसे श्वेत साळा (सफेद चावल), रक्तसाळ (लाल चावल), स्थूल साळ (जाडी साळ), दीर्घ साळ (लंबा दाना, उत्कुष्ठ स्वाद, बासमती की पूर्व रूप), श्वेतवर्ण कलामा (सफेद दाना), रक्तवर्ण कलामा (लाल दाना), स्थूल देह का कलामा (जाडा दाना), दीर्घ कृती कलामा (लंबा दाना), हेमान सम्बक (सुनहरा दाना), कपीश सम्बक (तांबूस दाना), रक्त संबक (लाल दाना), कृष्ण संबक (काला दाना), सुका श्रृही (सफेद सुका दाना), स्थूल काया स्श्रृही (जाडा दाना), घनश्रृही (जाडा दाना), पलसा श्रृही (सुगंधित), स्वादू श्रृही (स्वादिष्ट), फाला श्रृही, द्राक्षा श्रृही, निवारा (दाने पर लाल सफेद दाग), श्वेता यव (सफेद जाडा दाना), कृष्णा यव (जाडा काला दाना), सामरा श्रृही (अधिक उपज देनेवाला और पकते समय दाना बहुत लंबा होता है), काला श्रृही (मीठा स्वादष्टि और पौष्टिक), सीता श्रृही (सफेद दाना), पीत वर्णा श्रृही (पीली रंग का दाना, कब्ज को हटाने वाला और पाचक)

हमारे पुरातन ग्रंथ, सुरपाल रचित 'वृक्षायुर्वेद' में लिखा गया है की, आज से 3000 साल पहले, एक स्थानीय धान किस्म थी, जिसका नाम थ– 'सास्तिका' जो केवल 60 दिन में ही पक्क होती थी। सन 1126 में चालुक्य नेरेश सोमेश्वर देव ने अपनी संस्कृति भाषा के विश्वकोष में, जिसका नाम 'अभिलाषीतर्थ चिंतामनी' है, तीसरे कांड में तेरहवीं अध्याय में कुछ पुरातन धान के किस्मों के नाम लिो हैं। जैसे–रक्तसाळी, महासाळी, गंधसाळी, क्षलिंगका, मूंडसाळी, स्थुलसाळी, सूक्ष्मसाळी और सास्थिका।

इसवी सन के 15 वीं और 16 वीं सदी में एक सुप्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य हुए जिनका नाम था 'आचार्य भव मिश्रा'। उन्होंने अपनी किताब 'भारतीय औषधि कोष' (Indian Materica Medica) में कुछ औषधि गुणसंपन्न धानकी किस्मों के नाम दिये हैं। जैसे रक्तसाळी, कलमा, बंधूका, शकुन्हीत, सुगंधित, कराडमाका, महासाळी, दुष्यत, पुष्पंडक, पुंड्रिका, महिषमस्तका, दिर्घसुका, कंचनका, ह्यान (चीन से आयात), लोध्री पुष्पका।

इसवी सन के सोलहवी सदीमें अबुल फजल अलामी ने लिखे 'आईने अकबरी' किताब में 1590 सन में लिखा कि सम्राट अकबर को नीचे दी गयी धान की पुरातन किस्में बहुत अच्छी लगती थी। बादशाह ने उनका स्वाद लिया था। जैसे –मुश्कीन, सादा, सुकदास, दुना प्रसाद, समजीरा, शक्कर चिनी, देवजीरा, जीनजीन, दहाक, जिनीसती। इन में से तीन सादा, समजीरा और शक्कर चीनी आज भी बंगाल प्रांतमें किसान लेते हैं। बांगला देश में 'मुश्कीन' किस्म को 'गंध कस्तुरी' कहते हैं।

अभी हमारे देश में अगर कोई सर्वोत्तम सुगंधित स्थानिक स्वादिष्ट धान की किस्म है, तो वह बासमती है। विश्व प्रसिद्ध बासमती। भारत में बासमती बौद्ध काल से प्रचलित है। आज से 6000 साल पहले धान के बारे में 'कृष्णा आयुर्वेदमें' श्रृही (Rhihi) नाम से बताया गया है। बौद्ध काल में बौद्ध साहित्य में धान को 'साळी', 'तांदूळ', 'भातम्' नाम से बताया गया है। पानिणी ने अपने पुसतक 'अष्टाध्यायी में' धान को 'लोहिता साळी' नाम से लिखा है। हमारे देश में बासमती की बढ़िया किस्में किसान ले रहे हैं। उनमें से कुछ ये हैं – बासमती, पाकिस्थानी बासमती, डेहराडून बासमती, अमृतसर बासमती, रणबीर बासमती, कस्तूरी बासमती, हरियाणा बासमती, पंजाब बासमती, बासमती–217, बासमती–386, सुपर बासमती 385, बासमती 198, पुसा बासमती, HBB–19, बासमती 370.

दूसरी सर्वोत्तम सुगंधी स्थानीक किस्में हमारे देश में हैं– बादशाही भोग आंबेमोहोर–157, आंबमोहोर–159, आंबेमोहोर–102, धिनाम साल–39, चिन्नोर, दुबराज, बादशाही कोलम, हीरकणी, जवफूल इंद्रायणी, एच.एम.टी., T–412, मही सुगंधी, गंधसाळ, तरौरी कर्नाल।

गुजरात राज्य में मेहसाना जिले में काटोल तहसील में अमरापुर गाँव में श्री. अमृतभाई पटेल और श्री. रमेशभाई पटेल अपनी संस्था 'ग्राम भारती' के माध्यम से पुरातन स्थानीक धान की किस्में संकलन और संग्रह कर रहे हैं।

धानके बीज कौनसे लें ?

किसी भी हालत में संकर बीज या कृषि विश्वविद्यालय संशोधित किस्में मत लें। उन पर बहिष्कार रखें। क्योंकि, संकर बीज अधिक उत्पादन दनेवाले होते हैं, ऐसा वे कहते हैं, वह सरासर झूट है, छलावा है, अवैज्ञानिक है। कोई भी संकर किस्म अधिक उत्पादन देने वाली होती नहीं। जब आप उन्हें रासायनिक खाद नहीं डालते, तो यह संकर धान किस्म स्थानीय (Local) किस्में कम उपज देती है। रासायनिक खाद डालने पर ज्यादा उत्पादन देती है। यह अधिक उत्पादन उस धान का अधिक उत्पादन नहीं है, यह रासायनिक खाद, कीटनाशक दवा, कर्बोदकं (Carbohydrates) और पानीका अधिक उत्पादन है। चावल का अधिक उत्पादन याने उसमें जो पौष्टिक तत्व होते है और औषधी तत्व होते हैं, उनका अधिक उत्पादन। जो इन संकर दाने में होता नहीं। ये संकर किस्में या मूलतः हरित क्रांति एक बहुत बड़ा धोखा है। अगर सौ किलो रासायनिक खाद डालकर संकर किस्म के हमें धान बीज मिलते हैं, तो उसमें केवल 50 किलो दाने (चावल) होते हैं। लेकीन स्थानीय (Local) किस्ममें हमें 75 किलो दाने (चावल) मिलते हैं। जया पद्मा जैसे सीधी (Straight line varieties Selected varieties) 60 किलो चावल दाने मिलते हैं। 50 किलो संकर चावल दाने की कीमत 300 रूपये होती हैं। सीधे Selected straight line 60 किलो चावल दाने की कीमत 450 रूपये हमें मिलते हैं। और स्थानीक सुगंधित बासमती के 75 किलो चावल दानेक की कीमत हमें औसतन 1500 रूपये मिलते हैं। कौनसा पैसा ज्यादा आ रहा हमारे पास ? संकर 300 रू., सीधे 450 रू. और बासमती या चिन्नोर 1500 रूपये। संकर किस्मों का उत्पादन प्रति एकड़ 24 क्विंटल धान, सीधे (straight) किस्मो की उपज 18 किंव्टल और स्थानीय बासमती 12 किंव्टल। क्रमक्षः चावल 12 किंव्टल, 10.8 किंव्टल, और 9 किंव्टल। संकर चावल 12 x 600 = 7200 रूपये; (straight) सीधे चावल 10.8 x 750 = 8200 रूपये और स्थानीय (Local) बासमती या चिन्नोर 9 x 2000 = 18000 रूपये। स्थानीय बासमती या चिन्नोर हमें सबसे जयादा पैसा देती हैळ। याने हमें मुनाफा स्थानीय (Local) किस्म ही देती है। ये संकर किस्म का अधिक उत्पादन एक छलावा है, षड़यंत्र हैळ। आप क्या चाहोगे? संकर बीज लेकर सबसे कम पैसा, घाटा, कर्जा, बैंक और साहूकारों की जप्ती चाहोगे या स्थानीय सुगंधित किस्में लेकर अधिक पैसा चाहोगे? जीवामृत का केवल उपयोग करके हमारे धान उत्पादक आपसे अधिक उपज और मुनाफा निसर्ग कृषिका जीरो बजट अमलमें लाकर ले रहे हैं। और खर्चा कुछ भी नहीं। कुछ खरीदना ही नहीं है। है तो केवल हमने हमारी उपज बाजार में खुद तय किये दामों पर बेचना।

****

संकर किस्में, सीधी किस्में (Straight जैसे जया, पदमा) और स्थानीक (Local) किस्मो में क्या फासला (Difference) है?

टेबल

निसर्ग कृषिमें धान की फसल को हवा में से नैट्रोजन कैसे मिलता है?

हम अपनी नैसार्गिक धान फसल को कोई यूरिया या कोई रासायनिक खाद नहीं दे रहे हैं। लेकिन फसल को नत्र आवश्यक है। हम जीवामृत देंगें। लेकिन जीवामृत देने से बाकी सभी खाद्य तत्व मिलते हैं, नत्र कम मिलता है। नत्र देने की अलग व्यवस्था करनी पड़ेगी? नही! क्योंकि, निसर्ग ने (प्रकृति ने) वह व्यवस्था भी जड़ों के पास खड़ी कर दी हैं। धान फसल पानी को बहुत प्यार करती है। जहाँ बहुत बारिश होती है, वहाँ बारिश के पानी में हवा में से नत्र घुल जाता है और फसलों के जड़ों को अपने आप मिलता है। लेकिन उसकी भी मात्रा कम होती है। धान की फसलको परिस्थिति नुसार खुद को ढालने की असीम क्षमता है। जहाँ बहुत बारिश होती है तो वहा धान की फसल केवन पानी संग्रह में बढ़ने लगती है। जब आप सिंचन करते हो तो, सिंचन के पानी में भी खुद को बढ़ाती है। और जब बारानी माने केवल बारिश पर के पानी पर धान फसल निर्भर होती है, (Rainfed) तो बिना पानीमें खड़ी, भूमिसे नमी लेकर खुद को बढ़ाती है।

धान फसल के जड़ों के पास कुछ अन्नपूर्णा मायको-हायझा फुफंदे (Fungus) जैसे ग्लोमस इटॅनिकेटम् प्रजाति (Species of Arbuscular Mychorhyza), जो बहुत ही उपयुक्त और बहुआयामी फंगस है, वह ध ाान की जड़ों को पानी में रहकर ही नत्र, फॉस्फेट, पोटाश और बाकी सभी खाद्य तत्वों की उपलब्धि जड़ों को कराता है। ये फंगस और कुछ शैवाल (Fungus & Algae) पानी में रहकर जड़ों के पास अपनी बस्ती (कॉलनीज)

बनाते हैं, भूमिमें से अनुपलब्ध खाद्य तत्व लेते हैं, हवे में से नत्र लेते है, जो बहते पानी में मिश्रित होकर पानी के साथ फसल में आते हैं, और वह सब पकाकर उपलब्ध स्थितिमें धान फसल की जड़ों को उपलबध कराते हैं। इसलिए, हमें नत्र दनेके लिए कोई यूरिया की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह सभी साभी फंगस और शैवाल केवल निसर्ग कृषि में ही कार्य करते हैं। ये फंगस कुछ बॅसिलस पॉलीमिक्सा जैसे फॉस्फेट उपलब्ध कराने वाले जीवाणु के साथ कार्य करते हैं और उनकी मदद से फॉस्फेट भी उपलब्ध कराते हैं। निसर्ग कृषिमें हमें ऊपर से धान की फसल को कोई भी रासायनिक खाद उपयोगमें नहीं लाना पड़ता है। जीरो बजट है।

******

धान फसल कैसे लें ?

धान की फसल तीन पद्धतिसे हमें लेना है।

1) संपूर्ण नैसर्गिक पद्धति (Total natural system)
2) बीज बोकर पारंपारिक पद्धति (Ancient seed sowing system)
3) स्थलांतर पद्धति (Transplanting system)

1) संपूर्ण नैसर्गिक पद्धति–

विगत हजारों सालों से लेकर हरित क्रांतिकी शुरूवात होने से पहले तक हमारे भारत वर्ष में धान की फसल काटने के बाद तुरंत रबी में दलहन फसल ली जाती थी। क्या उद्देश्य था? उद्देश्य था, आगे खरीफ में जो धान की फसल लेनी है, उसके लिए भूमि में पर्याप्त नत्रयुक्त बेवड संग्रहीत करना, याने भूमि में ह्यूमस का संग्रह बढाना, और उपलब्ध नमी में दूसरी दलहन की फसल लेकर अपनी आमदानी बढ़ाना, खाने में एकदल (चावल) और द्विदल (चना या पोपट या उडीद) का मिश्रण हो, भूमि ज्यादा से जयादा समय हरियाली से (फसल से) ढकी रहे, ताकि, हमें हर दिन प्रति चौरस फुट 12.5 किलो कॅलरी सौर ऊर्जा पौधों के हर पत्तो में पकड पाएँ और उससे 4.5 ग्रॅम जैवभार निर्माण कर सके। याने ज्यादा से ज्यादा संपत्ति बढाये।

भूमिमें फसल की जड़े जो खाद्य लेती है, एक विशेष प्रकार के खाद्य भंडार से लेती है, जिसका नाम है 'जीवनद्रव्य' (Humas)। धान की फसल के पहले, हम जब रबी में दलहन की फसल लेते हैं, तो इस जीवनद्रव्य की (Humas) मात्रा बढ़ाते हैं। यह हमारा बैंक बेलंस होता है। भूमिमें जितना ज्यादा जीवनद्रव्य (ह्युमस), उतनी हमारी भूमि बलवान होती है। तो हमारा उदिष्ट चाहिये; भूमिमें निरंतर जीवन द्रव्य का (ह्युमस) निर्माण कार्य चलता रहे। ह्युमस (जीवनद्रव्य) कौन कौन तत्वों से बनता है? जीवनद्रव्य में सेंद्रिय कार्बन और नायट्रोजन (नत्र) प्रमुख घटक होते हैं। उन का परस्पर प्रमाण 10:1 (दस को एक) होता है। तो हमं हमारे भूमिमें ह्युमस (जीवनद्रव्य) निर्माण करने के लिए कर्ब और नत्र भूमिमें संग्रहित करना है। कार्बन कहाँ से मिलता है ? कार्बन भूमि पर निरंतर आच्छादन (Mulching) ढका रहने से मिलता है। यह काष्ट आच्छादन (सजीवों के मृत अवशेष) विघटित होने से बहुत जादा कर्ब ह्युमस के लिए उपलब्ध होता है। लेकिन नत्र बहुत कम मिलता है। तो हमें नत्र की व्यवस्था करनी है। हवामें 78.6% नत्र है और दलहन की फसल वह नत्र हवा में से लेती है और भूमि में संग्रहित करती है। इसका मतलब है, अगर हम खरीफ में धान की फसल लेने से पहले रबी में एक दलहन (द्विदल) की फसल (चना, बीन्स, उडद) लेते हैं, तो भूमि पर्याप्त मात्रा में नत्र संग्रहीत करती है। आगे दलहन की फसल कटने के बाद भूमि धूपकाल में आच्छादन से (Straw mulching) ढकी रखते हैं, तो भूमिमें नमी टिकी रहेगी, सूक्ष्म जीवाणु ह्युमस (जीवनद्रव्य) बनाने का कार्य इस आच्छादन को विघटित करके और भूमि में संग्रहीत नत्र को लेकर आच्छादन विघटन के बाद मुक्त हुए कर्ब के साथ संयोग कराके निरंतर करते रहेंगे। आगे, बारिशकाल में यह जीवन द्रव्य निर्मिती प्रक्रिया तेजी से होगी, तो भूमि में ज्यादा से ज्यादा जीवन द्रव्य (ह्युमस) संग्रहीत होगा। तो हमारी धान की फसल भी बढ़िया आएगी। भूमि में जितनी ज्यादा मात्रा में जीवनद्रव्य (Humas) संग्रहीत होता है, उतनी ही हमारी फसल बढ़िया आती है, उपज उतनी ही बढ़ती है। यह है नैसर्गिक धान लेने के पीछे तत्वज्ञान (Philosophy of the natural Paddy cultivation)।

******

पूर्व फसल – दलहन द्विदल (चना, उडद, वाल, बीन्स) –

अब आपकी धान की फसल खड़ी है। वह अब कटने को आई है। आपकी फसल कटने की स्थितिमें उसके पत्ते पीले रंग की ओर जा रहे हैं, फसल अपना रंग पिलापन की ओर से हरे रंग की तरफ पुनश्च यात्रा कर रही है, दाने पूर्णतः पक्क स्थितिकी अवस्था में है, लेकिन बालीकी की (Ear) बालियों के देंठ अभी थोड़ा हरे है। यह स्थिति होती है धान की

फसल काटने से 15 दिन पूर्व की। फसल काटने के 15 दिन पूर्व दलहन जैसे चना, बीन्स, वाटाणा, उडद के बीज बीजामृत से संस्कारित किजिये; छाँवमें सुखाइये और खड़ी धान की फसल के ऊपर इस तरह उछालकर छिडकिये कि पूरे बीज सभी फसल के उपर पड़े। ये दलहन के बीज पीली पडी धान की फसल पर से फिसलकर भूमि पर पड़ेंगें कुछ बीज फसल के पत्तों पर ठहरेंगे, लेकिन, हवा का झोंका आते ही वह बीज भी नीचे भूमि पर गिरेंगे। उस समय भूमि में पर्याप्त मात्रा में नमी (moisture) होगी। क्योंकि उस समय उत्तर पूर्व इशान्य मानसून की वर्षा आएगी। इस पर्याप्त नमी से वे दलहनके बीज उगकर ऊपर आएँगे। तब तक आपकी धान की फसल कटने की स्थितिमें होगी। फसल के पत्ते सूख गए होगें या सूखने की ओर होगें, सूरज की रोशनी नीचे की तरफ जाएगी और उस रोशनी का फायदा उगते हुए दलहनके अंकुरों को मिलेगा।

धान की फसल कटते समय मजदूरों के पाँव तले या आपके पाँव तले वे अंकुर दबेंगे। चिंता मत किजिये। फसल काटने के बाद वे अंकुर पुनश्चः सूरज की ओर खड़े रहेंगे और बढ़ने लगेंगे। भूमिमें जितनी नमी होगी, उस मात्रा में ये नई दलहनकी फसल बढ़ने लगेंगी। उस समय अगर सिंचन की व्यवस्था है, तो एक पानी दे और पानी के साथ्ज्ञ जीवामृत दें। अगर सिंचन की व्यवस्था नहीं है, तो 5 लीटर की जो कॅन होती है, उसे नीचे (बॉटम में) बाहर की ओर छेद करके उसमें एक काडीडाल दिजिये। उस भरकर कॅन से ही फसल में घुमकर खाली जगहपर डालिये। फसल पर एक–एक मास के अंतराल पर जीवामृत छिडकिये। उसके लिए 5 लीटर जीवामृत लेकर उसमें 5 लीटर पानी डालिये ओर लकडी से घोलकर रातभर रखिये दूसरे दिन सुबह उपरका लाल द्रावण अलग निकालकर वह 100 लीटर पानीमें मिलाकर खड़ी दलहन की फसल पर छिडकिये। बहुत बढ़िया फसल आयेगी। अगर सिंचन है तो महिने में दो बार जीवामृत दें।

आपके धान के फसल में चारो ओर आप जो मिट्टी के बाँध (Boundaries) खड़ें करते हो, उस पर ग्लिरिसिडीया लगाइए और दोन ग्लिरिसिडीया के बीच तुवर (अरहर) लगाइए। यह आपको आगे आच्छादन (Mulching) के लिए उपयोग में आयेंगे। ग्लिरिसिडीया के शरीर में 3.6 से लेकर 4.6% नत्र होता है, तेजी से बढ़ते हैं; हर 21 दिन बाद हमें उनके कटिंगस् मिलते हैं। अरहर का हमें उत्पादन भी मिलेगा और काष्ट मिलेगा। इन दोनों के (ग्लिरिसीडीया और अरहर Peagon pea) जड़ोपर हवा में से नत्र लेकर भूमिमें संग्रहित करने वाले रायझोबीयम सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। वे हवा में से नत्र लेते हैं और भूमि में संग्रहित करते हैं। जिसका फायदा हमारी धान की फसल को होता है। धान की खेती में जो बाँध होते हैं, उन पर चिकू, मोसंबी, केला, सीताफल, अनार, काजू, नारियल, सुपारी, आम जैसे फल पेड लगाइएँ। सुनिये, इनका हमारे धान के फसल पर कोई भी दुष्प्रभाव नहीं होगा। बल्कि, हमें अतिरिक्त उत्पादन मिलेगा। अगर लड़की की शादी करना है या बच्चों को उच्च शिक्षा देनी है, तो केवल ध्ाान की उपज लेकर नहीं कर सकते। उसके लिए फलो के पेड़ लगाकर अतिरिक्त उत्पादन की व्यवस्था किजिए। यह बहुत आवश्यक है।

मार्च महिने में, यह दलहन की फसल पकेगी तो उसकी कटाई किजिएँ। दाने निकालकर उसका काष्ट इस धान की फसल कटे हुए खाली भूमिपर आच्छादन के स्वरूप बिछाइएँ। धान के काष्ट और जो भी सूखा काष्ट आपको मिलता है, उसका (Straw) आच्छादन के लिए उपयोग करें। सारी भूमि इस काष्ट आच्छादन से (Straw mulching) ढक दें। दलहन कटते ही तुरंत यह आच्छादन डालिए। आच्छादन डालने से पहले खाली भूमिपर जीवामृत छिडकिये। पूरा मार्च, एप्रील, मई ाऔर जून यह भूमि आच्छादन से ढकी रहेगी और तपती हुई तेज तर्रार धूप से और तेजी से बहती गरम हवा से मिट्टी और भूमि अंतर्गत जीव जंतुओं की रक्षा होगी। मई महीने के पहले हप्ते में (अक्षय तृतीया) स्थानीक सुगंधित किस्म के धान बीज बीजामृत से संस्कारित किजीये, छाँव में सुखाइए। इस आच्छादन में लंबी डंडी लगी हुई हथियार से (Long handed sickle) हर एक से लेकर 1.5 फुट अंतराल पर ईर्द गिर्द छेद किजिये और इन छेदों में से धान के संस्कारित बीज नीचे भूमिमें किए छोटे से किये हुए खड्डे में डालकर उस पर थोड़ी मिट्टी ढकेल दिजिये। इसी तरह, चारो ओर हर एक से 1.5 फुटअंतर पर छेद बनाकर बीज डालते जाइये। वे छेद वैसे ही रहने दें।

मई महीने के शुरूमें पूर्व मानसून की बारिश होगी। बारिश होने के बाद जीवामृत उस मल्चींग पर छिड़क दिजिए। दूसरे बाशि से वह जीवामृत नीचे भूमिपर जाएगा। भूमिमें नमी, जीवामृत और काष्ट आच्छादन तीनों का मेल होकर भूमिमें जीवनद्रव्य की (Humas) तेजी से निर्मिती होने लगेगी, केंचवे (Earthworms local) अपना कार्य शुरू करेंगे और भूमिकी कीश्त (Cultivation) करेंगे, अपनी विष्ट (Casting) सतह पर

आच्छादन के नीचे लाकर डालेंगे और धान के बीज बढ़िया उगरक आच्छादन में से (Through mulching) अपना रास्ता निकालकर आच्छादन के ऊपर सूरज की ओर बढ़कर आयेंगे ओर बढ़ने लगेंगे। पूर्व चना या उडद या बीन्स के रबी फसल ने जो नत्र भूमिमें संग्रहीत किया था, वह आच्छादन का विघअन होने से आजाद हुए कार्बन से मिलकर जीवनद्रव्य (ह्युमस) बनाने का महान कार्य शुरू करेगा और धान की जड़ों को पर्याप्त खाद्य दिलाएगा। बारिश के पानी के साथ उस पानीमें इस धान की फसल को महीनेमें दो बार जीवामृत दिजिए।

इस धान की फसल को कुछ भी रासायनिक खाद, कंपोष्ट खाद, व्हर्मी कंपोष्ट, गाय के सिंग का खाद (Biodynamic), शहद और घी, ॲरोग्रीन्स, नॅडेप या अग्निहोत्रा विधि आदि किसी का भी उपयोग करने की कोई भी जरूरज नहीं। ये सब रासायनिक खेती के संसाधन हैं और किसानों की लूट करने वाले हैं, भूमि को विषैली बनाने वाले हैं, शोषण करने वाले हैं। उनकी कभी भी जरूरत नहीं है। केवल महीने में दो बार सिंचन के पानी के साथ जीवामृत दिजिए और इससे पूर्व बताया (दलहन फसल के अनुसार) वैसे फसल पर जीवामृत का दो तीन बार हो सके तो छिड़काव करें। कोई हानि पहुँचाने वाले कीट आते हैं तो अंतमें बताएँ नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र एवं अग्निअस्त्र जीरो बजट दवाओं का फसल पर छिड़काव किजिए। जीवामृत फसल पर छिड़कने से कोई कीट हानि नहीं पहुँचाते। दवाओं के छिड़काव की जरूरत ही नहीं होती।

जब फसल पकने की स्थितिमें होती है, तो कटाई के पन्द्रह दिन पहले पुनश्चः दलहन के (द्विदल चना, उडद या बीन्स) बीज खड़ी धान की फसल पर छिड़किए। बादमें दाने पक्व होते ही फसल काटिये। खाली भूमिपर जीवामृत दिजिए। हो सके तो सिंचन किजिए। अब नई दलहन की फसल उगरक आयेगी ओर बढ़ने लगेगी और बढ़ने लगेगी। हर साल यह चक्र चलाइए।

2) बीज की बोआई करके धान फसल लेने की पद्धति–

हमने देखा की प्रति एकड़ गोबर खाद सौ किलो (दो थैलियाँ) पर्याप्त है। रासायनिक खाद एवं अन्य सेंद्रिय खाद और गोबर खाद भी खरीदकर लाकर देनेकी कुछ आवश्यकता नहीं। धान के बीज बीजामृत से संस्कार करके रखें। हमारा जो पारंपारिक बीज बोआई अवजार है, उसे तीन सीत (खूट) है। हर दो सीत के बीच एक फुटअंतर रखिये। हमें धानके बीज के साथ उडद की आंतर फसल लेनी है। वह इस तरह–

आकृती

तीन फुट अंतराल में दो पंक्तियाँ धान की आती है। यान वास्तव में धान की दो पंक्तियाँ एक फुट अंतराल पर होगी और दूसरी दो पंक्तियाँ 2 फुट अंतराल पर आयेगी। उन दोनों पंक्तियाँ के बीच एक उडद की पंक्ति होगी। यह उड़द कम ऊचाई तक बढने वाला (ठेंगू) चाहिए। हर दो धान की पंक्तियाँ के बीच बोई यह उडद की आंतर फसल चार कार्य करेगी। पहला कार्य धान के फसलों को हमवा में से फोकट का नत्र देना, दूसरी भूमि पर सजीव आच्छादन करना, तीसरी हानिकारक कीटकों से ध ाान की फसल को बचाना और आंतर फसल का उत्पन्न देना। धान फसल लेने के लिए खरीदकर तो कुछ लाना नहीं। लेकिन मजदूरी तो लगेगी। वह मजदूरी का खर्चा उडद की आंतर फसल देंगी और धान की फसल पूर्ण बोनस स्वरूप मिलेगी। यही है जीरो बजट।

बीज बोआई अवजार से ऊपर दी हुई पद्धति से सामने तीन महिला मजदूर प्रति एकड़ दो बोरियाँ (सौ किलो) छाना हुआ गोबर खाद (F.Y.M.) बोएगी और पीछे बीज बोएगी। पहली मजदूर महिला के पास धान के बीज, दूसरे के पास उडद के बीज और तीसरी के पास पुनश्चः ध ाान के बीज देकर बोना है। जब बोआई अवजार पलटकर आएगा तो धान के पास धान की पंक्तियाँ आएगी। इस तरह पूरी बोआई किजिये। हो सके तो जीवामृत का छिड़काव करें। बहुत बढ़िया धान की फसल

3) रोपाई पद्धति (Transplanting of seedings)

पूरे विश्व में, विशेषतः दक्षिणपूर्व एशिया में और भारत में धान रोपाई अब आम बात हो गई है। मैने देखा, रोपाई के पहले, रोपर डालने के लिए (Seedbed) बहुत सारी बातें करनी पड़ती है। जनवरी से लेकर मई महीने तक जंगलो से सूखी हुई पत्तियाँ और डालियाँ लायी जाती हैं।

उसके लिए हमारी महिलाएँ (ज्यादातर इनके ऊपर ही यह काम सौपा जाता है) दिनभर जंगल में भटकती हैं; सूखे पत्ते जमा करती हैं, ऊचे–ऊचे पेड़ों पर चढ़कर डालियाँ तोड़ती है; तोड़ते–तोड़ते नीचे गिरती भी हैं; जखम होते हैं; हड्डी भी टूटती है; यातनाएँ होती है। यह पीड़ा यातना केवल इन तोडने वाले महिलाओं को ही नहीं होती; जिन पेड़ों की डालियाँ तोड़ी जाती हैं, उन पेड़ों को पीड़ा, यातना सबसे ज्यादा होती है। इन सब पत्तियों को और डालियों को जमा करके धन फसल जिस खेत में लेना है, उस खेत के बीचों बीच बिछाया जाता है। आखिर में उसको जलाया जाता है। मानसून की वर्षा शुरू होते ही वहाँ धानके बीज डाले जाते हैं। जहाँ रोपाई की जाती है, उस भूमिमें बारि में निरंतर हल चलाकर भूमिको रोपाई के लिए तैयार किया जाता है। बाद में उस भूमिमें धान की रोपाई की जाती है। यह सब बहुत कष्टदायक और पीड़ा पहुचानेवाला है। इन सब श्रमों से और पीड़ा से मुक्ति पाना चाहते हों तो नैसर्गिक धान लेने की पद्धति बहुत सरल और उपयोगी है। लेकिन अगर आप रोपाई पर ही निर्भर रहना चाहते हो, तो उसके बारे में हम जरूर यहाँ चर्चा करेंगें।

आपके खेत के चारों ओर और धान की भूमि के चारों ओर बाँध पर आप ग्लिरिसिडीया और अरहर (Peagon pea) जरूर लगाये। धान का जो सूखा हुआ काष्ट होता है, जो बचा रहता है और बारिश से काला पड़ा है, उसको संग्रहीत किजिये। करंज और नीम की छोटी–छोटी डालियाँ, जो पेड़ों के नीचे गिरी होती हैं और नीम और करंज फल (पीले सूखे पके हुए) पेड़ों के नीचे गिरे होते हैं, वह सब वहाँ से उठाकर संग्रहीत करें। जब मानसून की वर्षा आती है और आप रोपाई की तैयारी में लग जाते हो तो, भूमिपर जमा पानीमें हल चलाने से पहले वह सभी सूखा काष्ट और नीम करंज के सूखे फलों को पीसकर भूमि पर छिड़ककबर डालिये। प्रति एकड़ 200 लीटर जीवामृत डालिये और बाद में हल चलाइये। पानी के साथ जब मिट्टी घुल जाएँगी, ये काष्ट और पीसे हुए नीम और करंज के फल पावडर भी मिट्टी में घुल जाएगी। इससे उसमें जो बंदिस्त औषधि रसायन (अल्कलॉईडस्) होते हैं, वे उस गीली मिट्टी में घुल जायेंगे, जो आगे धान के पौधों में जाकर पौधों में किटकों के प्रति प्रतिरोध शक्ति निर्माण करेंगे। साथ–साथ भूमि में सेंद्रिय पदार्थ संग्रहीत होगा, तो ह्युमस निर्मिती में बड़ी सहायता होगी। हल से मिट्टी की अच्छी खासी पिटाई होने के बाद (after mudding of the soil) रोंप स्थल से (seed bed) रोंप (seed-lings) उखाड़कर उनकी जड़े बीजामृत में डुबोएँ और बाद में उन रोपों की रोपाई किजिये।

रोपाई के बाद बारिश निरंतर शुरू रहती है, लेकिन बीच में हर दस पन्द्रह दिन के बाद दो–तीन दिन के लिए बारिश रूकती है। उस समय तुरंत उस फसल में जो पानी खड़ा होता है, उसमें जीवामृत डाल दिजिये। जीवामृत एक जगह पानी में डाला तो भी तो पूरे पानीमें फैलता है और भूमि उसे पानी में से सोंख लेती है। हो सके तो हर महीने में दो बार या कम से कम एक बार जीवामृत प्रति एकड़ 200 लीटर डालिये। जीवामृत का छिड़ाकव किजिये। विधि मैंने इसके पूर्व बताई है। कीटों से सुरक्षा चाहते हो तो कीटनाशी दवाएँ छिड़किये। उसके बारेमें मै जानकारी दे रहा हूँ। बहुत बढ़िया धान की फसल आयेगी। केवल जीवामृत डालना है। जीवामृत के सिवाय अन्य किसी भी खाद का उपयोग करने की जरूरत नहीं।

******

किसी भी फसल पर छिड़काव के लिए घर में ही जीये बजट दवा कैसे बनाये ?

कीटनाशी दवाएँ–

1) नीमास्त्र – (रस चूसने वाले कीटक एवं बारिक झल्लियाँ के प्रति)

5 किलो नीम की हरी पत्तियाँ ले या नीम के सूखे 5 किलो फल लें और पत्तियों को या फलों को कुटकर रखें। सौ लीटर पानी में यह कुटी हुई नीम फल की पावडर या कुटी हुई पत्तियां डाले। उसमें 5 लीटर गोमूत्र डाले और एक किलो देशी गाय का गोबर (Cow dung) डालें। लकडी से उसे घोलें और ढककर 24 घंटे रखें। 24 घंटे के बाद उस द्रावण को कपड़े से छान लें और फसल पर छिड़काव करें।

2) ब्रम्हास्त्र – (बाकी कीटक और बड़ी इल्लियाँ)

10 लीटर गोमूत्र लें। उसमें 3 किलों नीम के पत्ते कुटकर डालें। और उसमें 2 किलो करंज के पत्ते या नहीं मिले तो 3 किलो के स्थान पर 5 किलो नीम के पत्ते ही कुटकर गोमूत्र में डालें। उसमें और 2 किलो सीताफल के (Annona sp.) पत्ते कुटकर डालें। उसमें और 2 किलो बेल

के (leaves of Aegle mermelos) पत्ते कुटकर डालें। उसमें दो किलो सफेद धूतुरे के (Datura innoxia) पत्ते कुटकर डालें। अब ये सभी वनस्पति पल्प गोमूत्र में घोलिये। उपर ढक्कर रखकर उसे उबालिये। तीन चार उबाली (Boiling) होने के बाद उस बर्तन को नीचे रखिये। 48 घंटे उसे वैसे ही ठंडा होने के लिए रखिये। बाद में कपड़े से छान लिजिये और भरकर रखिये। वह हो गया ब्रम्हास्त्र तैयार। 100 लीटर पानी में 2 से लेकर 2.5 लीटर मिलाकर फसल पर छिड़काइये।

3) अग्री अस्त्र – (खोड कीट (stem borer), फलो में होने वाली इल्लियाँ, (Pod borer) फल्लीयों में रहने वाली इल्लियाँ, कपास के बोंडी में रहने वाली इल्लियाँ (Boll worms) और सभी बड़ी इल्लियाँ)–

10 लीटर गोमूत्र लें। उसमें 1 किलो तंबाखू खाने का (tobaco) कुटकर डालें। उसमें 1/2 किलो तीखी हरी मिर्ची (Green chilli) कुटकर डालें। उस गोमूत्र में 1/2 किलो लहसून (Garlic) कुटकर डालें। और उस गोमूत्रमें 5 किलो कडूनीम के पत्त कुटकर डालें। लकड़ी से उस गोमूत्र के घोल को घोले। बाद में उस बर्तन पर ढक्कन रखकर उस घोल को उबालें। चार बार उबाली (Boiling) आने के बाद वह बर्तन नीचे रखें और ढक्कनसहित 48 घंटे ठंडा होने के लिए वैसे ही रखें। 48 घंटे के बाद उस घोल को कपड़े से छान लें और बॉटल में भरकर रखे। सौ लीटर पानी में 2 से लेकर 2.5 लीटर यह अग्री अस्त्र मिलाकर फसल पर छिडकाव किजिये।

4) फंगीसाइड – फफूंदीनाशक दवा –

गोबाण– सौ लीटर पानी में 3 लीटर खट्टा मट्ठा (butter milk) लस्सी मिलाकर फसल पर छिड़किये।

नैसर्गिक गेहूँ फसल कैसे लें ?

हरित क्रांतिने गेहूँ की खेती का अर्थ ही बदल डाला। गेहूँ का अर्थ पोषण याने पौष्टिकता। यह अर्थ हरित क्रांतिके पहले माना जाता था। इसके लिए पुरातन काल से गेहूँ की अनेक बढ़िया स्थानीय (Local) किस्में किसान लेते थे। लेकिन, आगे जब अनाज की कमी होने लगी, तो गेहूँ की नई किस्में कृषि विश्व विद्यालयों द्वारा खोजी गई। हमारी स्थानीय गेहूँ (Local) किस्में दाने की उपज कम देती थी। लेकिन, उसमें पौष्टिकता और पोषण भरा पड़ा था। अगर उस स्थानीय गेहूँ की एक चपाती (bread) रोटी खाते, तो दिनभर भूख नहीं लगती थी। लेकिन निरंतर अकाल पड़ते रहने से जनसंख्या के बढ़ती रफ्तार के साथ गेहूँ उत्पादन जब मेल नहीं खाता था, तो नई संकर किस्में खोजी गयी और अधिक उत्पादन लेने की होड़ लगी रही। हरित क्रांति के शुरू में इन नई संकर किसमों की उपज तो तेजी से बढ़ी। उसका कारण था रासायनिक खादों का उपयोग। जब तक भूमिमें हजारों सालो से निरंतर चले आए नैसर्गिक खेती तंत्रो से जमा उर्वरता (fertility) ह्युमस संग्रहीत था, तब तक रासायनिक खाद डालकर उपज मिलतीगयी। लेकिन, आगे जब भूमि में हमें विरासत में मिला ह्युमस (उर्वरता) रासायनिक खेती द्वारा खतम हो गया, वैसे–वैसे 1985 से गेहूँ और हर फसल का उत्पादन रासायनिक खाद की मात्रा बढ़ाने के बावजूद घटता गया। आज वह औसतन गेहूँ उत्पादन प्रति हेक्अर 20 क्विंटल तक नीचे आया है। अग कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा प्रसारित गेहूँ की संकर किस्में अधिक उपज नहीं देती; चाहे आप कितना ही रासायनिक खाद डालों। हरित क्रांतिका यह पतन है।

लेकिन, हमारी स्थानीय बढ़िया किस्में जैसे सिहोर, चंदोसी, बंसी, कालीकुसली, खपली, पोपातीया, रव्वाई, गोधुमालू, संम्बा केवल जीवामृत पर नैसर्गिक खेती का जीरो बजट अमल में लाकर कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा दी गई विकसित गेहू की संकर किस्मों से ज्यादा उपज देती है। तो क्यों वे कम उत्पादन देने वाली संकर गेहू किस्में लें? हमारी स्थानीय (Local) किस्में क्यों न लें? दूसरी बात यह है की H.D.2189 या कोई संकर गेहूँ का बाजार मूल्य 600 रूपये प्रति किंव्टल और हमारे स्थानीय चंदौसी या सिहोर या बंसी गेहूँ का बाजार मूल्य दुगुना 1200 रूपये प्रति किंव्टल मिलता है। तो क्यों वे संकर गेहूँ बीज ले? मैं आपको सवाल करता हूँ।

गेहूँ की (Triticum spp.) चार प्रजातियाँ हैं।

1) ट्रीटीकम एस्टीव्हम (Triticum aestivum) – शरबती स्थानीय
2) ट्रीटीकम डयुरम (Triticum durum) – बंसी (बक्षी) स्थानीय
3) ट्रीटीकम डायकॉकम (Triticum dicoccum) – खपली स्थानीय
4) ट्रीटीकम स्फॅरोकॉकम (Triticum sphaerococcum)

तीसरी नंबर की ट्रीटीकम डायकॉकम शिरा या उपमा या लड्डू बनाने के लिए जो रवा चाहिए, उसके लिए बढ़िया किस्म है। ये किस्में आज बहुत ही कम क्षेत्र में बोई जाती है और वह क्षेत्र महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक और गुजरात में है। खपली, गोधूमालू, पोपातिया और संम्बा किसमें उनमें महत्वपूर्ण है।

Triticum aestivum (Sharbati), यह गेहूँ की सामान्य तौर पर लेने वाली किस्म है, जिसे 'शरबती' कहा जाता है। यह रोटी (चपाती) के लिए बहुत ही जनप्रिय स्थानीय किस्म है, जो पूरे गेहूँ क्षेत्रीयका 90% क्षेत्र व्यापती है। Triticum durum (Bakshi) यह बहुत ही बढ़िया पुरातन गेहूँ स्थानीय किस्म है, जिसे 'बंसी' गेहूँ कहा जाता है, जो पूरे गेहूँ क्षेत्र का केवल दस प्रतिशत क्षेत्र में उगायी जाती है, जो महाराष्ट्र मध्य प्रदेश और दक्षिणी भारत में फैला है। यद्यपि, चपाती के लिए (रोटी) शरबती गेहूँ का अभी बोलबाला है और कृषि विश्वविद्यालय उसे शोधकार्य के केंद्रमें रखकर नई–नई किस्में निकालती रही है, तो भी, अगर चपाती का (रोटी का) स्वाद, पौष्टिकता, नैसर्गिक प्रतिरोध शक्ति, स्थानीय माँग, निर्यातक्षमता, सर्वोत्तम चपाती का निर्माण, रवा और शेवया (noodles) इन सब विशेषताएँ जिसमें समायी है, वह है सर्वोत्तम बंसी गेहूँ (बंक्षी–Triticum durum)। हमने लुप्त प्रायः इस बढ़िया पुरातन गेहूँ किस्म के बीज संकलन (Collection) किया है और कर रहे हैं, ऊन किसानों ाके दे रहे हैं, जो किसान नैसर्गिक खेती करते हैं। बंसी का मुख्य गुणधर्म है – कठिन, लंबा, आगे सिकुड़ता अग्र, पीला सुवर्ण रंग लिए दाने। आज पूरे विश्व में अगर औद्योगिक उपयोग और निर्यातक्षम कोई गेहूँ किस्म है तो बंसी है। पूरे विश्व में गेहूँका जितना उत्पादन है, उसका 4% उतपादन बंसी का है। बंसी गेहूँ का पूरा उत्पादन 250 लाख टन (25 million tonne) है, जो 170 लाख हेक्टर (17 million hectare) क्षेत्र में लिया जात है। बंसी गेहूँके मुख्य उत्पादक देश है– भारत, अर्जेंटिना, पश्चिमी एशिया, पश्चिमी कॅनडा, उत्तरी अमेरिका। हमारे भारत वर्ष में, 1997–98 में गेहूँकी कुल

उपज 680 लाख टन (68 million) था, जो 240 लाख (24 million) हेक्टर क्षेत्र में लिया गया था। गेहूँ की उपज में अग्रेसर (सबसे आगे) है चीन (1000 लाख टन), नं. 2 पर भारत (680 लाख टन), अमेरिका (594 लाख टन) और कॅनडा (254 लाख टन) है। भारत में अभी 20 लाख हेक्टर क्षेत्र बंसी गेहूँ के उपज में है, जिस में हम 25 लाख टन बंसी गेहूँ उत्पादत लेते हैं। भारत में बंसी गेहूँ का उत्पादन लेने वाले राज्य है महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात और राजस्थान।

******

गेहूँ निर्यात के लिए आवश्यक गुणसूचक (Standards)-

1) दानों में नमी का प्रमाण	–	14%
2) दानों में प्रोटीन्स का प्रतिशत	–	12 to 14%
3) फॉलिंग नंबर	–	300 Second
4) चमकदार दाणोंका	–	80%
5) हेक्टोलिटर वेट	–	75 किलो
6) नरम दानों की मिलावट	–	5%
7) टूटे दानों का प्रतिशत	–	4%
8) दूसरी अन्य मिलावट	–	1%
9) पीले स्पॉट दाने	–	10%
10) आटे का प्रमाण प्रतिशत	–	60 to 70%

ऊपर दिए हुए गुणसूचक केवल निर्यात के लिएही नहीं तो, हमारे देश में उपभोक्ताओं के लिए भी हैं। अगर आप गेहूँ की निर्यात (Export) करना चाहते हैं तो, आपको दस मेरिटस् पर उसे तौलना होगा। इन दस मार्क्स को कहते हैं Grain appearance scorel। अगर आपके गेहूँ को पाँच से कम मार्क्स मिलते हैं, तो आपका गेहूँ देशांतर्गत घरेलू बाजार में नकारा जाएगा। अगर पाँच से ऊपर मार्क्स मिलते हैं, तब स्थानीय घरेलू बाजार में आपके गेहूँ को स्वीकारा जाएगा। लेकिन अगर आपके उपज को (गेहूँ को) 6.5 से जादा मार्क्स मिलते हैं, तो आप आपका गेहूँ दुनिया में कहीं भी निर्यात (export) कर सकते हैं।

अभी हमारी कृषि विश्व विद्यालयों ने बंसी गेहूँ की कुछ सुधारित (improved) किस्में निकाली हैं, जो किसानों में ली जाती है। क्योंकि उन्हें असली स्थानीय पारंपारिक बंसी (पुरातन) बीज मिलते नहीं। ऐसी कुछ सुधारित (improved) किस्में और उनकी विशेषताएँ इस तरह हैं –

टेबल

गेहूँ उपज पर हमारे देश की अलग अलग तापमान का बहुत प्रभाव होता है। गेहूँ के पौधोंके अंकुरण (germination) के समय तापमान 15 से 20 सें. चाहिए। पौधों के बढ़ते समय (Growing stage) 8 से 10 सें. और दानों के परिपक्ता के समय 20 से 25 सें. तापमान चाहिये। गेहूँ फसल की अच्छी उपज के लिए तापमान का स्तर (range) 7 से लेकर 21 सें. चाहिये। अगर तापमान 21 सें. से ऊपर बढ़ता है तब टीलर्स (tillers) की संख्या घटती है। दाने पक्ता के समय अगर तापमान बढ़ता है; हवा में नमी घटती है; हवा तेजी से बहती है, तो भूमि में नमी तेजी से घटने के कारण उपज घटती है और दाना समय से पहले ही पक्क होते हैं, उपज घटती है, दानोंका आकार भी घटता है। अगर आपके यहाँ औसतन बारिश 600 मि.मी. है और भूमि काली (Black cotton) सपाट (Flat) है, तो आप बारानी गेहूँ ले सकते हैं।

******

भूमि और जोताई (Cultivation)-

हम गेहूँ की फसल किसी भी प्रकार की भूमि में ले सकते हैं; केवल दलदली (water lodging) भूमि नहीं चाहिये। जो भारी काली (Deep black Cotton soil) भूमि में क्ले पदार्थ का प्रतिशत 60 चाहिये, और सेंद्रिय कर्ब का प्रतिशत 0.63% चाहिये। इस भूमि में आप सपाट (flat) भूमि पर बीज न बोएँ, नालियाँ या क्यारियाँ (Ridges & Furrows) निकालकर अंदर की ढलान पर बीज बोएँ; भूमि में डाल दे। बारिश पर निर्भर बारानी खेती में भूमि में आरक्षित बारिश के पानीका जमाव (नमी) बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए आप गेहूँ फसल लेने से पहले खरीु में (बारिशकाल में) बारिश शुरू होने से पहले ही भूमिपर हर 45 से. मी. फासलेपर नालियाँ (Ridges & Furrows) निकाल लें। और खरीु

द्विदल दलहन फसल के बीज उस नालियों के ढलान पर बोये याँ भूमि में डालें। (dibbling) इससे बारिश का ज्यादा से ज्यादा पानी हम भूमि में आरक्षित कर सकते हैं, जिसका फायदा हमें रबी में गेहूँ की फसल को मिलता है। खरीफ में उस खेत में गेहूँ से पहले चवलाई (Cow pea) लोबीया की फसल लें। यह फसल भूमि को तेजी से ढँक देती है और भूमिमें से नमी का बाष्पीभवन (Transpiration) रोकता है, ज्यादा से ज्यादा बारिश का पानी भूमि में आरक्षित करता है। अगर आप खरीफ में आपकी भूमि खाली (fallow) रखते हैं, तो नालिया निकाल कर ही रखें, ताकि ज्यादा से ज्यादा बारिश का पानी आरक्षित हो। बारिश काल में हर पन्द्रह दिन बाद इस भूमि का जोताई (बखरना harrowing) करें। यह तरीका हमारे देश में हजारों सालों से ला आ रहा है। इस खाली भूमिको यदि आप बारिश काल में काष्ट आच्छादन से (straw mulching) जैसे गेहूँ का भूसा, धान का शेष अवशेष (भूसा), ढकी रखते है और जीवामृत छिड़कते हैं, तो आप रबी में बारिश पर निर्भर बारानी गेहूँ की (Rainfed) फसल बढ़िया ले सकते हैं। क्योंकि, जीवामृत भूमि पर छिड़कने के बाद काष्ट आच्छादन (straw mulching) डालते हैं, तो भूमि में बारिश का सभी पानी आरक्षित होता है, केंचवे तेजी से कार्य करते हुए अपनी बहुमोल विष्टा आच्छादन के नीचे लाकर डालते हैं, जिसका बहुत ही ज्यादा फायदा रबी की गेहूँ की फसल को होता है। हमारे छोटे–छोटे किसान जिनके पास दो से लेकर पाँच बीघा भूमि होती है, वे इस तरह ले सकते हैं। हमारे भूमिका सभी कल्टीवेशन (जोताई) ये केंचवे ही फोकटमें कर डालते हैं। हमें कोई मानवी जोताई की जरूरत नहीं होती।

******

फसलों का रोटेशन (फेरफार) Crop rotation :-

आपने देखा है की, कोई भी फसल अपने बढ़ने के लिए और उपज देने के लिए हवा और पानी से 98.5% लेती है और भूमि से केवल 1.5% लेती है। इन 1.5% में सूक्ष्म खाद्य तत्व (micro nutrients) होते हैं। वे भूमि में होते हैं; लेकिन ऊपरी सतह पर नहीं होते, अगर होते हैं तो जड़ों को जिस स्थिति में ाहिये, उस स्थिति में नही होते। नीचली गहरी भ्झूमि में से ऊपरी सतह पर यह अपार खाद्य भंडार खिंचकर लाने वाले केंचवे होते हैं, जो अपने विष्टा की माध्यम से जड़ों ाके उपलबध कराते हैं। वैसे ही, पेड़ पौधों की जो पतझड़ होती है और सूखे पत्ते नीचे गिरकर पड़ते हैं, वे पत्ते भी भूमि में से जो खाद्य तत्व लेते हैं, वह खुद को विघटित होकर जड़ो को पहूँचाते हैं। लेकिन इनमें नायट्रोजन नहीं होता, और अगर होता है तो बहुत कम होता ह। इसी तरह सेंद्रिय कर्ब का प्रतिशत भी कम होता है, जिसे बढ़ाना आवश्यक होता है इसके लिए, गेहूँ फसल लेने के पहले खरीफ में एक दलहन फसल लेना आवश्यक होती है, जो हवा से नायट्रोजन लेकर भूमि में आरक्षित करती है, और इन दलहन फसल के सूखे पत्ते और काष्ट भूमि पर निरंतर पड़ते जाते हैं और विघटित होते जाते हैं, जिस से भ्झूमि में पर्यापत कार्बन आरक्षित होता है और इस कर्ब और नत्र को लेकर ह्युमस निर्मिती बढ़ती है, जिसका फायदा अगली गेहूँ की फसल को होता है। मैंने सभी दलहन फसलों के परीक्षण किये, यह जानने के लिए की कौनसी दलहन फसल का अगली गेहूँ की उपज पर क्या परिणाम होता है। इसके लिए मैंने गेहूँ फसल केपहले खरीफ सीजन में याने जून – सप्टेंबरमें अरहर (Cajanus cajan); मूंग (Vigna radiata); उरद (Vigna mungo); लोबीया (Vigna sinensis); मोथबीन (Vigna acoutifolia); सोयाबीन (Glycine max); हॉर्स ग्रॅम (Macrotyloma uniflorum); चिकपी (Cicer arientinum); बटाणा (Pisum sativum); राईस बीन (Vigna umbellata); राजमा या फ्रेंच बीन्स (Phaseolus vulgaris); मूंगफल्ली (Arachis hypogeae); सरसों (Brassica sp.); जूट (Corchorus sp.); सनहेम्प (ताग) (Crotalaria juncea); बरसीम (Trifolium alexandrium); लुसर्न (Medicago sativa); क्लस्टर बीन्स (Cyamopsis tetragonoloba); धैंचा (Sesbania aculeata)। मुझे इन सभी पूर्व दलहन फसलों में, लगातार शोधकार्य के बाद, गेहूँ की फसल की खरीफ पूर्व फसल अधिकतम फायदेमंद फसल है लोबीया (Vigna sinensis); उसके बाद मैंने नंबर दो लगाया – मूंगफल्ली (Arachis hypogeae); बाद में उड़द (Vigna mungo); अरहर (Cajanus cajan) और आखिर में सोयाबीन (Glycine max)। इस खरीफ दलहन फसल का सभी काष्ट, पत्ते और सभी जड़े विघटित (Decomposed) होकर मुक्त खाद्य द्रव्य गेहूँ फसल का उपलब्ध होते हैं। बैंक बेलेन्स।

लेकिन अगर आप खरीफ में धान (Paddy), जवार,, बाजरी, मका जैसे एकदल फसल लेते हैं और बाद में गेहूँ की फसल रबी में लेते

हैं, तो पूर्व फसल के बेवड का फायदा गेहूँ की फसल को नहीं होता। इस पर भी मैंने शोधकार्य किया, और उनके निष्कर्ष स्परूप जीरो बजट गेहूँ फसल की नैसर्गिक खेती में कुछ तंत्र (technique) विकसित हुआ, जो आपके सामने रखता हूँ। जीरो बजट नैसर्गिक खेती में ही केवल ये गेहूँ, ध ाान, रागी, जवार, मका, बाजरा आदि घास वर्ग की एक दल फसलों के जड़ों के पास ॲसेटोबॅक्टर, ॲझोटोबॅक्टर, ॲझो स्पीरीलम, बायजेरिंकीया जैसे असहजीवी जीवाणु (bacteria) मौजुद (उपस्थीत) होते हैं, जो हवासे नायट्रोजन लेते हैं और भूमि में आरक्षित रखते हैं। लेकिन इन जीवाणुओं की निर्मिती केवल जीवामृत, गोबर खाद (देशी गाय बैल का) और घनजीवामृत डालने से ही होती है। तो हमें यहाँ धान या जवार या मका (Maize) फसल के बाद अगर गेहूँ की फसल लेना है तो प्रति एकड़ 100 किलो छाना हुआ गोबर खाद (Farm Yard manure) और 100 किलो घन जीवामृत मिलाकर बीज बोते समय उसी समय भूमि में बोना है। और साथ में, पूर्व बताये तरीके से गेहूँ की फसल पर जीवामृत का छिड़काव भी करना है। साथ–साथ, हर सिंचन के साथ्ज्ञ महीने में दो बार जीवामृत प्रति एकड़ 200 लीटर देना है। इस तरह आप गेहूँ की बढ़िया फसल इस जीरो बजट नैसर्गिक खेती में ले सकते हैं, जिसके लिए बाहर से कुछ भी ट्रक ट्रॅक्टर से खरीदकर भूमि में गोबर खाद या व्हर्मी कंपोष्ट (व्हर्मी कम्पोष्ट जहर है) डालने की जरूरत नहीं, और न कोई रासायनिक खाद डालने की जरूरत है। इस विधिसे आप आपके गेहूँ फसल की रासायनिक खेती से ज्यादा उपज ले सकते हैं।

******

बीज संस्कार – गेहूँ की बीज को आप बोने से पहले बीजामृत से संस्कारित करें। बीजामृत कैसे निर्माण करें, इसकी विधि आपने धान के प्रकरण में पढ़ी है। नहीं तो पढ़े और उस तरह तैयार करें। अगर आप गेहूँ के साथ चना या राजमा, धनिया या सरसों की आंतर फसल लेते हैं, तो उसके बीज भी बीजामृत से संस्कार करें।

******

बीज बोआई का समय –

बारानी खेती (असिंचित फसल) – 15 से 30 अक्तूबर। जब नारीयल का तेल ठंड से जमने लगता है, वह गेहूँ बीज बोने का ठीक समय होता है। उत्तरी भारत में अक्टूबरसे ही ठंड पडनी शुरू होती है। लेकिन दक्षिणी भारत में ठंड पड़ना देरी से शुरू होता है तो बीजों के अंकुरन के लिए (germination) 15 से लेकर 20 सें. तापमान आवश्यक है। आप अपने अपने क्षेत्र में यह तापमान देखकर ही बोआई करें।

सिंचित भूमि में समय पर गेहूँ की बोआई – 1 से लेकर 15 नव्हंबर।

सिंचित भूमि में देरी से गेहूँ की बोआई – 15 नव्हंबर से 15 दिसंबर तक।

उत्तरी भारत में या दक्षिणी भारत में या पूर्वांचल में धान की फसल के बाद गेहूँ की फसल या जवार, रागी, मका (Maize) फसल के बाद गेहूँ की फसल लेते हैं। इन खरीफ फसल की कटाई मेंदेरी होने से गेहूँ की बोआई में भी देरी होती है। गेहूँ की फसल को उसके बढ़ने के हार प्रदान पर (Stage) अलग–अलग तापमान चाहिये। जब हम देरी से गेहूँ की बोआई करते हैं, तब यह विशेष स्थिति चूक जाती है, ओर उस विशेष स्थिति में आवश्यक तापमान मिलता नहीं। पक्कता के समय आवश्यक ठंड का कालमान कम मिलता है। परिणाम स्वरूप उत्पादन (उपज) घटता है। अगर आप निश्चित काल से बोआई 15 दिन देरी से करते हैं तो प्रति एकड़ गेहू की उपज एक क्विंटल से कम मिलती है। आप ज्यादा से ज्यादा दिसंबर की 15 तारीख तक बोआई कर सकते हैं, उससे ज्यादा नहीं। वास्तव में नव्हंबर के पहले पन्द्रह दिन गेहूँ के बोआई के लिए बहुत ही बढ़िया है। महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटका में देरी से बोने वाली कुछ सुध ाारित (improved) किस्में विकसित की गयी है।

******

बोआई –

बारानी खेती में (असिंचित भूमि में) गेहूँ फसल के दो लाइन के बीच 45 से. मी. अंतर चाहिये। 45 x 15 से.मी.। मगर सिंचित बंसी गेहूँ में आप 30 x 10 से.मी. अंतर रख सकते हैं। शरबती गेहूँ के लिए 22 से.मी. अंतर रखें। बोआई की दिशा (direction) दक्षिण–उत्तर चाहिये। अगर भूमि को ढ़लाना ज्यादा है, तो दिशा कौनसी भी हो, ढलान के विरूद्ध दिशा में ही बोएँ। आप गेहूँ की बोआई नालियाँ निकालकर ही करें। बीज भूमि में 5 से. मी. से जादा गहराई में न डालें।

******

सिंचन–

हमारी भारतीय फसलों पर मानसून का बहुत प्रभाव होता है। यह मानसून जब चाहे, जितना चाहे, बारिश देता नहीं। 80 से 90% मानसून का पानी हमें जून से सप्टेंबर के बीच ही मिलता है, तो खरीफ फसलें इससे फायदेमंद होती है। लेकिन रबी फसलों को सिंचन की आवश्यकता होती है। क्योंकि ज्यादातर मानसून की पर्याप्त बारिश होती नहीं। कभी कम कभी ज्यादा। सिंचित क्षेत्र में रासायनिक खाद डालकर भूमि को क्षारयुक्त बनाते ही हैं, ऊपर से बहुत ज्यादा मात्रामें भूमिको पानी से सिंचित करके कुंभ स्नान कराते हैं। लेकिन हमारी जीरो बजट नैसर्गिक खेती में सिंचन के लिए रासायनिक खेती से केवल 10% ही पानी चाहिए। इस नैसर्गिक खेती में आप सबसे कम पानी में ज्यादा उत्पादन लेते हैं। रासायनिक कृषिमें पानीका अनावश्यक अतिविस्तृत अति विशाल उपयोग होता है, यह मानवीय गहुनाह है। क्योंकि जब आप सिंचन के लिए अति विशाल पानी भूमिमें देते हो जो भूमि और फसल दोनों को नुकसानदेह है, उसी समय आपकी एक बहन या माता दूर पहाड़ों में, जहाँ बारिश बहुत कम होती है या होती ही नहीं, वहाँ पानी के लिए दस बारह किलोमीटर भटकती घूमती है, पानी नहीं मिलता, बच्चे पानीके लिए तड़फड़ाते है, पानी नहीं मिलता। जरा उनके तरफ देखो। पानी तो भगवान की देन (God gift) है, भूतल पर कोई पानी निर्मिती का कारखाना नहीं है। उस ईश्वर के पानीपर तो हर मानव का समान हक है। तो ये पानी की अमानवीय बरबादी और दूसरी तरफ पानीके लिए तड़फड़ना क्यों ?

फसल की जड़े दो कारणों से भूमि में से नमी लेते हैं। एक उनके बढ़ने के लिए और दूसरा कारण–पत्तों के सतह से हवामं नमी का बाष्पीभवन (evaporation) एक बात आप समझ लें कि कोई भी जड़े भूमि से पानी लेती नहीं; तो जड़े भूमि में से 50% बाष्परेणू (Vapour molecules) और 50% हवा के रेणू (air molecules) इन दोनों का मिश्रण लेती है। हवा के रेणू जड़ों को और सूक्ष्म जीवजंतुओं को श्वसन के लिए (respiration) और बाष्प के रेणू जड़े भूमि से लेकर पत्तों तक खाद्य निर्मिती के लिए (Photosynthesis) पहुचाती है। यह बाष्प और हवा का मिश्रण जड़े भूमि में स्थित मिट्टी कणों के बीच जो खाली जगह (vacuoles) है, उसमें से लेती है। जड़े पानी लेती नहीं; पानीको स्पर्श ही करती नहीं। इसलिए भूमिमें जो खाली जगह है (pore-spaces), वह केवल 50% हवा और 50% बाष्प का मिश्रण से ही भरी रहे, पानीसे नहीं। लेकिन, आप जब भूमि को सिंचन का पानी भरते हो (देते नहीं, भरते हो), कुंभस्नान कराते हो, तो पानी भूमिके अंतर्गत इन खाली जगह में भरता है और वहाँ स्थित हवा 'डूब' 'डूब' 'डूब' आवाज करके ऊपर बाहर निकल आती है। यह सिंचन का पानी भूमि के अंतर्गत सभी खाली जगह जलमय करती है और वहाँ से पूरी हवा निकाल बाहर फेकी जाती है। परिणामस्वरूप जिन जड़ों का और सूक्ष्म जीवों का प्राणवायु जिंदा रखने का एकमेव संसाधन है, वह प्राणवायु (Oxygen) मिलता नहीं, तो सूक्ष्म जीव मरते हैं, तो खाद्य निर्मिती बंद होती है, जड़े मरती हैं, तो खाद्यान्न पत्तों तक पहुँचना बंद होता है और हमारी फसल पीली पड़ती है, उसका बढ़ना रूकता है। इस स्थिति का कारण है भूमि में यह वाफसा (50% हवा और 50% बाष्प का मिश्रण) नहीं होना और आप फसल पीली पड़ने पर और यूरिया देते हो। तो किसान भाईयों, हमें भूमि में सिंचन का उतनाही पानी देना है, जिससे भूमि में स्थित उष्णता से उसका बाष्प बने। अगर भूमि में 100 लीटर पानी का बाष्प बने इतनी ही उष्णता है, तो 100 लीटर ही पानी देना चाहिये। आप कितना देते हो? यदि इस मंगलवार को मोटर पंपर या टयूबवेल चालू करते हो तो अगले मंगल को बंद करते हो। सब मंगल ही मंगल। तब, सिंचन कैसे करें ? कितना पानी दे?

जैसे अतिरिक्त पानी भूमि की और फसल की (आपकी भी) बरबादी करता है, उसी तरह मर्यादा या आवश्यकता से कम पानीभी नुकसान देह हैं। तो, सिंचन का पानी एक विशिष्ठ मर्यादा में ही चाहिये। उतना ही पानी देना है, जिससे भूमि में वाफसा बना रहे। कितना पानी भूमि को देनेसे वाफसा बनता है?

आप 45 से.मी. अंतर पर नालियाँ (ridges & furrows) क्यांरियाँ निकालें। गेहूँ के बीज बीजामृत से संस्कारित करें। गेहूँ बीज नालियों के दोनों ओर ढलानपर बोएँ, भूमि में छेद करके छेद में बीज डाले और थोड़ी मिट्टी से बीज ढक दें। और नीचे दिखाये आकृति की तरह एक नाली छोड़कर दूसरी नाली में (alternate) पानी दें। याने, एक नंबर नाली में (furrow) पानी, नं. 2 में नहीं देना, नं. 3 में पानी, नं. 4 में नहीं देना। इस तरह लगातार एक के बाद दूसरी नाली में पानी देना हैं।

आकृती

जब आप एक नाली में (furrow) क्यांरी में सिंचन का पानी दोगे, तब केशाकर्षण शक्ति से (Capillary movement) नमी जिस नाली में पानी नहीं दिया उस नाली में खड़े गेहूँ पौधों की जड़ों के पास अपने आप पहुँच जायेगी। आप चिंता न करें। वाफसा आपने आप निर्माण होगा। कोई जरूरत नहीं की हर नाली में पानी दें। इस पद्धतिसे आप वाफसा तो निर्माण करोगे ही साथ में पानीकी 75% बचत भी करोगे। जब आप नाली में पानी दोगे तब पूरी नाली ने भरें, केवल 50% नाली भरें। अगर आप इस खाली (vacant) नाली में काष्ट आच्छादन (गेहूँ का भूसा, धान का भूसा या काष्ट) भर दें तो जीवामृत का उपयोग और आच्छादन, दोनो के परिणाम स्वरूप केंचवे बहुत मात्रा में दिन रात कार्य करके अपनी विष्टा जड़ोतक लाकर डालेंगे और गेहूँ की जड़ों को एक बहुत बढ़िया दावत मिल जाएगी। साथ–साथ में पानीकी 90% बचत भी हो जाएगी।

******

गेहूँ में चनेकी आंतर फसल–

नैसर्गिक खेतीके जीरो बजट में हम गेहूँ और दूसरे तरीके से लेंगे। गेहूँ में (बंसी या शरबती) चना आंतर फसल लेना है, जो गेहूँ फसल को हवा में से नायट्रोजन लेकर देगी, हानी कारक किटों को खिंचकर दोस्त किटों को (Predators) सोप देगी, भूमि को ढककर सजीव आच्छादन बिछाएगी; भूमि में से होने वाली नमी का हवा में उड़जाना याने बाष्पीभवन (transpiration) रोकेगी, अपने पत्तों पर जमा होने वाली हार्मोन्स जलबिंदमू के साथ भूमि को प्रदान करेगी, और आखिर में आपको पैसा उपज के रूप में देगी, जिससे गेहूँ का उत्पादन खर्चा (Cost of production) निकाल देगी और गेहूँ की फसल आपको बोनस स्वरूप में देगी।

आप 45 से.मी. अंतर पर नालियाँ निकाले (ridges & furrows)। नीचे दिखाए आकृति में देखें। नाली में हाथ से 100 किलो गोबर खाद और 10 किलो घन

आकृती

जीवामृत फेंक दें। नालियों में सिंचन का पानी जीवामृत के साथ दें। जब वाफसा निर्माण होगा, तब (दो–तीन दिन के बाद) एक नाली में गेहूँ के बीज (बीजामृत का संसकार करके) नाली के दोनों ढलान पर भूमि के सतह पर छेद करके उसमें डालें और ऊपर से थोड़ी मिट्टी ढक दें। दूसरे नाली में दोनों ढलान पर चने के बीज बीजामृत के संस्कार करके उसी तरह बोये (जैसे गेहूँ के बीज बोये)। चने की किस्म स्थानीक (Local) होनी चाहिये। गेहूँ के बीज, चवथे नाली में चने के बीज, पांचवें नाली में गेहूँ के बीज, छटे नाली में चने के बीज, इस तरह एक छोड़कर एक नाली में गेहूँ के बीज और एक छोड़कर एक नाली में (alternate) चना के बीज (आकृति में दिखाया) बोएँ। हर पन्द्रह दिन में सिंचन के साथ प्रति एकड़ 200 लीटर जीवामृत दें। सिंचन केवल गेहूँ की नाली में दें, चने की नाली में सिंचन न करें। उसमें काष्ट आच्छादन (गेहूँ का भूसा, चने का भूसा, धान का भूसा या कोई भी सुखा काडीकुटा) भर दें। जीवामृत और आच्छादन से केंचवे तेजी से कार्य करने लगेंगे और गेहूँ चना को जो चाहे वह खाद्य जड़ों को उपलब्ध करायेंगे। जीवामृत का महीने में दो बार खड़ी फसल पर छिड़काव करें। सिंचन का पानी बहुत कम लगता है। इस विधि से 90% पानीकी बचत होती है। गेहूँ फसल के नाली में (furrow) पानी देने से केशाकर्षण से चने की जड़ों को अपने आप मिलता है, नमी अपने आप ऊपर चढ़ती है, आप चिंता न करें। गेहूँ नाली में दोनों ओर बोने से गेहूँ के पौधों की प्रति एकड़ संख्या कायम रहेगी, घटेगी नहीं। इस विधि से आपको गेहूँ की उतनी उपज मिलेगी, जितनी आज आप रासायनिक कृषि तें लेते हो। चना बोनस मिलेगा। उत्पादन खर्च (Cost of production) जीरो रहेगा।

******

चौड़ा बेड (Broad bed) पद्धति–

उत्तरी भारत के सपाटी डीप ब्लॅक कॉटन भारी भूमि में यह पद्धति बहुत असरदार और फायदेमंद रहेगी। इस पद्धति से भूमि में बहुत बढ़िया वाफसा (50% बाष्प और 50% हवा का मिश्रण) निर्माण होता है। गहरे काली भूमि में सामान्य स्तर पर वाफसा मिलना बहुत कठीन है। लेकिन, इस पद्धति से हम उस गंगा यमुना के क्षेत्र में अच्छा वाफसा निर्माण कर सकते हैं। आपकी पूवर्ह मशागत (Pre cultivation) याने हल चलाने के बाद और अच्छी तरह से बखरने के बाद (harrowing) एक मीटर अंतरपर भूमि के सतह पर मार्किंग करें और उन मार्किंग पर हल से या रीजर से नाली (furrow) निकालें। नीचे की आकृति देखें–

आकृती

नाली की चौड़ाई 45 से.मी. होगी और चौड़े बेड की चौड़ाई 55 से.मी. होगी। नालियों को पानी और जीवामृत सिंचित करें। 2–3 दिन बाद बेड में वाफसा आएगा, तब सीड ड्रील से (बोआई यंत्र) गेहूँ बीज (बीजामृत संस्कारित) उस ब्रॉड बेड पर बोएँ। इस बोआई यंत्र के दो दातोंमें अंतर 22.5 से.मी. रखना है। ऊपर बेड पर तीन दाते बहुत अच्छी तरह से बोने के लिए बैठते हैं। बीज तीन लाइनमें बोये जाएँगे। गेहूँ बीज के साथ थोड़े धनिया और सरसों के बीज बोना है। (24 किलो गेहू बीज + 1 किलो धनिया बीज + 200 ग्रॅम सरसों के बीज)। बीज के साथ प्रति एकड़ 100 किलो छाना हुआ गोबर खाद और 10 से 100 किलो घन जीवामृत मिश्रण बोइए। खड़े फसल पर जीवामृत छिड़किये। जीवामृत छिड़कने की विधि पहले ही बता दियी है। हर सिंचन पानी के साथ जीवामृत प्रति एकड़ 200 लीटर दिजिये। शुरूमें बीज बोने के 1 महीने तक महीने में दो बार या तीन बार सिंचन केवल नालियों में दे। बाद में महीने में दो या एक बार सिंचन दें। सिंचन केवल नालियों में ही दें। केशाकर्षण से और जीवामृत के प्रभाव से नमी अपने आप बेडमें गेहूँ की जड़ों के पास पहुँचेगी। आप चिंता न करें। इस विधि से 75% सिंचन के पानी की बचत होती है। यह बहुतही बढ़ीया विधि है।

******

सिचंन देने की सुयोग्य स्थिति–

टेबल :

फसल सुरक्षा –

आप बीज बोते समय प्रति एकड़ 100 किलो छाना हुआ गोबर खाद, और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत इनका मिश्रण बीज के साथ बोइये; हर पन्द्रह दिन बाद सिंचन के साथ प्रति एकड़ 200 लीटर जीवामृत दें, गेहूँ बीज के साथ सरसों एवं धनिया के बीज बोएँ; गेहू फसल में चने की आंतर फसल लें; हर पन्द्रह दिन बाद (महीने में दो बार) जीवामृत का 5 से लेकर 10 प्रतिशत खड़ी फसल पर छिड़काव करें; आपके फसल पर कोई कीटों का या बीमारियों का आक्रमण नहीं होगा। अगर कुछ कीट आते हैं या बीमारी के लक्षण दिखाई देते हैं, तो निमास्त्र, ब्रम्हास्त्र एवं अग्नि अस्त्र और नैसर्गिक फंगीसाइटस का छिड़काव करें। ये औषधियाँ घर में कैसी बनाई जाएँ, यह जानकारी मैंने इसी किताब में धान फसल कैसे लें इस परिशिष्ठ में दिया है, वह पढ़े।

******

फसल कटाई–

जेसे ही दाने पक्क होते हैं और संपृक्त होते हैं, दानों में 15% नमी होती है, फसल कटाई करें। कटे पौधे एकत्रित करके तीन दिन धूप सुखाएँ। इससे दानों में जो कमी होगी वह पौधों के शरीर से लेकर पूरी कराई जाती है। पौधों के जड़ों की जो मिट्टी लगी हुई होती है, उसे निकालकर स्वच्छ (Clean) करें। कुछ दिन के लिए सुखाकर थ्रेशिंग करें।

******

खरीफ ज्वार– ज्वार के संकर बीज मत खरीदे। केवल सीधे (Straight line varieties) किस्में या स्थानीय बीज लें। हमारे किसान महाराष्ट्र में दो सीधी किस्में PVK-801 और PVK-809 केवल निसर्ग कृषि में जीवामृत पर या दो बोरियां गोबर खाद पर बोते हैं और संकर बीज से ज्यादा उपज लेते हैं। कोई रासायनिक खाद डालते नहीं। यह ज्वार बीज हम आपको देंगे।

ज्वार के बीज 4 किलो + मूंग बीज 2 किलो या लोबीया (चवली) बीज 3 किलो + धनिया बीज 1 किलो एक साथ मिला दे। मिश्रण करे। बीज को बीजामृत से संस्कार करें। बोते समय सामने दो बोरे (सौ किलो) छाना हुआ गोबर खाद और दस से लेकर सौ किलो घन जीवामृत मिलाकर बो दें और पीछे ये बीज मिश्रण बोये। बाद में महीने में एक बार भूमि पर जीवामृत छिड़किये या 5% जीवामृत फसल पर छिड़किये। आपके ज्वार की फसल को मूंग या लोबीया हवा में से नत्र देगा, गोबर खाद और घन जीवामृत जीवाणुं को काम में लगाकर फॉस्फेट, पोटाश और बाकी सारे खाद्य पदार्थ पकाकर देगा। धनिया आपको ज्वार की रोटी में स्वाद देगा और ज्वार की जड़ोंपर रस चूसने वाली वनस्पति Straiga का नियंत्रण भी करेगा।

रबी ज्वार – रबी ज्वार के बीज 4 किलो (Local) स्थानीय दगड़ी या (मालदांडी) + देशी चना के बीज 2 किलो + धनिया बीज 1 किलो ले। इन सबका मिश्रण करें। बीजों को बीजामृत संस्कार करें। सामने दो बोरे 100 किलो गोबर खाद (Farm Yard Manure) और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत का मिश्रण बोये और पीछे बीज बोये। 5 से 10% महीने में दो बार जीवामृत छिडकिये।

दूसरी पद्धति से छह पंक्तियाँ ज्वार की और तीन पंक्तियाँ कुसुमी (Safflower) की लेकर पट्टा पद्धति से बोये। उत्पादन उतना ही मिलता है, बोनस कुसुमी (Safflower) (Carthamus tintorius) मिलत है।

******

बाजरी – बाजरी के बीज 1.5 किलो लें। उसमें 1.5 किलो मठ (मटकी) या लोबीया (Cow pea) के बीज मिलाएँ। बीजामृत के संस्कार करें। और प्रति एकड़ दो बोरे गोबर खाद (Farm Yard Manure) और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत का मिश्रण बीज के साथ बोये। 5 से 10% जीवामृत छिड़के।

******

मका – मका के स्थानीय (Local) बीज लें। बीजामृत का संस्कार करें। उसमें आधे बीज लोबीया के (Cow pea) मिलाये और प्रति एकड़ दो बोरे गोबर खाद (F.Y.M.) और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत का मिश्रण बीज के साथ बोये।

******

अरहर (तुवर– Peagon pea) – अरहर की स्थानीय किस्में स्वाद और पौष्टिकता में बहुत बढ़िया होती है। मैं महाराष्ट्र और दक्षिणी भारत में हर जिलेमें किसानों के साथ व्यस्त रहा हूँ। मैंने देखा, 70% किसान अरहर की स्थानीय किस्में ही बोते है। कृषि विश्वविद्यालयों ने जो अरहर की किस्में हमें दी है, वे अधिक दाने जरूर देती है, लेकिन पौष्टिकता और स्वाद गवाकर देती है। लेकिन, एक स्थानीक काले रंग के दाने की किस्म बहुत बढ़िया है। अगर उसकी दाल आप एक बार खाओंगे तो अन्य किसम की अरहर दाल को हाथ भी न लगाओंगे। यह किस्म भी अब लुप्त होती जा रही है, यह दुर्भाग्य की बात है। हम सभी फसलों के स्थानीय बीज संकलन कर रहे हैं और संरक्षण कर रहे हैं।

अरहर फसल में भूमि स्वरूप अलग–अलग अंतर (Spacing) रखना है। यह अंतर रखते समय वह किस्म कितने दिनों में पक्क होती है, यह भी देखना है।

1) कम दिनों वाली किस्म (120 से 150 दिन) – अंतर दो पंक्तियों के बीच 4.5 फुट
2) मध्यम दिनों वाली किस्म (165 से 180 दिन) – अंतर दो पंक्तियों के बीच 6.0 फुट
3) दीर्घ मुदती किस्म (180 से 210 दिन) – अंतर दो पंक्तियों के बीच 7.5 फुट

हर दो पौधों के बीच अंतर कम से कम 1.5 फुट और ज्यादा से ज्यादा 4.5 फुट रखना है।

आकृती

आंतर फसलें – अरहर की फसल में मूंग, उड़द, लोबिया (Cow pea), घेवडा, (श्रावण बीन्स – French Beans) या सोयाबीन और साथ में एक दल ज्वार या बाजरी लेना चाहिए। वह आंतर फसलें कैसे लें यह जानकारी नीचे दी हैं।

अरहर फसल के बीज बोने से पहले प्रति एकड़ दो बोरे (सौ किलो) गोबर खाद (F.Y.M.) और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत का मिश्रण बोये और बाद में या साथ में बीजामृत संस्कार करके सभी बीज बोये। जीवामृत के छिड़काव करे। कीटनाशी दवाओं का नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र और अग्नि अस्त्र का उपयेाग करे, जो पहले दिये हैं।

******

कपास

देशी किस्में – अंतर दो पंक्तियों के बीच 1.5 फुट

आकृती

- Dibble two seeds of Cotton + 2 seeds of Green gram mixing.
- Dibble two three seeds of Maize + mix two seeds of creeper Alsandi (Barbati).
-Dibble seeds of Pulses - Alsandi or black gram or soyabean.
-Replant a seedling of marigold.

बीज– देशी किस्म कपास के बीज 4 किलो + उडद बीज 2 किलो + मका बीज 1 किलो। ये सभी बीज मिश्रण करें। बीजामृत से संस्कार करें। सामने दो बोरे (100 किलो) गोबर खाद (F.Y.M.) और उसके साथ और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत का मिश्रण बोये या फुली पर (स्थान पर) मुट्ठीभर डाले और पीछे बीज बोये। 5 से 10% जीवामृत महीने में दो बार छिड़के। सिंचन पानी के साथ जीवामृत दें।

इंडो–अमेरिकन किस्में – अंतर 3′ x 3′, 4′ x 4′, 4′ x 3′, 3′ x 2′
बीज – इंडोअमेरिकन किस्में – 1 किलो
देशी – 5 किलो प्रति एकड़

आंतर फसलें – लोबीया (Cow pea) या उडद या सोयाबीन + झेंडू (मेरीगोल्ड) + मका 1 किलो

इस आकृति में दिखाए नूरूप बीजामृत से संस्कार करके बीज डालें। फूली पर मुट्ठी भर गोबर खाद डाले बाद में बीज डालें। महीने में दो बार सिंचन जल के साथ जीवामृत डालें। जीवामृत और पहले दी हुई दवाओं का छिड़िकाव करें।

******

चना – चने की फसल उत्तरी भारत में प्रमुख फसल है और मध्य भारत में भी ली जाती है। चने की स्थानीय किस्में ही लें। बीज को बीजामृत का संस्कार करें। साथ में चने की बीज की जितनी मात्रा है, उसके 10% बीज सूरजमुखी के (Sunflower) ले, उसे भी बीजामृत से संस्कारित करें। गोबर खाद 100 किलो और 10 से लेकर 100 किलो घन जीवामृत का मिश्रण प्रति एकड़ बोये व साथ में चने के बीज बोये। सिंचन के जल के साथ जीवामृत दें। चने की फसल उगकर ऊपर आने के बाद उस चने के फसल में हर दस फुट अंतर पर (10’ x 10’) जहाँ खाली जगह है, वहाँ सूरजमुखी के बीज भूमिको छेद करके डालें। बाद में हर सिंचन के साथ जीवामृत दें। छिड़िकाव के लिये निमास्त्र, ब्रम्हास्त्र एवं अग्नि अस्त्र का उपयोग करें। चने की फसल में यहाँ वहाँ बढ़ेहुए सूरजमुखी के पौधे चने को कोई तखलीफ नहीं देंगे। लेकिन बहुत बड़े–बड़े सूरजमुखी के फूल आयेगें और चने के उत्पादन के साथ–साथ हमें सूरजमुखी का उत्पादन भी बोनस मिलेगा। सूरजमुखी की भी स्थानीय किस्में लें।

******

केला (Banana)

पुरी दुनिया में केला बहुत लोकप्रिय है। हर उत्सव में या धार्मिक संस्कारों में केले का महत्व बहुत है। केला स्वादिष्ट है, पौष्टिक है, खाने में सरल है और सस्ता भी है। केरल राज्य में हर घर में किसानी महिलाएँ केले की चिप्स बनाती है और पैसा कमाती है। केले की फसल पूरी दुनिया में ली जाती है। केले की जाति है मुसा (musa) और कुल है मुसेसी (musaceae)। केले को Banana यह नाम पश्चिमी अफ्रीकका के गिनी कोष्टके पोर्तुगीजो ने दिया है। यह मुसा (musa) जाति खाने की है। केले की एक दूसरी जाति हैं, जिसका नाम हैं प्लॅनटेन केला (Plantain), जो साग या करी बनानें में काम आता हैं। Cheesman (1947) वैज्ञानिक ने इस Musaceae-Musa के दो उपजातियाँ दी हैं, जिसके पहले उपजाति में क्रोमोझोम्स की संख्या 10 से 11 है और दूसरी में 9 है। De Langhe (1969) इस वैज्ञानिक ने इस मुसा जाति को पांच विभागों में (divisions) बाँटा हैं। युमुसा (Eumusa); ऱ्हाडोक्लेमीज (Rhodochlamys); कॅलीमुसा (Callimusa); आस्ट्रलिमा (Australima) और इन्सर्टी सेडीज (Incertaesedis)।

इस पहली युमुसा विभाग को (Eumusa division) पुनश्चः (Again) आठ उपविभागों में (Sub-division) बाँटा गया है।

1. Musa acuminala colla,
2. Musa flaviflora simmonds,
3. Musa intenerans cheesmen,
4. Musa basioo steb,
5. Musa negesium prime,
6. Musa schizocarpa,
7. Musa cheesmannii simmonds &
8. Musa ochraceae.

केले की फसल का सबसे ज्यादा क्षेत्र अफ्रिका में, दक्षिण पूर्व एशिया में, लॅटीनी अमेरिका में और कॅरेबियन देशो में है। केले की फसल दोनों बारिश पर निर्भर बारानी (Rainfed) और सिंचन पर लीई जाती है। केले की फसल अकेली, क्रमवार बदलाव से (Rotation), मिश्र फसल, आंतर फसल, सहजीवी फसल के तरह विभिन्न पद्धतिसे लीई जाती है। दक्षिणी भारत में (केरल, कर्नाटक, तमिलनाडू, आंध्र और महाराष्ट्र, गोवा) में केले की फसल नारियल और सुपारी के मुख्य फसल में आंतर फसल के

तौर पर लीई जाती है।

केले की बोआई उसके कंद (बीज) लगाकर की जाती है। कंद का वजन 400 से 800 ग्रॅम का होना है। उसका आकार पके हुए नारियल जैसा चाहिए। बीज का रंग लालतांबडा चाहिए। कंद लगाने के बाद उसे 200 से 500 जड़े आती है। बीज अगर नैसर्गिक केले की पौधे से लेते हैं तो उत्पादन बढ़ता है।

******

किस्में – केले की निचे दी हुई किस्में ली जाती है। केले की समग्र किस्मों में सबसे ज्यादा क्षेत्र ठिंगणी किस्मों का है। क्षेत्र का विस्तार–

ठिंगणी	Cavendish	48.44%	पोम	Pome	6.31%
पुव्हण	Poovan	18.42%	रस्थली	Rasthal	3.79%
ब्लुगो	Bluggoe	6.58%	बाकी		10.03%
नेंद्रन	Nendram	6.43%			

हंगाम – तीन प्रकार के हंगाम में केले की फसल लगायी जाती है।
मृग हंगाम – जून, जुलै, अगस्त
कांदा हंगाम – सप्टेंबर, अक्तुंबर
हस्त हंगाम – डिसेंबर, जानेवारी

अंतर – 8′ x 4′, 9′ x 41/2′,9′ x 41/2 x 41/2′, 8′ x 8′ 12′x 12′
ठिंगणी किस्मों में अंतर – 8′ x 4′, 9′ x 41/2′, 9′ x 41/2 x 41/2′,
मध्यम ऊँचाई – अंतर 8′ x 8′
ऊँची (देशी) – अंरत 12′ x 12′,

******

बीज लगाना – बीजामृत के संस्कार करके बीज लगाए। जितना आकार बीज का है, उतना ही खड्डा खोदिए। दो मुट्ठी गोबर खाद और घन जीवामृत का मिश्रण डाले, उस पर मिट्टी डाले बाजू की और मिट्टी दबाएँ और ऊपर से जीवामृत डालें। बीच में लोबीया (Cow pea) मिर्ची, प्याज, झेंडू और सब्जियों की आंतर फसलें लें। केले के दो पौधों के बीच ड्रमस्टीक (सहजना) लगाये। हर 15 दिन में एक बार सिंचन के समय जीवामृत दें। केले का गुच्छा (bunch) काटने के पहले पौधों का कोई भी हरा या सूखा पत्ता मत काटें। यह पत्ता पौधे का रिजर्व बैंक होता है। बीज लगाने के बाद 3 मास तक हर नाली में (furrow) पानी दें। 3 मास बाद पौधे की नाली को पानी देना बंद करे। बाकी 3 नालियों को पानी दें। बीज लगाने के छह मास बाद केवल केले के पौधों के दो पंक्तियों के बीच में पानी दें। बाकी नालियों को पानी देना बंद करें। हर पानीके साथ जीवामृत दें। फूल बाहर पड़ने तक पौधों को जो जड़ो से अंकुर (Tillers) बाहर आते हैं, उन सबको काटकर वहीं आच्छादन स्वरूप डालिए। जिस दिन फूल बाहर पड़ेगा, वह जिस दिशा की ओर पड़ेगा, उसके ठीक विपरीत दिशा का एक अंकुर शाखा (Tillers) रखिये और बाकी काटकर उनका आच्छादन करें। केले का गुच्छा (bunch) काटने के बाद खोड़ मत काटे। उसे वैसे ही खड़ा रहने दे। जैसे–जैसे यह रखा हुआ रटून बढ़ेगा, यह खोड (stem) अपने आप जगह पर ही नीचे नीचे आयेगा और आखीरि में गुच्छे में समा जाएगा। गुच्छा काटने के बाद पत्ते काटकर उनका आच्छादन करें।

निरोगी जीवन और समृद्धि का मार्ग

पूरे विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ सर्वाधिक सूर्य – प्रकाश और प्राकृतिक समृद्धि प्राप्त है, इसीके सहयोग से यहाँ किसान आज भी खेती कर रहा है। एक समय जिस भारत ने विश्व में कृषि प्रधान देश के रूप में प्रतिष्ठा हासिल की थी, कितने दुर्भाग्य की बात है कि उसी भारत देश का किसान आज खेती करके हर तरह से दुःखी है! जबकि विदेश में सिर्फ छः माह में सौर किरणों की मदद से खेती करनेवाले सुखमय जीवन जी रहे हैं। आखिर भारतीय किसान कौनसी साजिश के शिकार हो रहे हैं कि उन्हें ऐसा दुःखमय जीवन बितान पड़ रहा है? अंग्रेजों ने अपने शिक्षण के द्वारा देशी अंग्रेजो को तैयार किया और उन्हीं लोगों ने विदेश की आधुनिक खेती–पद्धति को भारत के किसानों पर लाद दि। ऐसे बेवकूफों को क्या शिक्षित कहा जा सकता है? मैं भी उन्हीं की लादी गई विदेशी खेती–पद्धति के मायाजाल में दस साल तक फंसा रहा था।

अब पिछले चालीस सालों से सेन्द्रिय और प्राकृतिक कृषि कहिए या जैविक या फिर सजीव कृषि, वही करते आया हूं। और अपने अनुभव के आधार पर आज विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि, खेती में बिना केंचुए की मदद के अच्छा उत्पादन संभव ही नहीं।

हालांकि यह सच है कि विदेशी आधुनिक क्रान्ति का प्रभाव भारतीय कृषि पर भी पड़ा और आधुनिक यंत्र, रासायनिक खाद, दवा, नई पद्धति और नई खोजों ने कृषि के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी। पर उस क्रान्ति के दूसरे पहलू को पहले भी काफी कम लोग जानते थे, और आज भी काफी कम लोग जानते हैं। यही कारण है कि जिस हरित–क्रान्ति से अपनी जमीन को उपजाव होना चाहिए था वही आज एक तरह से मृतपाय हो गई है। दुनिया में ऐसा कोई भी किसान नहीं जो अपनी जमीन को मरते हुए देख सके।

आधुनिक संस्कृति केस साथ–साथ आधुनिक कृषि और शारीरिक चिकित्सा ने भी काफी विकास किया है। मगर इसी के साथ–साथ रोग–बीमारियाँ भी असह्य और जटिल बन गई हैं, जिसके फलस्वरूप मानव–शरीर दिन–प्रतिदिन कमजोर और निस्तेज होता जा रहा है। ऐसे में आधुनिक उपचार भी काफी खर्चीला हो गया है। अतः अब आधुनिक उपचार के जरिए अपना इलाज करा लेने में भारतीय नागरिक कभी भी सक्षम नहीं। यह सोचने की बात है कि आधुनिक उपचार– पद्धति मानव शरीर एवँ उसकी क्रिया–प्रक्रियाओं के अनुकूल न होते हुए भी आखिर

इतनी मंहगी क्यों? वास्तव में .....हमारी बीमारियों के मुख्य कारण हैं, वे क्रमशः अयोग्य खानपान, अप्राकृतिक रहन–सहन और पर्यावरण की क्षति।

हमारे आहार के फल, अनाज और सब्जियों के उपयोग से ही शरीर का समुचित विकास होता है। क्योंकि उन्हीं से हमारे शरीर को पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हर वनस्पति एक कारगर औषधि भी है।

निरोगी जीवन, सुख, समृद्धि और शानित

लोकगीत के जरिए गांववासी दूज के चांद से प्रार्थना किया करते थे –

'ओ दूज के चांद देना मुझे गौ माता और' चुल्हे पे तवा।
सिर्फ इतना ही देना, देना मुझे, ओ दूज के चांद।।"

द्वारा पर गौ माता और चूल्हे पर रोटी पकाने के लिए तवा यही सिर्फ दो चीजें दूज के चांद से मांगकर गांववासी संतुष्ट हो जाया करते थे। गुजरे जमाने के लोगों के संतुष्ट जीवन की यह कितनी सरल परिकल्पना थी। वहीं इस जमाने में अनगिनत चीजों के ढेर पर बैठा हुआ इंसान पल–पल असंतोष की आग में जल रहा है। उसके तमाम आधुनिक उपकरण उसका साथ नहीं दे पा रहे हैं। मिलेनियम युग में प्रवेश कर चुका आज का मनुष्य, जिसके पास निरोगी जीवन, सुख, समृद्धि और शान्ति पाने का उद्देश्य होना चाहिये, वह बात सोचने की शक्ति भी वह खोने लगा है। वह इसलिए कि, रोटी, कपड़ा और मकान जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं हैं। पर आज इन तीन जरूरी चीजों के खर्च ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया है। वह भला क्यों ?

सिर्फ रोटी, दाल, चावल और सब्जी से भरी थाली, जो कभी एक सामान्य बात होती थी, आज लगभग गायब हो चुकी है। गुजराती, मद्रासी, पंजाबी और चाइनीज जैसे नये–नये खान–पान हर रोज का शौक बन गई हैं। ऐसा कतई नहीं है कि पहले से आज जबान की लम्बाई और चौडाई बढ़ी हो, पर स्वाद की लम्बाई ने मीलों का अंतर पार कर लिया है। आज मनुष्य ने प्रकृति को समझकर खाने के बजाय होटल के मेनू कार्ड को देखकर खाने का नियम बनाया है जिसके परिणामस्वरूप शरीर और धन दोनों की बर्बादी हो रही है। यही कारण है कि लोगों को आखिर में डॉक्टरी के कड़े नियम और परहेज़ को अनचाहे अपनाना पड़ रहा है। जैसे घर का भोजन जीवन के लिए आवश्यक है, ठीक वैसे ही तन को ढंकने के लिए कपड़ा। पर अब तो कपडे की लम्बाई भी आवश्यकता से अधिक हजारों मीटर बढ़ गई है। वातावरण के अनुकूल पायजामें और कुर्ते की जगह अब सफारी सूट और जीन्स ने ले ली हैं। मकान के बारे में भी कुछ ऐसा ही हैं। गाय माता के गोबर से बने घर गर्मी के दिनों में ठंडे और ठंड के मौसम में ऊष्मा प्रदान करनेवाले होते हैं। यहाँ तक कि ऐसे घर अणु किरणों को अपने में विलीन कर लेने में भी सक्षम हैं। इसके कई सबूत आज भी मौजूद

हैं। फिर भी इनकी जगह प्राकृतिक जंगलों को काट–काटकर सीमेंट कॉंक्रीट के जंगल खड़े कर दिये गये हैं। और यह सिलसिला आज भी जारी है।

आज मनुष्य सुखी क्यों नहीं? इस बात को एक जैन मुनि के विचारों से जानें। वे कहते हैं "पुराने जमाने के लोग जो दूध पीते थे उसे आज के समय में खीर या रबडी कह सकते हैं। गांव में ही हमें जो शुद्ध हवा मिलती थी उसीको पाने के लिए अब हमें पर्यटन स्थलों पर जाना पड़ता है। पुरने पपीते का स्वाद हमें आज आम में भी नहीं मिलता। शरीर के लिए जरूरी पोषक ततव, जो अनाज से ही प्राप्त हो जाते थे, आज के घी–दूध में भी नहीं मिलते। आखिर यह सब क्यों? सोचने पर पता चलता है कि मनुष्य के ह्रदय में पहले संतोष की जो भावना थी, अब उसका स्थान स्वार्थ लने ले लिया है। पहले एक दूसरे से जो लगाव था, उसका स्थान अब कुटिलता ने ले लिया है। आज का जमाना मिल–जुलकर रहने का नहीं, बल्कि झूठ और मक्कारी का है। यही वजह है कि वर्तमान में बहुतों के भीतर एक किस्म की कृत्रिम प्रवृत्ति पनपने लगी है। अरे भाई! यह कृत्रिमता क्यों? वह इसलिए कि सभी को अधिक–से अधिक पैसा चाहिये। आज अधिक पैसा क्यों चाहिये? क्योंकि सबको सुख चाहिये। यह सुख किसलिए? क्योंकि आज सुख ही मनुष्य का अंतिम लक्ष्य है। तो हजारों सालों से जीवन के निमित्त सुख की जो परिभाषा थी, उसके साथ किसने छेड़खानी की है कि 'सुख' हम से दूर हो गया? सीधे–सादे शब्दों में इसका जबाब है कि विश्व की औद्योगिक क्रान्ति ने पर्यावरण की अपार संपत्ति को लूट–लूटकर, उसका दुरूपयोग करके दुनिया भर में नई–नई चीजों का ढेर खड़ा कर डाला है। और रोज नई–नई चीजें सामने लाकर लोगों को खरीदने के लिए प्रेरित किया। देखा जाए तो औद्योगिक क्रान्ति ने बिना सोचे–समझे विज्ञान औश्र विकास के नाम पर लगातार सर्वनाश को ही आमंत्रित किया है। इस हरे–भरे समृद्ध विश्व को नई–नई चीजों का एक विराट बाजार बना डाला है। इतिहास गवाह है कि नेहरू अंग्रेजों को देश से बाहर निकालना चाहते थे, पर अंग्रेजी संसकृति को नहीं। नेहरू की रीति–नीति के कारण हमारे कृषि प्रधान भारत देश की दुर्दशा और उसके दुष्परिणाम आज हमें देखने को मिल रहे हैं, जो एक कड़वा सच है।"

परम पूज्य पांडुरंग शास्त्री आठवलेजी का कहना है "प्रकृति ने हर किसी को भूख और तृप्ति के लिए सिर्फ एक ही पेट दिया है किन्तु मनुष्य के शायद दो पेट हैं। एक प्राकृतिक और दूसरा आर्थिक (धन) पेट। 100 रूपये की कमाई हो जाने पर उसे 200 रूपये पाने की भूख लगती है। और जब 200 रूपये मिल भी जाते है तो 500 रूपये पाने की भूख जगती है। इस तरह मानव का यह दूसरा आर्थिक पेट चाहे कितना भी मुनाफा खा जाने पर कभी नही भरता।"

शास्त्रो से ऐसा जाना जाता है कि दस कुएं खोदने के बजाय एक तालाब बेहतर है। दस तालाब के समान एक झील। दर झील के समान एक सुपुत्र। लेकिन दस पुत्रों को पालने से बेहतर एक वृक्ष को बड़ा करना सबसे श्रेष्ठ कर्म है। कहा भी गया है कि परोपकारी वृक्षों की पूजा होती है और जिसकी पूजा होती है, उसी का मंदिर बनता है।

"प्रकृति ने सभी को जीवित और स्वस्थ रखने की पूरी जिम्मेदारी स्वयं ले रखी है। फिर भी मनुष्य के अलावा अन्य कोई पशु–पक्षी या कोई भी जीव जीने के लिए मेहनत यानी संघर्ष नहीं करता। पशु–पक्षी कों तो प्रकृति से जिनदा रहने के लिए जो कुछ भी प्राप्त होता है, वही खाकर जीवित रहते हैं। इतना ही नहीं, निर्धारित और पूरी उम्र तक वे सुखमय जीवन भी जीते हैं और एक दिन जब इस दुनिया से विदा लेते हैं, तो राजी–खुशी दुसरी दुनिया में लौट जाते हैं। फिर ऐसा क्या है कि मनुष्य उनकी तरह जीने के बारे में नहीं सोचता? इसलिए कि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो पूरी तरह प्रकृति के विरूद्ध ही काम करता है इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण पर नजर डालते है।"

जंगल में कई हरे–भरे–पेड़–पौधे होते हैं। जैसे आम, इमली, काला जामुन आदि। ये पेड़ हर साल मौसम आने पर नियमानुसार फलते–फूलते हैं औश्र वह भी इस तरह की इनकी शाखायें फल उत्पादन के बोझ से झुक जाती हैं। जंगल में रहनेवाले आदिवासी इन पेड़ों से किलो या दो किलो नहीं बल्की टनों उत्पादन पाते हैं। अगर हर साल जंगल के पेड़ बिना किसी वैज्ञानिक सुविधा के इतना उत्पादन देते हैं तो किसान के लगाए पेड़–पौधे हर तरह की (वैज्ञानिक) सुविधा पाने के बावजूद अपेक्षित उत्पादन क्यों नहीं दे पाते? खेती में निर्धारित उत्पादन पाने के लिए सावेजी, जो एकबार खुद मुर्ख बने थे, अपना एक अनुभव बताते हुए अक्सर कहते हैं 'यदि इस पृथ्वी पर अव्वल दर्जे का कोई मूर्ख प्राणी है, तो वह है किसान। वह इसलिए कि रामायण और महाभारत के युग से किसान खेती करते आया है, तब उसके पास सिर्फ दो बैल, एक हल और फसल काटने

जितने ही औजार थे। उसकी रग–रग में कृषि का सम्पूर्ण ज्ञान और जोश समाया था। इसलिए वह अपनी इसी सूझ–बूझ से ढेर सारा उत्पादन कर लेता था। मगर आज कुछ ऐसी स्थिति आ चुकी है कि एक पच्चीस से तीस साल का नौजवान कॉलेज में आधुनिक कृषि का ज्ञान प्राप्त कर कृषि अधिकारी बन जाता है, जबकि ऐसे अधिकारी ने ना ही किसी फसल के बीज बोए और नाही कोई उत्पादन लिया। यहां तक कि मिट्टी को कभी हाथ तक नहीं लगाया होता। जाने कैसे ये लोग कृषि अधिकारी बन जाते हैं। ऐसे लोग एयरकंडीशन दफ्तरों में ठंडी हवा खाते है और वहीं बैठे–बैठे किसानों को सलाह के साथ कुछ ऐसे आदेश भी दे डालते हैं, मसलन यह फसल लगाओ, इस प्रकार की जुताई करो, विदेश से मंगाये नये संकरित बीज का उपयोग करो, बीजों के लिए एक निर्धारित मात्रा में रासायनिक खाद और दवाइयों का उपयोग करो..... आदि आदि। इतना ही नहीं खेती उत्पादन की एक लम्बी सूची भी किसानों को भेज दी जाती है। और उसे लागू करने के लिए उन्हे रिआयत भी दी जाती हैं। असल में ये सारी बातें प्रकृति के खिलाफ हैं। फिर भी किसान अपने खुद के ज्ञान का उपयोग करने के बजाय, ऐसे स्वयंभू खेती अधिकारी की सलाह ओर आदेश को सच मानकर स्वीकार कर लेते हैं और खेती में लागू भी कर देते हैं। अब आप ही बतायें की अगर कोई अपने रग–रग में समाये ज्ञान और सूझ–बूझ के बावजूद, दूसरों की सलाह माने, आदेश का पालन भी करे और काफी नुकसान उठाए, तो उसे अव्वल दर्जे का मूर्ख प्राणी नहीं तो और क्या कहा जाए?"

पांच साल चलनेवाली सरकार पांच माह में ही गिर जाती है। बरसों तक टिकनेवाली चीजे यानी प्राकृतिक संपदा को हम देखते–देखते कुछ ही समय में नष्ट कर देते हैं। फिर भी, न जाने किस आधार पर ऐसे कार्यों को हम आज अपनी प्रगति मान बैठें हैं। पर्यावरण पर हो रहे अत्याचार और क्षति को लोग अपने विकसित होने का दर्जा बताते हैं। यह दुख की बात है कि आज हम जिस सोच–विचार और शक्ति का उपयोग कर रहहे हैं, वह हमें अकाल औश्र विनाश के करीब ही ले जा रही है। आज हर आदमी के लिए यह सोचना जरूरी हो गया है कि हम जिस प्राकृतिक संपदा का उपयोग कर रहे हैं उसे हमारे पूर्वजों ने हमारे हित के लिए छोड़ रखा है, यानी यह हमें एक धरोहर के रूप में मिली है। इस संपदा के अब हमें भी अपनी आनेवाली पीढ़ी को लौटानी है। इसलिए हर आदमी पर्यावरण और प्रकृति की देखभाल करने वाला एक रक्षक होना चाहिए, भक्षक नहीं। निरागी जीवन के बारे में दुनिया के महापुरूष, मुनिगण, आचार्य, साध्U–महात्मा अपनी मधुरवाणी से समझाते और उसे पाने का मार्ग भी बताते हैं, जेसे कि:

निरोगी जीवन के लिए निरोगी आहार जरूरी है।
निरोगी आहार के लिए निरोगी पेड़–पौधे जरूरी है।
निरोगी पेड़–पौधों के लिए निरोगी जमीन जरूरी है।
निरोगी जमीन के लिए सेन्द्रिय खेती जरूरी है।

दुनिया में आज अलग–अलग नाम और भिन्न–भिन्न पद्धतियों से खेती की जाती है। मगर कोई भी खेती हो, वह मुख्य रूप से पांच ही बातों पर निर्भर करती है जैसे जुताई, खाद, पानी, फसल–रक्षा और जंगली घास निकालना (खरपतवार–निंदवन)। अब हमें इन्हीं पांच बातों पर सोच–विचार करना है कि प्रकृति हमें इसमें किस तरह से मदद करती है। हमारा मानना है कि इसकी सही जानकारी अगर हमारी तरह आपको भी हो जाए, तो आप भी निरोगी जीवन, सुख, समृद्धि और शान्ति का मार्ग पा सकते हैं।

कृषि का प्रथम चरण

"श्री भास्कर हिराजी सावे नाम है उस किसान का और उनकी उम्र करीब साठ सालकी है। सावेजी हमारे परम मित्र हैं। वे न तो पागल है ना ही सरफिरे, एक समय वे पूरे देहरी और उमरगांव के किसानों के चहीते थे। पूरे गुजरात में उनके मुकाबले ऐसा कोई किसान नहीं था जो आधुनिक कृषि में उनकी बराबरी कर पाता, गुजरात सरकार द्वारा वे कई बार प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं, सावेजी के पास रासायनिक खाद की एजंसी थी। खादो के उत्पादक और संस्थाएं अपनी खादों का पहला प्रयोग और नतीजों की जांच पड़ताल के लिए सावेजी पर ही निर्भर होना पसंद करते थे। यही नहीं आधुनिक कृषि के कई विद्वान और संशोधक सावेजी की कार्य प्रणाली और प्रयोग देखने बारबार आया करते थे और आज भी आते हैं। गांव के किसान आधुनिक कृषि का शिक्षण और जानकारी सावेजी से ही पाते थे, यहां यह भी कहता चलूं कि खाद की एजेंसी के कारण सावेजी भारी मुनाफा भी अजित करते थे। पर खुदा जाने एक दिन ऐसा क्या हुआ कि 1960 की एक सुबह उन्होंने भारी मुनाफा देनेवाली खाद की एजेंसी छोड़ दी। इतना ही नहीं उसी दिन से वे आधुनिक कृषि और उसकी कार्यप्राणाली के घोर विरोधी और निंदक हो गए और अपनी खेती में भी उन्होंने रासायनिक खादों और दवाओं का प्रयोग भी बंद कर दिया अब उनके पेड़ पौधे सिर्फ पानी पर ही निर्भर हैं। खेतों में खरपतवार भी नही करते। और तो और सावेजी अन्य किसानों द्वारा उखाडे गए घास–फूस तथा कूड़ा करकट (सेन्द्रिय पदार्थ) भी बैलगाड़ी में भरकर अपने खेतों में लाकर इकट्ठा करने लगे। गांव के लोग या खेत देखने आनेवाले जब उनसे उस कूड़े के ढ़ेर के विषय में पूंछते तो उनका उत्तर होता था 'इसे आप कूड़ा करकट क्यो कहते है? यह तो कच्चा सोना है कचा सोना। कृषि के लिए उपयुक्त यही श्रेष्ठ और असली खाद हैं। मेरी मानिये तो आप लोग आधुनिक कृषि के मायाजाल से निकल कर समय रहते ही इस सेन्द्रिय कृषि को अपना ले और एक दलदल में फंसने से बच जाएं। एक अकाटय सिद्धांत है कि प्रकृति एक दाने से हजार दाने देती है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपना कार्य करने दीजिए। आप सब इश्वर की गद्दी हथियाने का व्यर्थ प्रयास न करें। जिन्होंने जनम दिया है तो जीवित रखने की चिंता भी उन्हे ही करने दीजिए।'

पर ए बात तो मैं दावे से कह सकता हूं कि गांव वालो की अपेक्षा से सावेजी के खेतों में कहीं अधिक उत्पादन होता है। और उनके अनेक प्रश्न होते हैं। कि 'आपही के खेतो में अधिक उत्पादन क्यों होता है? सेन्द्रिय खेती से यह कैसे संभव है? बिना खाद और कीटनाशकों के ही फसल कैसे स्वस्थ और सुरक्षित है? आदि आदि।' लेकिन सावेजी का आत्मविश्वास से भरा हुआ एक ही उत्तर था 'यह सब सेन्द्रिय खेती और प्रकृति चक्र का ही परिणाम है।' क्या है सावेजी की खेती प्रणाली? सही अर्थ में अब तक कोई नही जान पाया। इसलिए हमने बड़े बड़े कृषि वैज्ञानिको के सामाने भी ये प्रश्न रखे। अपनेपद की लाज रखनेके लिए जो भी मुँह मे आया कह दिया। जैसे 'सावेजी का यह अधिक उत्पदन प्रयोगो में कीह गई खाद और दवाओं का परिणाम है। जैसे–जैसे उनका प्रभाव कम होगा उत्पादन अपने आप घटता जायेगा।' इस तरह के उत्तर हमारे दिमाग में नहीं उतरतें क्योंकि 1960 से 1982 तक अर्थात पूरे बाईस सालों के हम गवाह हैं कि सावेजी का उत्पादन घटने के बजाय बढ़ा ही है और आज भी लगातार बढ़ ही रहा है। लेकिन सावेजी के बागों की हरियाली हमारे लिए आज भी एक रहस्य है क्योंकि उन मूर्ख अधिकारीयों की बातों के अनुसार हमने इतने वर्षो तक प्रतीक्षा की कि, कब दवाईयों और खादों का असर कम होगा और कब उत्पादन कम होगा? पिछले एक वर्ष से हमारे आपसे संबंध हुए है आपसे सेन्द्रिय कृषि के बारे में सुनकर हमारी भी जिज्ञासा बढ़ी है यही सोचकर हमने सावेजी से मिलने की योजना बनाई है। और यह सोचकर कि, शायद इस बार हम भी सावेजी की बातों को समझ लेंगे।

'भारत के किसानों को दरिद्र करनेवाले, उनके खेतों को सत्यानाश करनेवाले अर्थात आधुनिक कृषि और नेहरू की गलत नीतियों का आत्मसात करनेवाले आपलोग ही हैं। वे आप लोग ही हैं जिनके कारण आज किसान आत्महत्या करने पर मजबूर है।'

सावेजी से पहली मुलाकात

कृषि से खूब उत्पादन पाने के लिए आज पूरा किसान समाज सहयोग नहीं बल्कि बड़ा कठिन संर्घष कर रहा है। अब आप पूछेंगे कैसे? तो सिर्फ इतना जान लें कि ईश्वर ने जैसे मुझे और आपको बनाया है वैसे ही पूरे विश्व की जीव–सृष्टि पैड़ पौधों को भी बनाया है, इश्वर ने सबाके जीवनदान दिया और हम बृद्धिजीवी मानवों ने दी सबको मौत। आखिर हम यह घृणित कर्म और व्यर्थ संघर्ष क्यों कर रहे है? इसका भी एक कारण है वह है हमारी भोग लालच और इसी लालच कें चक्कर में उलझकर हम मान बैठे हैं कि इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार हमारे सिवा और किसी को भी नहीं हैं, अगर यह सच न होता तो अन्य पशु पक्षियों – कीड़ें मकोड़ों और जीव जंतुओं को अधिक उत्पादन के लालच में जहरीली दवाईयां छीड़ककर क्यों मार डालते है? पशु पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं, या कृषि कार्य के लिए कमजोर हैं जेसी दलीलें दे कर, बेरहमी से कत्ल कर दिया जाता है। आज मनुष्यने प्रकृति के सबसे अहम सिद्धांत 'जियो और जीने दो', के चक्र को ध्वस्त कर दिया है। आज मानव आवश्यकता से अधिक सुख, वैभव तथा धन पाने के चक्कर में घोर से घोर पाप करने से भी नहीं हिंचकता। एक दूसरे से आगे निकल जाने की हवस में मानव दिनरात संघर्ष नहीं तो और क्या कर रहा है।"

कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि एक धर्म है, एक अनुष्ठान है आप जैसों ने ही इस पावन कार्य को धंधा बना दिया है, सारे पर्यावरण को ही नष्ट किये जा रहे हैं मानों प्रकृति लूट लेना ही आपका एक मात्र उद्देश्य हो, निरोगी फल और अन्न देना तो पेड़ पौधों का सहज स्वाभाविक धर्म है लेकिन मानवने उनके इस धर्म में सदैव भयंकर हस्तक्षेप किया है। एक बात बताईये क्या आपने कभी ऐसा देखा या सुना है कि पेड़ पौधे अपना फल या अनाज खुद ही खा गए हों, नहीं न? तो सच्चाई यह है कि वनसपतियाँ सदैव दूसरों के लिए फलती फूलती हैं। यही उनका सच्चा धर्म है, इसलिए तो मैं हमेशा कहता हूं उनके इस धार्मिक अनुष्ठान में आप जल का तर्पण करके सहयोग करें और यही सहयोग करना ही वास्तव में सेन्द्रिय खेती करना है। सेन्द्रिय खेती में बीज बोने या पौधे लगाने के बाद सिर्फ पानी ही तो देना होता है और जब फसल तैयार हो जाए तब उसे काट या तोड लिया जाता है, बस यही रहस्य है इस सेन्द्रिय खेती का। यदि आपने इतना जान लिया तो समझिये कि कृषि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

"किसान समाज आज सिर्फ दुःखी ही नहीं कर्जदार भी है! तब ही तो कई किसान आत्महत्या कर रहे हैं। अपनी इस परिस्थिति के लिए सरकार के साथ साथ वे स्वयं भी पूरी तरह जिम्मेदार हैं। असल में वे खुद ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं और अपने दुर्भाग्य का बीज स्वयं बोते हैं। आप पूछेंगे कैसे? उसे समझाने के लिए मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ मान लीजिए मैंने आपको एक मूंग का दाना दिया कि इससे आपको एक मूंग का पौधा तेयार करना हैं तो इसके लिए आप किन साधनों और पद्धतियों का सहारा लेंगे?"

वैसे तो सावे महाशय का यह प्रश्न बड़ा आसान था क्योंकि किसी भी पौधें को तैयार करने की प्राथमिक विधि और साधनों का ज्ञान मैंने अपने स्कूल के दिनों में ही प्राप्त कर लिया था। उसी आधार पर मैंने उत्तर दिया। 'सबसे पहले मैं एक मिट्टी का गमला लूंगा, फिर अतिरिक्त पानी निकल जाने के लिए उसमें निचे की ओर एक छेद करूंगा। छेद बंद न होजाए इसके लिए मैं वहां दो चार पत्थर के टुकउे रख दूंगा। उसके ऊपर बगीचे की अच्छी मिट्टी भर दूंगा। अब उस मूंग के बीज को तनीक नीचे रखकर मिट्टी से ढंक दूंगा। फिर पानी देकर मैं अपना पहला कार्य पूरा करूंगा। इसके बाद गमले को ऐसे स्थान पर रखूंगा जहां पर्यापत सूर्यप्रकाश मिले। फिर प्रतिदिन योग्य मात्रा में उसे पानी देता रहूंगा। इस तरह कुछ ही दिनों में मूंग का पौधा तैयार हो जाएगा।'

"मूंग के पौधे को तैयार करने का प्राथमिक वर्णन जो आपने किया वह बिलकुल ठीक है लेकिन इसके बाद ही सारी जिम्मेदारी प्रकृति की होती है, जैसे बीज का अंकुरित होना, जड़ो का निकलना, तन पत्तियाँ और डालियाँ बनना, आदि...यह सारे कार्य प्रकृति स्वयं करती है। इसके कुछ महीने बाद मूग के पौधों पर फूलों का लगना और उन फूलों से मूंग के दानों का बनना ये सब प्रकृति के ही चमत्कार है। हम इसमें सिर्फ जरूरत के अनुसार पानी ही डाल सकते हैं। आपने इस मूंग के पौधे को उगाने में जो सहयोग दिया उसके एवज में प्रकृति ने आपको 70 दिनों में एक दाने के बदले 1000 दाने लौटाये हैं। इस लेन–देन के बीच आपने क्या किया? सिर्फ पानी और कलियों को तोडने का काम बाकी सारा काम तो प्रकृति ने ही किया न? अब आप ही बताईये कि खेती में सीखने जैसा क्या है? जिस प्रणाली को आपने गमले में अपनाया ठीक वही प्रयोग आपको खेतों में

करना है। शर्त है कि आपके पास उत्तम देशी बीज और पानी की व्यवस्था हो। धान रहे की बिना किसी भी प्रकार की अतिरिक्त मेहनत किए प्रकृति खुद साल में तीन बार एक से हजार दाने निर्मित कर देती है। प्रकृति से सहज ही इतना ज्यादा उत्पादन पाने के बाद भी जगत के पालनहार किसान सुखी और समृद्ध होने के बजाय दुःख और परेशानी ही पाते है। ये बेचारे हेशा कर्ज में ही डूबे रहते हैं। बार बार फसल नष्ट होने से कर्ज का बोझ बढते ही जाता है। इससे छुटाकारा पाने के लिए एक दिन हमारा यही अन्नदाता आत्महत्या कर लेता है। यह एक दारूण विडंबना नहीं तो क्या है?" फिर भी एक बात तो गौर करने लायक है कि इस मिलेनियम वैज्ञानिक युग में जब कि आज पूरा विश्व यंत्रो का आधीन हो गया है। कोई भी ऐसा यंत्र नहीं बना जो एक दाने से हजार दाने न सही दो दाने ही बना कर दिखला दे। किसी भी कारखाने की मिसाल ले लीजिए वहां कचचे माल से नए माल में सिर्फ रूपांतर होता है। उस रूपांतर की प्रक्रिया में कुछ प्रतिशत नुकसान भी उठाना पडता है। अतः इससे एक बात तो समझ में आती ही है कि कारखानों के मालिक अच्छा खासा कमा लेते है। अगर मान ले कि इन मुनाफा कमानेवालें कारखानों को कच्चा माल ही न मिले तो उन मालिकों की क्या दशा होगी? प्रकृति और कृषि को नजर अंदाज करके मुनाफाखोरों ने आज पर्यावरण को छिन्न भिन्न कर डाल है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो सावेजी की बातों में काफी दम है। इन बातों में कुछ तथ्य तो जरूर है। माना कि सावेजी अपेक्षा कृत सच नहीं। फिर भी 1 से 1000 दाने न सही 100 तो जरूर मिलेंगे। व्यापार जगत का सिद्धांत है कि 1 रू. लगाकर दो रू. मिलते हों तो एक रू. का लाभ माना जाता है अर्थात् 100% लाभ। ऐसे में खेती में तो 1 दाने से 100 दाने प्राप्त होते हैं, अर्थात् 99 दानों का मुनाफा। जिसे व्यापार की भाषा में 9900% मुनाफा कहा जा सकता है। और अगर कहीं सावेजी की ही बात सच निकली तों? तो हिसाब आप खुद ही लगा लीजिए, 999000% का मुनाफा होगा यह तो हुइ एक दाने की बात। पूरे खेतों का हिसाब लगाने जाएं तो शायद हिसाब लगानेवाली मशीन भी थक जाएगी तो जब इतना लाभ बिना किसी झंझट, मेहनत और जोखिम के मिलता हो तो कोई भी व्यापारी किसी और धंधे की क्यों सोचे? लेकिन एक बात समझमें नहीं आती इतना फायदा पाने के बाद भी किसाना बेचारे एंड़ी से चोटी तक कर्ज में क्यों डूबे हुए हैं? मन में हलचल मचानेवाले इन प्रश्नों को मैने सावेजी के समक्ष रखा।

"अध्यात्मिक बातों को ध्यान में रखकर साचें तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने इस सृष्टि का कार्य– भार संभार रखा है। हिन्दू शास्त्र के मुताबिक ब्रह्मा सबका सर्जन करते हैं। विष्णु हर एक का पालन–पोषण करते हैं और महेश संहारका, इनकी ही बदौलत प्राकृतिक चक्र व्यवस्थित चल रहा था। पर मनुष्य ने उनके कार्यो में कई बाधाएं खड़ी कर दी है। मनुष्य शायद यह चाहता है कि उन तीनों की गद्दी पर वही बैठे, कोई और नहीं। जबसे मनुष्य ने ब्रह्मा जैसा कुछ सर्जन ककरने की कोशिशें भी की, लेकिन उस में उसे सफलता नहीं मिली। आज बड़े–बड़े कृषि वैज्ञानिक विष्णु की गद्दी पर बैठने का पूरा दावा करते हुए बताते हैं कि 'अपनी आधुनिक खेती–प0ति के कारण ही हम मानव समाज के लिए पूर्वजों से ज्यादा उत्पादन कर पालन–पोषण का काम करते हैं, वर्ना भूखमरी से हजारों लोग अब तक मौत के मुंह में चले गये होते।' इन बातों के बावजूद महेशजी की गद्दी पर आ के मनुष्य ने सचमुच कब्जा कर बिना सोचे–समझे भयंकर हिंसा करने का मार्ग लिया है। क्योंकि कृषि तो पहले एक धार्मिक काम था। अब हम सबने मिलकर उसे एक धंधे का रूप दे दिया है। धंधे में सभी व्यापारी चाहते हैं कि उन्हें ज्यादा–से–ज्यादा मुनाफा मिले। कृषि – धंधे से अधिक मुनाफा याने के लोभ ने आधुनिक कृषि को जन्म दिया। इसी के साथ–साथ रासायनिक खाद, संकरित बीज, फसल रक्षा के लिए कीड़े–मकोड़े मारनेवाली जहरीली दवाईयाँ और.....! इस तरह अगर हम गिनती करने बैठें, तो एक लम्बी फेहरिसत बन जायेगी। संक्षेप में बस इतना ही कि अधिक–से अधिक उत्पादन के लिए जितने नये आविष्कार हो सकते थे वे सभी किये गये। बावजूद इसके सत्य यह है कि जब हमारे देश में आधुनिक कृषि–विद्यापीठ (कॉलेज), सरकारी कृषि–विभा, आधुनिक कृषि–तंत्रज्ञान और कृषि–विज्ञान आदि नहीं थे, तब हमारा देश सचमुच में सुजलाम सुफलाम था। हरियाली से किसानों के खेत लहराते थे। सेन्द्रिय कृषि से किसान समाज हर तरह से सुखी और समृद्ध था। इतना ही नहीं, जब परदेश से आनेवाले लुटेरे किसानों का धन लूट ले जाते थे, तब किसान एक गरीब भाई को दान दिया है, ऐसा समझकर लूट की बातें भूल जाया करते थे। किसानों के पास सिर्फ एक हल और दो बैल थे। इसी से पूरे विश्व में कभी भारत एक कृषि प्रधान देश हुआ ओर जब से कृषि विभाग की बाते सुन–सुनकर किसान समाज उसके पीछे–पीछे चल पड़ा, तभी से उसके दुःख के दिन भी शुरू हो गये। आधुनिक कृषि को अपनाने के बाद भले ही उत्पादन चार गुना

ज्यादा मिला, लेकिन साथ ही साथ खर्च भी बढ़ा। ज्यादा पैदावार और मुनाफा पाने की लालच में किसान बैकों को साहूकारों से कर्ज पर कर्ज लेने लगा। इस आशा में कि पहली बार जो चार गुना पैदावार हुई थी, वही बार7बार मिलेगी। पर ऐसा कहां होता है कि हम जो सोचें, वही हो। तो किसानों की आशा निराशा में बदलनी शुरू हुई और किसान बड़े कर्ज के नीचे दबने लगे। एक दिन ऐसा आया, जब वे कर्ज के कारण आत्महत्या भी करने लगे। बनावटी सरकारी आंकड़ों और बातों के कारण आज भी किसान समाज बर्बादी की तरफ ही जा रहा है। अगर सिर्फ बनावटी बातों तक ही सच्चाई सीमित रहती तब तो कुछ हद तक ठीक था। लेकिन इस हद को क्या कहेंगे कि आधुनिक कृषि के कारण जो पर्यावरण नष्ट हो रहा है और हम विनाश को दिन–प्रतिदिन आमंत्रित कर रहे हैं। इसका साक्षात् प्रमाण आज सामने हैं बढ़ते हुए तापमान और अनियमित बारिश के रूप में। मेरी बातों को कम शब्दों में इस तरह भी समझा जा सकता है कि प्रकृति के नुकसना का जिम्मेदार हर तरह से आधुनिक कृषि और मनुष्य का ब्रह्मा, विष्णु और महेश की गद्दी पर भूल से जा बैठने की खराब नीयतों का परिणाम ही है।"

मगर एक बात तो सौ प्रतिशत सच है कि जबसे मैंने अपने प्रयोगों के जरिए सेन्द्रिय कृषि की है, तब से मेरा उत्पादन और मुनाफा बढ़ा है। फिलहाल मेरी बातें और अनुभव गलत हैं या झूठ, इस गौर फरमाने से पहले आप आधुनिक कृषि के शिक्षण और उसके विद्यापीठ का उदाहरण देखें। उसके बाद आप खुद सोचें और निर्णय लें। आज 1982 में भारत देश को आजादी मिले पूरे 35 साल हो चुके हैं। प्रत्येक विद्यापीठ में नेहरू द्वारा आयोजित खेती–पद्धति को सही रूप से सिखाने के लिए विद्यापीठ की कम से कम 1000 एकड़ जमीन पर प्रयोग किये जाते हैं। नई पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए कृषि–शिक्षाण की सारी जरूरतें सरकार की तरफ से मुफ्त में मिलती हैं। आधुनिक कृषि के भष्मपितामह और नेहरू के सलाहकार स्वामीनाथन के दावे के मुताबिक 'आधुनिक कृषि के क्षेत्र में भारत ने हरित–क्रांति ला दी है।' इन सभी बातों के मद्देनजर देखा जाये, तो सम्पूर्ण रूप से सफल कार्य–पद्धति और सबूतों को ध्यान में रखकर ही कृषि–विद्यापीठ में शिक्षा दी जाती है। अब आप मुझे भारत के किसी भी एक विद्यापीठ के किसी भी एक साल की वार्षिक हिसाब की किताब बताइये, जिससे यह पता चले कि किसी भी विद्यापी ठ ने सिर्फ एक रूपये का मुनाफा किया हो। आप सोचते होंगे कि जब इतनी बड़ी हरित–क्रान्ति हुई तो जरूर मुनाफा हुआ होगा। मगर मैं तो दावे के साथ कह सकता हूं कि मुनाफे की बात तो दूर, विद्यार्थियों से पढ़ाई के नामपर लिये गए पैसों का भी पता नहीं चलता और जब तक सरकार की तरफ से मदद (ग्रांट) नहीं मिलती, तब तक विद्यापीठ का सारा काम–काज ठप्प पड़ा रहता है। जब 1000 एकड़ जमीन रखनेवाले विद्यापीठ मुनाफा नहीं कर पाते तब उस विद्यापीठ में चार साल तक पढ़ाई करनेवाले विद्यार्थी आखिर किस तरह खुद के पैरों पर खड़े होंगे और आत्मनिर्भर बनेंगे। इसलिए कृषि पढ़ाई करके भी कृषि नही बल्कि सरकारी नौकरी करतें हैं।"

"विद्यापीठ में दी गयी उसी गलत शिक्षण का प्रचार सरकार ढोल–नगाड़ें बजा7बजाकर किसान–समाज को बताती है। सोचने की बात है कि जब आधुनिक कृषि से पर्यापत मुनाफा मिलता हो, तो फिर किसान–समाज में उसे अपनाने के लिए रियायत (सबसीडी) देने की योजना क्यों? अरे भाई! किसान समाज की आंखो में धूल झोंकने के लिए ही तो स्वामीनाथन जैसे वैज्ञानिकों को बड़े–बड़े पुरस्कार देकर सन्मानित किया जात है। अब आप ही बताइये कि ऐसे में किसान को कैसे मिलेगी सुख–समृद्धि? जबकि रासायनिक खाद और जहरीली दवाइयां पैदावार बढ़ाने के लिए अति आवश्यक मानी गयी हों। देखा जाये, तो इस खेल में विलायती गोरों की बहुत बड़ी चाल है, जिसमें उनका अपना निजी स्वार्थ बहुत सूक्ष्म रूप में छुपा हुआ रहता है। क्योंकि उन्हें मालूम है कि आधुनिक कृषि के द्वारा उत्पादन किये हुए अनाजों, फलों आदि का सेवन करनेवाले जब बीमार पडेंगे, तो आधुनिक उपचार के लिए वह लोग हमारी ही शरण में आयेंगे, तब इसमें भी हमारा ही फायदा है। इस तरह गोरों–ने सभी को ठगने की जिम्मेदारी अपने हाथों में ले रखी है। समझ में नहीं आता कि देशी अंग्रेज किस कारण उनकी ठगने की योजना को मंजूरी दे देते हैं? भारत देश के हित में जो पूर्वजों की अहिंसक कृषि है, जो हमारी संस्कृति से भी जुड़ी हुई है, जाने कया हो गया है सरकार को कि उस अहिंसक–पद्धति को अपनाने की कोशिश नहीं करती, बल्कि मकड़ी जाल में फंसी है और लोगों को फंसा रही है।"

"पहले किसान अपनी कृषि का उत्पादन बेचकर घर की तमाम जयरी चीजें खरीद लाता था। जबकि आज वह कृषि का पूरा उत्पादन और घर की तमाम जरूरी चीजें बेचकर आधुनिक कृषि–पद्धति की सामग्री

खरीदकर लाता है। जिस प्रकार किसान का सुख, समृद्धि और चैन गया, उस प्रकार वह अपने खेतों की उर्वरता, नमी औश्र अपनेदेसी बीज भी खो बैठा। कुछ साल पहले किसान के खेतों के कुएं और बावड़ी का पानी जो 20 से 40 फीट की गहराई तक था, वही आज 200 से 400 फीट तक नीचे चला गया है। गुजरात के कुछ क्षेत्रों में तो पान 2000 से 3000 फीट तक नीचे चला गया है। इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि कृषि को जससे धंधे का रूप दिया गया, तभी से अधिक मुनाफा पाने के लालच में हम सब अपनी शारिरिक शक्ति खो बैठे हैं। जीवन में एक दिन ऐसा आता है कि जब आदमी को बेहद संपित्त तो मिल जाती है, लेकिन तब तक शरीर हर तरह से टूटकर चूर–चूर हो चुका होता है। तब वह फिर से निरोगी जीवन पाने की चाहत में विलायती डॉक्टरों के पैर पकड़ता है और आखिर में न संपत्ति रहती है और न ही स्वास्थ्य। खुद के नाम के आगे एक दिन स्व. लगाकर इस दुनिया से खाली हाथ स्वर्गववासी होना पड़ता है। आप जैसे जाने कितने देशी–विदेशी लोग निरोगी जीवन पाने की उम्मीद से मेरे पास मेरी खेती – पद्धति जानने के लिए आते हैं तब मैं अपने अनुभव का एक सत्य ढोल–बजाकर सभी से कहता हूँ कि कृषि प्रधान भारत देश की बर्बादी, खाना–खराबी और सत्यानाश को आमंत्रित करनेवाला जिम्मेदार सिर्फ एक ही आदमी है और वह है, पूरे देश को बेचकर कर्ज में डूबोनेवाला पंडित जवाहरलाल नेहरू। आज भी उसी के वंश के लोगों ने देश को बर्बाद करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है। बर्बादी दिन–प्रतिदिन जारी है। इतिहास गवाह है कि महात्मा गांधीजी से कुछ भी सुने–समझे बिना ही नेहरू ने अपनी ही आर्थिक नीतियों को भारतवासियों पर लाद दी। आज उसी आदमी के कारण भारत देश भिखारी बन चुका है। विदेशी कर्ज में सर से पांव तक दलदल में डूबा हुआ है। अगर सरकार ने कृषि योजना को ध ांधे का रूप नहीं दिया होता, तो आधुनिक कृषि का जन्म नहीं होता। विदेश से रासायनिक खाद, दवाइयां और उसी के साथ संकरति बीज का भी आगमन नहीं हुआ होता यानी भारतीय किसान अगर आधुनिक कृषि को नहीं अपनाते तो भारते के पुराने बीज और संसकृति से जुड़ी खेती–पद्धति का मृत्युघंट नहीं बजता। यह मृत्युघंट और जोर से बजे, इसलिए सरकार किसानों को हमेशा मायाजाल में फंसाने के लिए अनुपयोगी माल पर रियायत (सबसीडी) दे देकर, मेहनत से कमाई पूरी की पूरी रकम किसानों की जेब से निकाल लेती है। इतना ही नहीं, अगर आधुनिक कृषि के निमित्त जरूरी चीजें खरीदने के लिए किसान के पास पैसे नहीं, तो सरकार अपनी तरफ से कर्ज की व्यवस्था भी कर देती है। और एक दिन उनके खून–पसीने की कमाई हड़प लेती है। फिर बेचारे किसान लागत वापस न देने के कारण जमीन हसे हाथ तो धोते ही हैं, और किसी दिन आत्महत्या भी कर बैठते हैं।"

'आजकल कृषि अलग–अलग नामों से जानी जाती है। कोई इसे आधुनिक कृषि कहता है, कोई जापानी पद्धति, तो कोई इजरायल खेती–पद्धति कहता है। जबकि मैं अपनी खेती–पद्धति कहता हूं। मेरी खेती–पद्धति सम्पूर्ण रूप से प्रकृति के चक्र पर निर्भर है। प्रकृति हर एक जीव की मदद लेकर कृषि के चक्र को घुमाती है। उदाहरण के तौर पर कृषि में पेड़–पौध ों का धर्म है फल देना। उनके ये सारे कर्म जीवन के विकास के लिए होता है। फल और अनाज को खाकर जीव जिस बेकार चीज को मलद्वार से बाहर निकाल देता हैा, वह और सेन्द्रिय पदार्थ (कूड़ा–कचरा) खाकर प्रकृति के अन्य जीव जैसे–केंचुएं उसीका रूपांतरण कर पेड़–पौधों के विकास के लिए जड़ों के मुख तक रख देते हैं। इसी चक्र को प्राकृतिक कृषि–चक्र कहा जाता है। अब कृषि मतलब क्या? कृषि मतलब वह जो चाहे किसी भी नाम या प्रकार से की जाये, उसके लिए पांच बातें ही विशेष रूप से जरूरी होती हैं, जैसे जुताई, खाद, पानी, फसल–रक्षा और खरपतवार अब बात आती है कि पेड़–पौधों के लिए क्या जरूरी है? कब, कहां, कितना और किस तरह जरूरी है? इन सभी महत्वपूर्ण बातों की जानकारी और ज्ञान होना खेती में बहुत जरूरी है। क्योंकि इसी जानकारी से अच्छी परिणाम मिलेंगे।"

जैसा अन्न वैसा बने तन–मन

"चार–चार साल तक विद्यापीठ से पढ़ाई कर आनेवाले विद्यार्थीयों को पढ़ाने के लिए एक माह भी कम पड़ता है, मगर आप तो सेन्द्रिय कृषि सिर्फ एक दिन में सीख सकते हैं। इसका कारण यह है कि जो विद्यार्थी चार साल तक अशुद्ध ज्ञान लेकर आते हैं उसे दिमाग से निकालने में काफी कठिनाई होती है। जबकि, आपका दिमाग तो एक कोरा कागज़ है यानी मैं जो लिखूंगा आप वही पढ़ेंगे। इसलिए आपको सिखाने में मुझे कोई परेशानी नहीं। आप जब एक व्यापारी होकर कृषि में इतनी रूचि रखते हैं, तो फिर मेरी एक बात मान लें कि शनिवार के दिन मुंबई से 10 बजे आने की बजाएं "जैसा खायें अन्न, वैसा बने तन और मन। इस बात को समझने के लिए मेरे पास पंजाब राज्य का ज्वल्नत उदारहण है। पंजाब में पाँच नदियाँ हैं। आपने सुना होगा कि बरसात के मौसम में जब ज्यादा पानी होता है तब नदियों में बाढ़ आती है। लेकिन पंजाब एक ऐसा राज्य है जहां गर्मी के मौसम में नदियों में बाढ़ आती है। क्योंकि गर्मी से हिमालय पर्वत की जो बर्फ पिघलती है उससे पांचों नदियों में पानी भर जाता है। यही कारण है कि सदियां बीत गई लेकिन पंजाब में कभी पानी की समस्या पैदा नहीं हुई। अब कोई भी समझदार विद्यार्थी से सवाल करें कि जिस राज्य में जरूरत से भी कहीं ज्यादा पानी हो उस राज्य में पानी की और जरूरत होगी? शायद एक छोटा बच्चा भी चिल्ला–चिल्लाकर उत्तर देगा कि ना.ना.ना.....। फिर भी जाने क्या सोचकर पंडित नेहरू ने पंजाब राज्य में भाखरा नांगल नाम का बड़ा बांध बनवाया! अरे भाई! नेहरू ने यह बांध किस खुशी में बनवाया? तो रहस्य यह है कि पंजाब में गेहूं का उत्पादन बढ़ाना है यानी नेहरू की कृषि–योजना और नीति को लागू करना है। और पंजाब के किसानों ने गेहूं की पैदावार बढ़ाने के लिए रासायनिक खाद और दवाइयों का उपयोग शुरू कर दिया। रासायनिक खाद और दवाइयों की गर्मी से फसल नष्ट न हो और जमीन ठंड बनी रहे इसलिए जरूरत से ज्यादा पानी का उपयोग किया गया। फसल को अधिक–से –अधिक पानी प्राप्त हो इसलिए पंप चलाने के लिए बिजली की आवश्यकता खडी की गई। आधुनिक कृषि विज्ञान–पद्धति से शुरू–शुरू में तो पंजाब ने पूरे विश्व में गेहूं उत्पादन के क्षेत्र में क्रांति ला दी। मगर अब क्या हो गया है पंजाब को? आंकड़े सवाल कर रहे हैं कि रासायनिक खाद, दवा और पानी का चार गुना ज्यादा उपयोग करने पर भी अपेक्षित उत्पादन क्यों नही होता? आज पंजाब की जो स्थिति और सचाई है वह हम सबके सामने है। इसके बावजूद एक कड़वा सत्य और भी हैं। वो ये कि गेहूं की ज्यादा पैदावार तो जरूर हुई पर उस गेहूं में रासायनिक खाद और जहरीली दवाइयों के अंश भरपूर है। खाने में सबसे पहले इस जहरीली गेहूं का उपयोग पंजाब के लोगों ने ही किया था। उसके बाद धीरे–धीरे भारत के अन्य राज्य के लोगों ने भी किया। मैंने बताया था कि 'जैसा खायें अन्न, वैसा बने तन और मन।' इसलिए उनके तन, मन और दिमाग विषैले बने और शांतिप्रिय भारत देश में सबसे पहली बार आतंकवाद पंजाब से ही शुरू हुआ। वही गेहूं, जो पुरे भारत में खाया जाता है, उसीके नशे का यह परिणाम है कि आज पूरे भारत में धीरे–धीरे आतंकवाद फैल रहा है। निश्चित रूप से इस समस्याकी जड़ आधुनिक कृषि–विज्ञान और नेहरू की गलत आर्थिक नीतियों में ही है। दुर्भाग्य की बात है कि उन्हीं गलत नीतियों को आज अन्य राज्यों के कार्यकर्ता भी अपना रहे हैं। इससे तो कहीं बेहतर होगा कि हम गांधीजी की कृषि–नति को अपनायें। मेरा दावा हैं। मेरा दावा है कि आज भी गांधीजी की सभी नीतियों को अपनाया जाये तो सिर्फ तीन ही साल में कृषि उत्पादन इतना बढ़ सकता है, कि हम सारे विदेशी कर्ज चुकाकर मुक्त हो सकते हैं। सरकार से उम्मीद रखने के बजाय जब तक किसान समाज एकजूट होकर सेन्द्रिय कृषि स्वीकार नहीं करता तब तक खुद का और देशवासियों का स्वास्थ्य ओर परिस्थिति कभी नहीं सुधरेंगी। निरोगी खान–पान का कोई सबूत देखना हो तो देखिये विदेशियों को, क्योंकि उनहें पता चल गया है कि आधुनिक कृषि के जहरीले उत्पादन का शरीर पर कैसा बुरा असर होता है तभी तो विदेशों में कृषि उत्पादन बेचने के दो विभाग बनाये गये हैं। एक हे सेन्द्रिय कृषि का बाजार और दूसरा आधुनिक कृषि का। जबकि भारत में घोड़ा हो या गधा एक ही भाव में बिकता है। विदेशी लोग इतने मूर्ख नही कि चार गुना अधिक दाम देकर सेन्द्रिय कृषि के उत्पादन खरीदें। उन्होंने असली स्वाद चख लिया है तभी तो विदेशी किसान सेन्द्रिय कृषि के जरिए आज कहीं अधिक मुनाफा कमा रहे हैं। उनका यह बदला हुआ नजरिया ही है कि वे आधुनिक कृषि को छोड़कर अब सेन्द्रिय कृषि का दामन पकड़ रहे हैं। यह जगजाहिर है कि गोरों का अनुसरण भारत के लोगों ने हमेशा किया है। क्योंकि वे गोरों को 'देवपुत्र' समझते हैं। और अब जब उन्होंने सेन्द्रिय कृषि को अपना लिया है तब फिर भारतीय किसानों को

क्या हो गया है? कि सिर्फ टुकुर–टुकुर मुंह देख रहे हैं।"

असल में मानव–सेवा ही प्रभु–सेवा और सच्चा धर्म है। मनुष्य के पास भले ही करोड़ों रूपये की सम्पत्ति हो, फिर भी वह सुखी और आनंदित नहीं हो सकता क्योंकि सुख या आनंद खरीदने की चीज नहीं बल्कि महसूस करने की एक चेतना, एक अनुभूति है जो दूसरों की सेवा करने से ही प्राप्त होती है। मैंने तो अब तक सिर्फ पेड़–पौधे लगाने और पानी देने में ही पसीना बहाया था, इसके सिवा मेरा कोई और खर्च तो था नहीं यानी खिलाने–पिलाने का नुकसान मुझे कभी उठाना नहीं पड़ा। मगर हां आपके नजरिये से देखा जाये, तो यह एक तरह का नुकसान ही है क्योंकि इस उत्पादन को अगर बाजार में बेचते तो अवश्य ही कुछ आमदनी होती। मगर फिर भी मेरा फायदा कम नहीं है।

उंगली दी तो हाथ पकड़ा

"अगर जैन–दर्शन के सिद्धांत, भगवद्–गीता, बाइबल और कुरान पर अमल किया जाये तो विश्व की सारी समस्याएं खत्म हो जायेंगी। आज जैसे–जैसे विकास की गति बढ़ रही है वैसे–वैसे विनाश का डर भी बढ़ता जा रहा है। आज मनुष्य को जो प्राकृतिक संपत्ति मिली है उसे हमारे पूर्वजों ने मात्र हमारे लिए ही नहीं बल्कि आनेवाली पिढ़ी के लिए भी रख छोड़ा था। ध्यान रहे कि यह सारी संपत्ति हमे सूद समेत लौटानी है। इस तहर हमें एक सही सोच–समझ के अनुसार प्राकृतिक संपत्ति की देखभाल करनी है। अगर हम इस संपदा का बगैर सोच के उपयोग करते रहे, तो पृथ्वी को एक दिन रेगिसतान बनाकर छोड़ेंगे ओर तब शायद भगवान–खुदा हमें भले माफ कर दें, लेकिन आनेवाली पीढ़ी कभी माफ नहीं करेगी। दुःख की बात तो यह है कि आज प्रकृति के साथ अत्याचार करनेवालों को ही शिक्षित और विकसित माना जाता है। राष्ट्रविरोधी प्रवृत्ति को जैसे विकृति माना जाता है वैसे ही सभी धर्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति (पर्यावरण के मुख्य पांच तत्वों) के साथ अन्याय करनेवालों को गुनहगार मानते है मगर जैने दर्शन तो जीव–हत्या को भी अपराध मानता है। मतलब यह कि कीड़े–मकोड़े से लेकर मानव तक होनेवाले अत्याचार को पापदोष और गुनाह मानता है। अब अगर आपका जैन संघवी परिवार एक व्यापारी होकर भी अपने धर्म के नियमों पर

श्री.भास्कर हिराजी सावे

सावेजी का जन्म 27 जनवरी 1922 में एक किसान परिवार में हुआ। परिवार में माता–पिता, पांच भाई और एक बहन थे। सभी भाइयों में वे चौथे थे। सावेजी के जन्म के समय पूरे परिवार के पास मात्र ढ़ाई एकड़ जमीन थी। सिर्फ इतनी सी जमीन से आठ जनों का गुजारा होता था। वैसे अधिक आमदनी के लिए पविार ने गांव की ही जमीन माजगुजारी पर ले रखी थी। जिसमें सिर्फ बरसात के मौसम में धान (चावल) की खेती होती थी। क्योंकि बरसात के चार माह ही खेतों मे काम रहता था, इसलिए बाकी समय (माह) में उनके पिता बैलगाड़ी में माल लाने–जाने की तनतोड़ मजदूरी का काम करते थे और अपने बच्चो को ऐसी ही मजदूरी की नौबत न आए, इसलिए पढ़ाते थे। भासकर भाई घर की परिस्थिति के कारण सातवीं कक्षा से आगे की पढ़ाई नहीं कर पाये। इसके बावजूद उनका मस्तिस्क विकसित होता रहा। बचपन से ही सावेजी को नये आविष्कार और नया जानते रहने की जिज्ञासा बनी रहती थी। वे स्वभाव से काफी चंचल, जिद्दी और तोड़–फोड़ करनावालों में से थे। उनके बचपन के दिनों का एक उदाहरण, जो काफी दिलचस्प है, सचमुच जानने योग्य है।

सावेजी के घर के आंगन में अच्छी आमदनी देनेवाला एक खूब फलने–फूलनेवाला पेड था। सुबह–शाम उनकी नजर उस पेड़ की तरफ जाती थी और वह सोचते थे कि "मेरी माँ मुझे खिलाती, पिलाती, नहलाती है यानी जैसे वह मेरे सब काम करती है और मुझे जब भूख–प्यास लगती है तो रसोई घर में मैं जाकर कुछ खा–पी लेता हूं। इस तरह चल–फिरकर मेरा तो विकास होता है पर मैं बचपन से देखते आ रहां हूं कि यह पौधा छोटे से बड़ा हो गया, यह जहां कल था, आज भी वहीं खड़ा हैं। तब इसके विकास के लिए जरूरी चीजें कैसे प्राप्त होती हैं? आखिर कहां है इस पेड की माँ? कौन आकर इस पेड़ को खिलाता–पिलाता है?"

अपने प्रश्नों के जवाब ढूंढ़ने हेतु उन्होंने पेड़ के तन के पास की जमीन खोद डाली। काफी जड़ें तोड़कर, काटकर बाहर निकलीं। तने की छाल को काट–काटकर निकाल डाला। इस तरह एक के बाद एक पेड़ पर खोज उन्होंने जारी रखी। आखिर उनके अपने हिसाब से इस खोज का और पेड की माँ को ढूंढ़ने का काम पूरा हुआ और परिणाम सामने आया। तो क्या परिणाम आया? परिणाम यह आया कि खूब उत्पादन देनेवाले उपयोगी पेड़ की सभी तलाश के नाम पर सावेजी ने तो लाश ही गिरा दी। जिसकी वजह से माता–पिता के हाथों उनकी खूब धुलाई हुई। इसके बावजूद भी सावेजी सुधरे नहीं; कि वे ऐसे सुधरने वाले थे भी नहीं। नई–नई खोज, प्रयोग, कुछ सोचने आदि जैसे कामों में उनकी छोटेपन से ही काफी रूचि रही है। वैसे पढ़ाई में तो उनका मन था पर पढ़ाई के साथ–साथ और छुट्टी के दिनों में वे पिता के साथ हाथ बंटाने के लिए खेतों में या फिर बैलगाड़ी में माल की आवाजही करने जाते थे। गांव के साहूकार जंगल में रहनेवाले आदिवासियों से बड़े–बड़े पेड़ कटवाते थे। और उनके खेत की उपज भी खरीद लेते थे। साहूकारों के कामों में सावेजी को जीवन के कई अनुभव मिले ओर उनका अवलोकर करने का मौका भी मिला। जैसेकि आदिवासी खेती–पद्धति, निरोगी जीवन के रहस्य और उनके रहन–सहन की कार्य–पद्धति आदि, आदि। अपने ऐसे अनुीाव और अवलोकर के जरिए उन्होंने पाया कि आदिवासी धान (चावल) की फसल उगाने के बाद चने जैसी बिन पानी की फसल का उत्पादन भी करते हैं। धान उगाने के समय खेतों में पानी भरा रहे इसलिए चारों तरफ चौड़ी मेड़ (मिट्टी की दीवार) बना ली जाती थी ताकि बांध में पानी जमा रहे और मेड़ पर बेल–वर्ग की सब्जियाँ भी लगाई जा सके। इस तरह ये आदिवासी फसल के निमित्त सम्पूर्ण जमीन का उपयोग करते थे। कहा जाता है कि हर पेड़ में देवी–देवता विराजते हैं। ऐसा ही समझकर आदिवासी पेड़ की पूजा भी करते (हैं) थे। किसी भी सूरत में हरे–भरे पेड़ कभी नहीं काटते थे, यानी अशिक्षित होने के बावजूद वे अपनी सूझ–बूझ और ज्ञान के आधार पर हर हाल में पर्यावरण की रक्षा करते थे। ये सारी बातें पत्थर पर खींची लकीर की भांति सावेजी के दिमाग में बैठ गई थी।

आज और पहले (पुराने) के जमाने में कितना बड़ा फर्क है। आज छोटे बच्चों को बचपन के सुनहरे दिनों में चहल–पहल करने से पहले ही उनके माँ–बाप उनपर किताबों का भारी बोझ लाद देते हैं। जबकि सावेजी के माँ–बाप ने बच्चों के लिए घर को ही प्रथम पाठशाला बनाकर सारे अच्छे संस्कार उनमें सींचने की कोशिश की, जिसमें उनकी चहल–पहल भी शामिल थी। यही कारण है कि पहले बच्चों को बड़ा होने के साथ–साथ घर में जो व्यवहार और गृहउद्योग होते थे, उनकी सारी जानकारी और प्रत्यक्ष अनुभव घर में ही मिल जाते थे। इसलिए तो पहले बच्चे जब बड़े होते थे, तो वे अपने अनुभवों को अपने व्यापार में इस्तेमाल करते थे। और आज?

आज के अनुभव तो किताबी ज्ञान के आधार पर प्राप्त किये गये होते हैं जिनकी अपनी कोई ठोस जमीन नहीं होती। पहले जब बच्चे सात–आठ साल के होते थे, तभी सकूल में नाम लिखवाना मुनासिब समझा जाता था। तभी तो सावेजी ने अठराह वर्ष की उम्र में कृषि–ज्ञान के साथ–साथ सातवीं कक्षा तक की शिक्षा भी प्राप्त की। उस जमाने में अगर कोई विद्यार्थी चार कक्षा तक की शिक्षा भी पढ़ लेता था तो उसे कामचलाऊ सरकारी नौकरी मिल जाती थी। सावेजी को भी एक शिक्षक की नौकरी मिल गई थी। और पढ़ाई के साथ–साथ कृषि–कार्य और नौकरी से घर में आमदनी भी बढ़ाने लगे थे।

पढ़ाने के लिए उन्हें अपने देहेरी गांव से पैदल जहां–जहां बदली होती वहां–वहां जाना पड़ता था। और वह भी जंगल से गुज कर क्योंकि उस वक्त यातायात की कोई व्यवस्थ नहीं थी। उनकी दिनचर्या में सुबह छः बजे से नौ बजे तक खेतों में काम करना, दस बजे से शाम छः बजे तक शिक्षक की नौकरी संभालना, शाम सात जे घर आकर कृषि का हिसाब एवं अन्य काम करना शामिल था। ऐसी जिन्दगी जीते थे सावेजी। पर कोल्हू चलानेवाले बैल–सा जीवन बसर करने में उनकी कभी कोई रचि नहीं रही। इस तरह दिन बीतते गये पर बीतते दिनों के साथ आमदनी की चिन्ता भी बढ़ती गई जीवन में कृषि के कई काम करने की इच्छा थी पर परिवार के पास तो सिर्फ ढ़ाई एकड़ जमीन थी। ऊपर से खेती के लिए पानी बहुत जरूरी था और पानी के लिए कुंआ, जिसके लिए पैसा ही प्रमुख था। इस प्रकार के कई सवाल सावेजी के समक्ष खड़े थे।

इसी बीच एक दिन पोष्ट ऑफिस से भास्कर भाई के लिए नौकरी का प्रस्ताव आया 'क्या आप पोष्ट मैन का काम, जो सुबह सिर्फ दो ही घंटे का है, संभालेंगे?' सावेजी ने आमदनी का जरिया बढ़ाने के निमित्त फौरन हां कर दी। वैसे देखा जाए तो सावेजी का पढ़ाने का तरीका भी काफी सरल और उत्कृष्ट था। इसी कारण कुछ विद्यार्थीयों को व्यक्तिगत तौर पर पढ़ाने का काम भी मिल गया था। सावेजी के पाक चरित्र से गांववाले भली–भांति वाकिफ थे। अतः गांव के बुजुर्गो ने मिलकर ग्राम–पंचायत के सारे काम सावेजी को सौंप दिये थे। इस काम में भी खुद को सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता के रूप में स्थापित किया था। मगर इतने सारे कामों के बावजूद उनको जो जरूरत थी उसके मुताबिक कभी मेहनताना नहीं मिल पाता।

सावेजी के पिता काफी सहृदय एवं मिलनसार व्यक्ति थे। तभी तो पूरे परिवार को एकजुट रखते थे और परिवार के लिए ही गांव की जमीन मालगुजारी पर लेते थे। उन्हीं दिनों की एक बात है, 1937 में वैष्णव समाज के एक 'गोपाल बाग' को संभालने का प्रस्ताव सावे परिवार के समाने आया। यह गोपाल बाग बारह एकड़ की जमीन तक फैला था। जिसमें दो कुएं, चीकू, आम, नारियल और अन्य कई ऐसे फल देनेवाले पेड़ थे, जिसे वे भाडे पर देना चाहते थे। पर उनकी शर्त यह थी कि 'श्री नाथजी (कृष्ण) के चरणों में रखने के लिए रोज एक टोकरी फूल, एक दर्जन चीकू, एक नारियल, तीन किलो सब्जी और सात दिनों में एक दिन मंदिर से निकला हुआ पानी सागर में बहाना होगा।' इस शर्त को मंजूर करने के बाद ही मंदिर के बाबाजी बाग की सारी आमदनी सावे परिवार को देने के लिए राजी हुए और उन्होंने गोपाल बाग पूर्णतः सावे परिवार को सौंप दिया। गोपाल बाग में पिता के साथ मुख्य रूप से बड़े भाई देखभाल करते थे भास्कर भाई को तो पौधे तैयार करने की सारी जानकारी गोपाल बाग से ही मिली थी। बाग से काफी अच्छा उत्पादन प्राप्त होता था। और जहां तक बाबाजी की बात थी, तो उस शर्त पर खरा उतरने के बाद भी एक अच्छी आमदनी होती थी जिसकी बदौलत घर में अतिरिक्त पूंजी आने से नई जमीन खरीदने, उत्पादन के लिए नये–नये प्रयोग करने और कुंआ बनाने का ख्वाब साकार होने लगा था।

सावेजी के घर के पास ही डेढ़ एकड़ जमीन उपलब्ध थी। मगर उस जमीन में रेत की मात्रा ज्यादा थी। इसलिए वह जमीन अन्न उपज के निमित्त किसी काम की नहीं थी। फिर भी सावेजी के पिता ने वह जमीन सिर्फ 150 रू. में खरीद ली। यह बात सन 1940 की है। परिवार ने उस जमीन पर बगायत कृषि (फलों का बाग) करने का फैसला लिया था। गोपाल बाग की अच्छी आमदनी के कारण उस जमीन में कुंआ खुदवाने का काम भी ठेके पर दे दिया गया था। फिर भी कुएं और बगायत कृषि की तैयारी में लगभग एक साल का समय तो लगने ही वाला था।

16 अक्तूबर 1940 का वह दिन भास्कर सावेजी को आज भी बहुत अच्छी तरह से याद है। उस रोज समुद्र में बहुत बड़ा ज्वार (तूफान) आया हुआ था। पता नहीं कैसे एक बड़े जहाज ने ज्वार से बचने के लिए सारा माल समुद्र में बहा दिया था जो बहते–बहते किनारे आ गया था। बारों में बहुत सारे सुखे नारियल भरह हुए थे। गांव के सभी लोगों ने अपने–अपने तरीके से उन नारियलों का उपयोग भी किया था। किसी ने बाजार में बेचा,

तो किसी ने खा–पीकर मजा लिया। पर सोचने, विचारने और दूरदृष्टि रखनेवाले भास्कर भाई ने प्रकृति से प्राप्त उन सारे नारियलों को, एक दिन श्रीनाथजी (श्री कृष्ण) के चरणों में, उनी से बने फलों को समर्पित करने के उद्देश्य से, गोपाल बाग में पौधे तैयार करने को बो दिए। एक साल में उन बोये गए नारियल से पौधे भी तैयार हो गये। और 1941 में घर के सामने जो डेढ़ एकड़ जमीन थी उसपर नारियल के उसी पौधों से बागायत कृषि की शुरूआत कर दी। दो नारियल के पौधों के बीज सावेजी ने सब्जी भी उगाई थी। इस प्रकार सावेजी ने पहली बार जीवन में बगायत कृषि (बाग–बगीचा) की शुरूआत की थी।

इस तरह से देखा जाये तो घर की पुरानी (पुश्तैनी) जमीन, घर के पास खरीदी गई नई जमीन, गांव की मालगुजारी पर ली गयी जमीन, सरकारी नौकरी, गांव के लिए अन्य काम आदि से सावे–परिवार पूरी तरह से बंधा हुआ तो था परन्तु इसके बावजूद घर की अन्य जरूरतों की पूर्ति के लिए आमदनी बढ़ाने को हर जरूरी काम करते रहना भी अति आवश्यक समजा गया था जिसे वे दिन रात एक कर पूरा करते रहते थे।

पुरूषार्थ

सावेजी अपना हर काम आज भी पूरी ईमानदारीपूर्वक और हंसते हुए करते हैं। उनकी कार्य–पद्धति की सभी जानकारी रखी जाती है। उन्हें एक अच्छे इंसान के रूप में पहचान के 'पूना ट्रस्ट ऑफ इंडिया' नाम की एक बीमा योजना कंपनी ने उन्हे अपना एजेंट नियुक्त किया था जिससे वे अच्छी–खासी आमदनी भी करने लगे थे। भास्कर भाई ही वे व्यक्ति हैं, जिनके हवाले गांव से बाहर जानेवाला व्यक्ति अपनी सारी सम्पति सौंपकर जाता था और जब वह वापस आता तो वे उसे उसकी संपत्ति लौटा देते थे, जिस विश्वास के साथ उसने सौंपी थी। उनकी इसी ईमानदारी ने उनके जीवन में एक दिन एक और रंग भर दिया। मुंबई की सब्जी–मंडी से उनके पास एक योजना आई। एक भाई मुंबई की सब्जी–मंडी में माल बेचने और दलाली का काम करता था। वह बिके हुए माल की रक्कम सब्जी–मंडी का कर, अन्य खर्च तथा दलाली के पैसे काटकर बाकी रक्कम उन किसानों के हाथों में देता था जिनसे वह माल लेता था।

किसान जो अपने परिवार और मजदूरों के साथ दिन–रात खेतों में जुताई, खाद डालने, पानी देने, फसल की रक्षा करने आदि में जी–तोड मेहनत करता है, तब कहीं उसे खेतो से उत्पादन प्राप्त होता है, और उसे वह किसी दलाल के ऊपर अंधेरे में भरोसा कर विक्री करने को सौंपता था और आज भी सौंपना हैं। दलाल बिक्री के बाद उत्पादन का जो भी देता है, उसे किसान को चुपचाप स्वीकार करना पड़ता है, क्योंकि उसकी जानकारी में इसके अतिरिक्त और कुछ होता नहीं। पुराने समय में किसानों को बेचे गये माल की रकम लेने मुंबई आना पड़ता था और दलाल से हाथों हाथ पैसे लेने में इतनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था कि कई बार तो पूरा का पूरा दिन बर्बाद हो जाता था। कई बार तो बेचे गये माल की रकम मिलती भी नहीं यानी कि जी–तोड़ मेहनत की सारी कमाई सम्पूर्ण डूब जाती थी।

सावेजी के परिचित दलाल ने अपनी एक योजना भास्कर भाई को सुनाईः "आपके गांव के आस–पास के किसान अगर अपना माल मेरी सब्जी–मंडी में ले जाने की अनुमति दें, तो उसे बेचकर मैं उनहें अच्छी कीमत दूंगा। बेचे हुए माल के सारे हिसाब की पर्ची, जिसे मंडी की भाषा में 'ब्रिक्री–पर्ची कहते हैं, वह जिन–जिन किसान भाइयों की होगी, उसके

हिसाब से उनके घर पर मैं भेज दूंगा। उसी की एक नकल प्रति आपके पास भी भेज दूंगा। आपको दोनों पर्चियां मिलाकर एक जाँच करनी होगी। उसके बाद उस बिक्री – पर्ची पर किसानों को दी जानेवाली रकम देने के बाद हर एक किसान का हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान सबूत के रूप में मुझे देना होगा। हम आपके पास पहले से ही कुछ रकम छोड़ जायेंगे ताकि आप इस कार्य की शुरूआत कर सकें। इस काम के लिए हम आपको तीन प्रतिशत कमीशन देंगे। भासकर भाई! अगर आप हमारी यह योजना स्वीकार कर लेते हैं तो किसान भाईयों को मुंबई आने की जरूरत नहीं पड़ेगी और उन्हें गांव में ही अपनी मेहनत का फल प्राप्त होता रहेगा।"

सावेजी ने यह प्रस्ताव स्वीकारने से पहले अपनी एक शर्त व्यापारी के सामने रखी "अगर गांव के किसान रसीद (बिक्री पर्ची) पर लिखी रकम लेने को रात के समय आएं, तो मैं यह योजना स्वीकार करने को तैयार हूं"

यह योजना गांव के किसानों को बहुत पसंद आई क्योंकि इसमें मुंबई जाने के झंझट से छुटकारा और समय की बचत जो दिखी। साथ ही साथ बड़ी रकम बगैर किसी जोखम के घर बैठे ही मिल रही थी। इस तरह यह लेन–देनवाली बिक्री–योजना इतनी लोकप्रिय हुई कि भास्कर भाई की तौ जैसे लॉटरी ही खुल गई। दिन–रात की मेहनत के बाद एक समय सावेजी के पास काफी पूँजी जमा हो गई, पर अफसोस कि जिस कृषि–कार्य करने के लिए उन्होंने यह पूँजी जमा की थी वह कार्य करने का जैसे समय ही नही मिल पायेगा, यह सोचकर सावेजी काफी दुःखी होते थे।

1950 में भास्कर भाई को एक आदर्श शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देखकर सोलसुंबा – उमरगांव के आस–पास के समाज के बड़े लोगों ने सरकार से अपील कर उनका तबादला करवाया और उन्हें अपने गांव ले आए। उस वक्त सावेजी तो देहरी गांव के पोष्टमैन थे जिसके कारण उनके पास साइकिल भी थी। बदली और साइकल होने के कारण उन्हे समय की काफी बचत होने लगी।

शिक्षक बनकर सावेजी आ तो गये, पर सोलसुंबा के सकूल में काफी अव्यवस्था थी, जिसे उन्होंने धीरे–धीरे दूर किया। इस कारण पूरे गांव में उनकी जयजयकार होने लगी। हर व्यक्ति उनका आदर–सत्कार करने लगा। कोई भी आदमी आदर–सत्कार और प्रसिद्धि मिलने पर बहुत खुश होता है पर सावेजी को वैसी कोई खुशी नहीं थी। उन्हें तो महात्मा गांधी जैसा कुछ करने की चाहत थी। गांधीजी का जीवन चारित्र, कर्म और कार्य–पद्धति उन्हें अत्याधिक प्रिय थी। ये उनके रोम–रोम में बसी थी। गांधीजी के विचार सावेजी ने अपने जीवन में उतारे भी हैं।

जैसाकि भगवद्गीता में बताया गया है कि 'कर्म और ज्ञान का एक सबंध होता है,। 'ठीक वैसे ही गांधीजी हमेशा कहते थे कि 'ाान तो सिर्फ प्रयोग से ही मिलता है।' उन्होंने इस पर स्वयं आचरण भी किया था। किसी को सलाह देने से पहले उसका प्रयोग गांधीजी खुद करते थे उसके बाद ही सलाह देते थे। देखा जाये तो गांधीजी अपनी पूरी जिन्दगी में प्रयोग ही करते रहे थे तभी तो महाज्ञानी बने थे। अगर वे चाहते तो वकालत कर आराम से जिन्दगी गुजार सकते थे लेकिन उन्होंने अपने देश को आजाद कराने के लिए अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन छेड़ा। गांधीजी की ऐसी अनेक बातें हैं जिनका काफी प्रभाव सावेजी के मन पर पड़ा था।

शिक्षक की नौकरी के दौरान बार–बार तबादला होने से सावेजी अंतः में परेशान हो गए थे। वे हमेशा यही सोचते थे कि अगर मैं शिक्षक बनकर ही जीवन बिताऊंगा तो मेरे हाथ में क्या आयेगा? वैसे भी मैंने यह नौकरी तो पैसे के लालच में की पर इस काम में वेतन तो ज्यादा मिलता ही नहीं। मेरा मुख्य उद्देश्य तो पैसा कमाकर कृषि–कार्य में कुछ कर दिखाने का है। मुझे घर की पुश्तैनी जमीन में कुंए खुदवाकर कुछ नए प्रयोग करने हैं और कृषि का ज्ञान भी प्राप्त करना है। क्या नौकरी करते हुए कृषि करना संभव होगा? सावेजी का मन अब कृषि की दिशा में ही ज्यादा सोचने–विचारने लगा था।

सावेजी को प्रभु–शक्ति और योजना में काफी श्रद्धा है। अतः उन्हें विश्वास था कि उनकी इच्छा प्रभुजी की कृपा से जरूर पूरी होगी। श्रद्धा और धैर्य के कारण उनकी इच्छा सन 1951 में रंग लाई। 16 जनवरी 1951 को उनकी शादी लक्ष्मी स्वरूपा मालती (बा) से हुई। और उनकी पत्नी के गृह–प्रवेश के साथ ही उनके जीवन में शुभ घड़ी की शुरूआत हुई। अब सावेजी का कृषि–स्वप्न साकार होने जा रहा था और सुख–दुःख में साथ देनेवाली पत्नी भी मिल गई थी।

घर की जो ढाई एकड़ जमीन थी उसमें से केवल डेढ़ एकड़ जमीन पर ही धान की फसल होती थी क्योंकि बाकी जमीन में एक गहरी खाई थी। उस खाई में बारीश के दिनों में पानी भर जाता था, जिसकी वजह से वहाँ किसी तरह की फसल उगाना संभव नहीं था। लेकिन सावेजी ने यह तय कर रखा था कि जब कभी भी कुआँ बनेगा तो इसी खाई में ही

बनेगा। ताकि उस अतिरिक्त जमीन का उपयोग कुंए से निकली मिट्टी भरकर हो सके। थोड़ी बहुत पूंजी जो कृषि के निमित्त जमा की गई थी उसे बारे में सभी भाइयों से सलाह–मशवरा कर एक बात यह निश्चित की गई की अब कृषि के क्षेत्र में कोई सार्थक कदम उठाना ही उठाना है।

सबसे पहले कुंआ खुदवाने का काम ठेके पर देने की बात मंजूर हुई पर इसके लिए पैसे एकदम कम पड़ गए। इसलिए शिक्षक की नौकरी का सहारा लिया गया तो सरकारी कर्ज के रूप में 700 रू. प्राप्त हुए। फिर भी जितना खर्च बैठता था उससे ठेके की भरपाई नहीं हो पा रही थी। इसलिए घर में एक नई योजना बनाई गई और वह थीः 'अपनी मेहनत जिन्दाबाद।' घर के प्रत्येक सदस्य और थोड़े से मजदूरों के साथ लेकर कुआं खोदने का काम शुरू हुआ।

यह कुआं खोदने का, दीवार बांधने का और मिट्टी बिछाने का काम 1951 में शुरू हुआ। उस वक्त सावेजी का जो सहयोग था, वह आज भी हमारी प्रेरणा के लिए जरूरी है और कल भी रहेगा। सावेजी भोर से लेकर 10 बजे तक सुबह खेत में मेहनत करते फिर शिक्षक की नौकरी के लिए स्कूल जाते। दोपहर को खाने की छुट्टी में देहरी आकर पोस्ट ऑफिस का काम करते और शाम को घर लौटते ही कुआं कखोदने के लिए खेत पर पहुंच जाते। वे मशाल जलाकर 10 बजे रात तक कुआं खोदने का कम करते। फिर रात को ग्राम पंचायत, बीमा कंपनी, बिक्री पर्ची के काम पूरा करते–करते उन्हे रात के 12 या 1 बज जाते तब कहीं जाकर उन्हें फुर्सत मिलती। क्या आज इतना काम कोई कर सकेगा?

तो सावेजी की मेहनत एक दिन सफल हुई और कुएं में 20 फुट पर ही भरपूर पानी आया। इस कार्य को देखकर और गंगाजल जैसा मीठा पानी चखकर सावेजी के पिताजी तो गद्‌गद् हो गये। उनकी खुद की जमा की गई पूंजी और मेहनत बेटों के काम आई यह देखकर, उनके पिता आनंदित हो उठे। मगर यह आनंद उनके जीवन में ज्यादा दिनों तक नहीं रह पाया, क्योंकि अपने हरे–भरे घर को फलते–फूलते देखकर शायद उन्होंने अपनी जिन्दगी पूरी जी ली थी। 1952 में उनकी मृत्यु हो गई। यह आघात सावेी सहन न कर पाये। नतीजा यह हुआ कि पिता के जाने का दुःख, कुएं से जुड़े काम और अन्य के बोझ तले वे इस तरह दबते चले गये कि एक दनि एक बड़ी खतरनाक बीमारी से ग्रसित हो गये। शिक्षक की नौकरी चूंकि सरकारी थी इसलिए बच गई लेकिन बाकी सारे काम उनके हाथों से निकल गये। बड़ी बीमारी होने के कारण उनके दाएं कान की सुनने की शक्ति भी चली गयी। बीमारी से परेशान सावेजी चूंकि दिन–भर घर में ही पड़े रहते थे। इसलिए बिक्री–पर्चीवाल काम चलता रहा था।

इन तमाम मुसीबतों के दौरान उनके बड़े भाई श्री. रघुनाथजी को एक बढ़िया नौकरी मिल गयी। नौकरी तो मिल गई पर गोपाल बाग हाथ से निकल गया। अब कृषि की सारी जिम्मेदारी भास्कर भाई केशव भाई पर आ गयी। पुरानी जमीन, घर के पास नारियल के पेड़वाली नई जमीन और मालगुजरी पर ली गयी जमीन जिसपर आज 'कल्पवृक्ष फार्म' खड़ा है, आदि की जिम्मेदारी इन्हीं दो भाईयों को संभालनी थी। सावेजी पर खुद के परिवार की जिम्मेदारी भी ऊपर से थी। इस तरह उनके इस कठिन समय में जो बोझ अचानक आ गया था, उसीके बारे में सावेजी सोच ही रहे थे कि इसी दौरान प्रभुजी की तरफ से जैसे खुद–ब–खुद एक शुभ संदेश आया। वह शुभ संदेश था। सावेजी का तबादला। वह तबादला कहीं और नहीं बल्कि सावेजी के खुद के गांव देहेरी में होने वाला था। निश्चित रूप से उस तबादले से सावेजी मात्र खुश ही नहीं थे, मगर साथ–साथ इसमें उन्होंने फिर से एकबार अपने अधूरे कामों को पूरा करने का एक सुनहरा अवसर भी देखा। सावेजी ने उस शुभ संदेश का यानी कुछ नया करने का सुनहरा अवसर प्राप्त करानेवाले प्रभुजी का तहेदिल से आभार माना और उनसे आशीर्वाद लेकर अपने कृषि–कार्य की राह पर फिर से चल पड़े।

आधुनिक कृषिः एक मायाजाल

1935 में जब अंग्रेजों को आभास हो गया था कि गांधीजी भारत को आजादी दिलाकर ही रहेंगे तब उन्होने सोचा कि सोना, चांदी, माणिक जैसी महत्वपूर्ण चीजों की यह खान अगर हमारे हाथ से निकल गई तो? इसलिए अंग्रेजों ने सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी भारत की सारी पूंजी को अपने यहां ले जाने के लिए एक योजना बनाई जिसका मुख्य उद्देश यह था कि "अगर किसी देश की प्रजा का विनाश किये बिना, बम–गोली से मारे बिना, शमशान घाट ले जाना हो और उस देश की समृद्धि को अपने यहां ले जानी हो तो उस देश के किसानों को आधुनिक कृषि की तरफ प्रेरित करो। उसे बताओ कि रासायनिक खाद, दवाइयां इत्यादि खेती के लिए उपयोगी है। अगर एक बार उन्हें फायदा दिखाई दिया तो वे बिना कुछ सोचे–समझे हमारी कृषि पद्धति प्रयोग में लाएंगे ओर इस उत्पादन का अन्न जब वे खायेंगे तब ऐसे बीमार पड़ेंगे कि उन्हें दुश्मन भी दोस्त नजर आयेगा। इस तरह आधुनिक कृषि और चिकित्सा से हम ढेरों रूपये कमायेंगे।"

सचमुच अंग्रेजों की योजना आज सौ प्रतिशत सच होते दिखाई पड़ती है। इसलिए कहा जा सकता है कि विदेशियों की कार्य–पद्धति को अपनाने के कारण ही आज भारतीय किसान इस स्थिति में पहुंच गये हैं कि उनहें आए दिन आत्महत्या करनी पड़ रही है। मैं तो गांधीवादी सावेजी के बारे में भी सोचकर कई बार विस्मय से भर जाता हूं कि वह भी आधुनिक कृषि के मायाजाल में एकबार फंसे थे तो आखिर कैसे? क्या कुदरत और प्रकृति की ही वह अदृश्य शक्ति थी या हमारे समाज या युग में ही कहीं ऐसा कुछ दोष था जिसकी वजह से सावेजी अंग्रेजों की योजना में फंसे थे।

शिक्षक होने के कारण सावेजी सरकार अधिकारीयों के संपर्क में आते रहते थे जिसके कारण उन्हें नये आविष्कारों की जानकारियां भी प्राप्त होती थी। सावेजी को किताब और समाजचार पत्र पढ़ने का बेहद शौक था और आज भी है। आधुनिक कृषि की कई चमत्कारी बातें उन्हें पढ़ने को मिलती थीं पर जब तक उनका प्रयोग करके देख नहीं लेते, तब तक सुनी–सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने घर की पुरानी जमीन पर कुआं तैयार कर रखा था। परिवार के सभी लोग अपने पिता की मृत्यु के आघात से उबर चुके थे और अपना सारा ध्यान अब कृषि की ओर लगा चुके थे।

धान (चावल) की खेती के लिए खेतों में आवश्यकता के हिसाब से पानी भरा रहना बहुत जरूरी होता है तभी तो मेड़ों को मिट्टी की दीवार से घेरकर, कम–से–कम चार फुट ऊँची और तीन फुट चौड़ी बनाते है। दूर से देखने पर छोटे–छोटे तालाब का आभास होता है। सावेजी ने भी धान की फसल के लिए इस तरह की क्यारियां बना रखी थीं जिनमें मेड़ों के बीच में पानी ले जाने के लिए नाले भी थे। जब खेतों में पानी की जरूरत होती, तब सावेजी पुराने गड्ढे में से पानी, टीन के डिब्बे द्वारा निकालकर नाले के जरिए खेतो में बहा देते थे। लेकिन जब कुआं बन गया तब उससे पानी निकालने के लिए उन्होंने रेंट (रहट–चरखी) का प्रयोग किया। इसे चलाने के लिए वे दो भैंसा खरीद लाए। इस प्रकार उन्होंने पानी निकालने का प्रश्न हल किया। फिर घर के लोगों ने यह तय किया कि बरसात के मौसम में धान की फसल उगाई जाएगी और इ।ड और गर्मी के मौसम में अउसके अनुकूल फसल उगायी जायेगी।

देखा जाये तो रामायण और महाभारत के युग से ही हमारे पूर्वज कृषि के बेहतर उत्पादन पाने के लिए गोबर का उपयोग करते रहे हैं। जबकि सावेजी ने 1952 में रासायनिक खाद का उपयोग कैसे किया जाए यह जानकारी कृषि अधिकारीयों से हासिल कर ली। जीवन में पहली बार उन्होंने रासायनिक खाद के साथ–साथ गोबर का उपयोग करने के बारे में भी सोचा। पहले की तरह बरसात के पानी से ही धान की खेती की जाती रही। धान की फसल नवंबर में काट ली जाती है। सावेजी ने नवंबर आने से पहले यानी अगस्त में ही लतरवाली (बेल वर्ग की) सब्जी के उत्पादन के लिए, तार बांधकर मंडप जैसा तैयार कर लिया था। एक एकड़ टोंडली (कुन्दरू) और एक एकड़ में मिर्ची लगाने की बात पक्की कर ली थी। दोनों फसलों के अच्छे उत्पादन के लिए सावेजी ने रासायनिक खाद के साथ गोबर का भी इसतेमाल किया था।

पहले तो सावेजी के परिवार के सभी लोग फसल को सींचने के लिए बारी7बारी से रेंट (रहट–चरखी) चलाते थे। सावेजी एक खेत से दूसरे खेत में पानी ले जाने के लिए मेड़ों पर बने निक (नाली) का उपयोग करते थे जो एक ढलान के रूप में होती थी ताकि पानी को तेजी से बहाव मिल सके। पर नाले में दिन–प्रतिदिन जंगली घास जो सूर्यप्रकाश मिलते ही उग जाती थी और पानी को बढ़ने में रूकावट पैदा किया करती थी। इसलिए

उन्हें उखाड़कर फेंकना पड़ता था। और नाला, जिसमें कई बार पानी भर जाने से व्यर्थ खर्च होता था, वह एक परेशानी का कारण बनता था। आधुनिक कृषि का तो सावे परिवार के लिए यह पहला प्रयोग था, इसलिए सभी को जी–तोड़ यानी पशु की तरह मेहनत करनी पड़ती थी। पशु की बात निकली ही है तो मैं यह कहना चाहूंगा कि हिन्दू राष्ट्र में रहनेवाले और 'अहिंसा परमों धर्मः को माननेवाले भारतीया तो पशुओं की बेरहमी से हत्या करते हैं। आज तो पशुओं को फालतू जीव समझा जाने लगा है। उनके प्रति संवदेना नाम की चीज मर सी गयी है। जबकि देखा जाये, तो पशु भी बेटे से कम नहीं होते। यही कारण है कि सावेजी अपने दोनों भैंसा को एक घंटे काम के बाद एक घंटे का आराम देते थे। सावेजी के इसी विचार के कारण भैंसा और घर के लोगों के सहयोग से कृषि अधिकारीयों द्वारा बताये गये अपेक्षित पानी की भरपाई हो पाती थी यानी अंततः वे सफल हुए थे।

कठिन परिश्रम, गोबर, रासायनिक खाद, जरूरत के हिसाब से पानी आदि के उपयोग से जनवरी 1953 में आंखे चुंधिया जायें इतनी सबजी कीपैदावार हुई कि पूरे देहेरी और आस–पास के गांवों में सावेजी की पैदावार की चर्चा होने लगी। किसानों की भीड़ उनके उत्पादन को देखने के लिए उमड़ पड़ी और जहां सुनो वहीं, सावे परिवार की ही प्रशंसा होने लगी। सावेजी को तो जेसे अल्लादीन का जादुई चिराग ही लि गया था इतनी आमदनी टोंडली और मिर्ची की पैदावर से हुई। सावेजी के कर्मों का ही यह फल था कि गुजरात फर्टीलाइजर कंपनी के संचालक भी उनके घर आए और अपनी कंपनी की रासायनिक खाद का सफल उपयोग करने ओर उससे खूब उत्पादन पाने के लिए उन्हें बधाई दी। साथ ही किसानों को उस खाद की जानकारी देने, विक्री और वितरण संभालने की एक एजेंसी का प्रस्ताव भी सावेजी के समक्ष रखा। संचालक ने एक बोरे के पीछे 5 रू. का कमीशन देने की बात भी कही। 'जो रोगी को भाये, वही वैदा फरमाये।' कुछ ऐसी ही बात उन दिनों सावेजी के जीवन में हुई थी। क्योंकि उनके कई काम हाथ से निकल गए थे इसलिए यह काम उन्हे उतम लगा और उन्होंने एजेंसी का काम स्वीकार लिया। इस तरह लक्ष्मी माता ने सावेजी के ऊपर पैसों की जैसे बारिश ही कर दी।

इन तमाम बातों के बावजूद आधुनिक कृषि और रासायनिक खाद का यह एक मायाजाल ही था जिसमें सावेजी देखते–देखते बुरी तरह से फंस चुके थे। अभी तो यह नयी खाद की शुरूआत थी इसलिए इसके बुरे नतीजे क्या होंगे? यह कोई कल्पना भी नहीं कर पाता था। पर कुछ समय के लिए तो भास्कर भाई मालामाल हो चुके थे। और उन्हें जो नये–नये प्रयोग करने की इच्छा थी, उसे पूरा करने के लिए जमीन, जो किराये पर ली थी अब स्वयं खरीद ली। खरीदी गयी इस ढ़ार्ठ एकड़ की जमीन पर उन्होंने कुआं खुदवाने का ठेका भी दे डाला।

जहाँ घर होगा तो वहां कचरा भी होगा। और जहाँ गांव होगा, तो दूसरों के कामों में दखलअंदाजी, पंचायत, चुगली ओर अन्य लफड़े भी होंगे। भास्कर भाई की प्रगति देखरक लोगों के पेट में दर्द होने लगा था। इसलिए जब मौका मिलता, तो कुछ गांववाले सावे परिवर में फूट डालने का काम करते। भास्करजी ने जो जमीन खरीदी थी उसको लेकर कई लोग उनके बड़े भाई रघुनाथजी के कान भरने लगे कि 'आपका छोटा भाई तो काफी खर्चीला इंसान है। देखते नहीं वह मनमानी कर रहा है। आपके परिवार की मंजूरी लिये बिना ही जमीन खरीद ली। घर की सारी पूंजी यूं ही उड़ा देगा। रोको, उसे रोको।' इस प्रकार से लोगों ने घर के सभी भाइयों के कान भरना शुरू किया और एक दिन भाईयों के बीच फूट डाल ही दी। देहरी गांव के बुजुर्ग और समाज के लोगों ने 'सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।' कहावत के आधार पर चारों भाइयों को बराबर की हिस्सेदारी देकर, बंटवारा कर दिया। एक–दूसरे की सहायता करने और साथ बने रहने की बात पर सहमत हो सभी भाई अलग–अलग हो गये। गांव का घर काफी बड़ा था, इसलिए सबसे पहले उसी का बंटवारा हुआ। सभी भाई एक–दूसरे के नजदीक रहने पर सहमत थे इसलिए दो बड़े भाईयों को घर के सामने वाली बगीचावाली जमीन, मिली,। केशवभाई को घर की पुरानी जमीन मिली और भास्कर भाई को मिली ढ़ाई एकड़ नई जमीन। इस प्रकार सभी भाई अपने–अपने हिस्से की जमीन पर रहने लगे। अंततः सभी भाइयों ने अपने परिवार को अपनी ही आंखों से टुकड़े–टुकड़े होते देखा। एक हरे–भरे घर, एक हरे–भरे परिवार और एक धागे में कई गांठे पड़ते देखी।

जपानी पद्धति से धान

विदेशी संस्कृति, पद्धति, खान–पान, रहन–सहन आदि का भारतीय जन–मानस पर काफी प्रभाव पड़ा है। ये और बात है कि इसका परिणाम क्या होगा, कोई ठीक से नहीं जानता और जानता भी है तो चुप है। वैसे भी बगैर परिणाम जाने प्रभाव पड़ने का कारण भी है। क्योंकि अंगेज जिन्होंने 200 साल तक भारत पर जो राज किया, राज करने के काल में उन्होंने कितने ही देशी अंग्रेज भी पैदा किये ताकि जब वे यहां से जाएं तब भी यहां उनकी बुनियाद बनी रहे। आज वही देशी अंग्रेज कुत्तों की भांति अपनी वफादारी निभी भी रहे हैं। इसलिए भारत में विदेशी संस्कृति को अपनाने वालों का कहना है कि 'अगर हम भी गोरे लोगों की राह अपनायें, तो विकास संभव है, वर्ना पीछे के पीछे ही रह जायेंगे।' वैसे तो वहां औश्र यहां की भौगोलिक सामाजिक व्यवस्थ्ज्ञा में जमीन–आसमान का फासला है, संस्कृति और मूल्यों के बीच असमानता है; इसके बावजूद भी भारतीय वही करना चाहते हैं जो गोरे कर रहे (थे) हैं। विदेशी अनुकरण का एक उदाहरण गौर करने लायक है। विदेश में वकील जब कोर्ट–कचहरी में केस लड़ने जाते हैं तब काला कोट, पैंट और टाई पहनकर जाते हैं। इसी का अनुकरण हमारे यहां के वकील भी करते हैं। भले ही 40–50 डिग्री सेल्सीयस के तापमान से उन्हें पसीने–पसीने होना पड़े। पर जब गारों की वफादारी निभानी है तो मरते दंम तक निभानी है।

भारत की सम्पूर्ण जीवन शैली का बिना सोचे – समझे पश्चिमीकरण किया जा रहा है। तो फिर रामायण और महाभारत काल से चली आ रही कृषि–पद्धति के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए बदलाव जरूरी क्यों नहीं?

सन् 1952 में कृषि अधिकारी हरिश्चंद्र गोपाल पाटील, जो जपानी धान उत्पादन–पद्धति को देखकर भारत आये थे, उनका एक इंटरव्यू छपा था। जपान में धान की पैदावार बढ़ाने के लिए वहां के किसान रासायनिक खाद और दवाइयों का उपयोग करते हैं। साथ ही साथ खरपतवार (घूर–निराइ–निंदन) भी करते हैं ताकि फसल के लिए दी गयी सारी खाद पूर्णतः उसे ही मिले। अब चूंकि सरकार को भी धान का उत्पादन बढ़ाना था, इसलिए एक कृषि–स्पर्धा का अयोजन किया गया। सावेजी को, रासायनिक खाद यानी आधुनिक कृषि का नशा चढ़ा था, इसलिए सरकारी कृषि–स्पर्धा में भाग लिया।

1953 में सावेजी ने अपने हिस्से में आई ढ़ाई एकड़ जमीन पर पहली बार जपानी पद्धति का प्रयोग किया। सावेजी ने जपानी पद्धति के बारे में जहां तक जानकारी थी वहां तक उसका अनुकरण किया और निध्ाारित धान (चावल) का उत्पादन भी लिया। अब फिर से किसान उनके खेत पर उपज देखने को उमड़ पड़े और सावेजी को सरकारी स्पर्धा में प्रथम पुरस्कार भी मिला। जबकि उस वक्त उन्हें भ्झी यह पता नहीं था कि जिस तरह मिस वर्ल्ड की प्रतियोगीता में नंगा नाच दिखाकर एक–दो को ताज पहनाकर विदेशी लोग अपना करोड़ों का माल भारत के गले में बांध देते हैं ठीक उसी तरह सरकारी कृषि–स्पर्धा के नाम पर भारतीय किसानों को ठगा गया है। इसी कारण हम बारबार कहतें हैं, कि, 'रग–रग में समाये ज्ञान और सूझ–बूझ होने के बावजूद, दूसरों की सलाह माने, आदेश का पालन करे और काफी नुकसान भी उठाये तो वह किसान इस पृथ्वी पर अव्वल दर्जे का मूर्ख नही तो क्या कहा जाए?' मगर सावेजी को तो उस वक्त ज्यादा से ज्यादा कमाई करनी थी। इसलिए पैदावार और आमदनी में लगातर वृध्दि के लिए उन्होंने रासायनिक खाद का उपयोग बढ़ा दिया था।

सावेजी तो एक कृषि प्रयोगधर्मी थे और आज भी हैं। उनके मन में कभी यह बात नहीं आई की सिर्फ विदेशी कृषि–पध्दति ही उपयोगी है। उन्हें अपनी भारतीय कृषि–पध्दति ही सर्वोत्तम नजर आती थी (है)। पर उस वक्त एक जो धुआं उनके चारों तरफ फैला हुआ था, सावेजी उससे भागकर नहीं बस सोच–समझकर बाहर निकलना चाहते थे।

धान की प्राणवायु पानी में

विनोबाजी को कृषि की अच्छी–खासी जानकारी थी। इसलिए उन्हें जब कोई प्रयोग या अवलोकर किसान के उपयोग के लिए बेहतर लगता, तो वे लोगों को उस की जानकारी देते थे। उन्होंने अपने एक लेख में किसानों की जानकारी के लिए बताया है कि "आदिवासी धान का अच्छा उत्पादन पाने के लिए अक्सरी क्यारी का पानी बदलते रहते हैं क्योंकि ध ाान को मिलनेवाली (अनिवार्य) प्राणवायु ज्यादातर पानी में ही होती है। वैसे तो अधिकांशतः फसलें खुद के लिए प्राणवायु हवा से प्राप्त करती हैं। मगर धान ही एक ऐसी फसल है, (इसे अपवाद भी कह सकते हैं), जो मछली की भांति पानी से ही अपनी प्राणवायु प्राप्त करती है। यही कारण है कि आदिवासी बगैर किसी रासायनिक खाद के सिर्फ पानी बदलकर धान का अच्छा उत्पादन कर लेते हैं।"

विनोबाजी के लेख की इस बात से सावेजी का माथा ठनका। बगैर किसी खाद के धान–चावल का उत्पादन! यह कैसे संभव है? सावेजी इस बात पर चिंतन–मनन करने लगे। बार–बार विनोबाजी का वह लेख पढ़ते रहे, पर दिमाग था कि इसे मानने को कतई तैयार नहीं था। मन में जागी इस शंका और प्रश्नों के हल के लिए एक दिन खेत पर गये और प्रयोग करने की कोशिश में लग गए।

सावेजी ने अपनी ढाई एकड़ जमीन पर धान की फसल के लिए छोटी–छोटी क्यारियां बना रखी थी जिसमें धान की फसल चालीस दिनों पहले लगा रखी थी। उन्होंने फसल के लिए गोबर के साथ रासायनिक खाद का उपयोग भी किया था। चालीस दिनों से क्यारियों में पानी भरकर रखा गया था किन्तु प्रयोग के लिए एक क्यारी की मेड (दीवार) तोड़कर उसका पूराना पानी बाहर निकाल दिया गया और फिर से मेड़ बांध दी और कुंए से पुनः ताजा पानी इस क्यारी में भर दिया था।

सावेजी जब यह प्रयोग कर रहे थे तब गांव के कई किसान कुतूहलता से देख रहे थे। सभी किसानों के मन में यही बात बार–बार आ रही थी कि "यह आदमी कैसा पागल है? क्यारी में भरा हुआ पानी बाहर निकाल रहा है और फिर उतनी ही मेहनत करके क्यारी में पुनः पानी भर रहा है। आखिर सावेजी को हो क्या गया है? क्यों वे पागलों सी हरकत कर रहे हैं?" कुछ देर के बाद जब एक किसान से रहा नहीं गया तो उसने पानी बदलने का कारण पूछ ही डाला। तब उन्होंने सभी किसानों को विनोबाजी के लेख में पढ़ा गई बात बताई कि "धान की फसल की जान तो पानी में होती है।" और सावेजी अपना प्रयोग पूरा करके वापस घर लौट आए।

दूसरे दिन वे स्कूल जाने से पहले अपने प्रयोग का निरीक्षण करने खेत पर गये। साथ–साथ गांव के अन्य कई किसान भी इस प्रयोग को देखने के लिए पूरी उत्सुकता के साथ खेत पर इकट्ठे हुए थे। पहले लहलहाती हुई स्वस्थ दीखनेवाली धान की फसल अब पानी बदलने से कमजोर और मुरझाई हुई दिखी। रयह देखरकर सावेजी काफी दुःखी हुए। गांव के किसनों ने उनका हौसला बढ़ाने के बजाय उनकी खिल्ली उड़ायी "वाह रहे वाह! धन की फसल की जान तो पानी में होती है! अगर ऐसी ही रटी–रटाई बातों पर विश्वास करोंगे तो एक दिन खेती से ही हाथ धोना पड़ेगा और भीख मांगने की नौबत आ जाएगी। कभी भी पागलों की तरह प्रयोग नहीं करना चाहिए।" इस तरह गांव के किसानों ने सावेजी को बिना मांगे मुफ्त सलाह भी दे डाली थी।"

जिस गांववासियों के लिए मैंने इतना कुछ किया, उन्होंने ही मेरी असफलता देखकर मेरी हंसी उड़ाई! सावेजी को गांववालों की इस हरकत से सचमुच काफी दुःख पहुंचा था, शायद बहुत गहरे तक। इसलिए और अधिक शर्मिंदगी महसूस करने से पहले उस दिन वे स्कूल न जाकर वापस घर लौट आये थे।

मेहनत करने के बाद भी अगर असफलता मिले और वह भी पहली ही बार में तो कोई भी आदमी थोड़ा हताश जरूर होता है। जीवन में ऐसा कई बार होता है जब हमें अपनी मेहनत का फल नहीं मिलता। तब मन में कई प्रश्न भी उठते हैं "मैंने यह सब किसके लिए किया? यह कार्य करने से मुझे क्या मिला? मैंने यह सब न किया होता तो कहीं अच्छा होता। मेरी सारी मेहनत पानी में चली गई। इस तरह के प्रश्न और विचार जरूर उठते हैं पर ऐसा नहीं है कि अगर कोई एक बार असफल हो गया तो वह फिर कभी सफल होगा ही नहीं।"

एक विद्यार्थी साल भर मेहनत से पढ़ता है फिर भी परीक्षा में फेल हो जाता है। कई लोग नौकरी के लिए इंटरव्यू देते हैं पर नौकरी हासिल नहीं होती। अब मेरे जैसे लेखक का ही उदाहरण लें जो कितने वर्षों से हजारों तरह की परेशानियां उठाकर जानकारियां हासिल करता है मगर

पढ़नेवाले उसे बकवास या कचरा समझकर फेंक देते हैं। पर क्या निराश होना ही एक मात्र मार्ग है? हमेशा मार्ग कई होते हैं जिन पर चलकर अपने प्रयत्न और मेहनत से सफलता प्राप्त की गई है और आज भी प्राप्त की जा सकती है। हारकर, थककर और टूटकर अपना मार्ग बदल देना कभी उचित नहीं। हां.....एक बात और। हमें अपनी असफलता के बारे में थोड़ा सोचना भी चाहिए कि कहीं प्रयत्न और मेहनत में कमी तो नहीं रह गई। जरूर कहीं कोई गलती हुई होगी तभी तो ऐसा हुआ। वैसे भी विफलता भविष्य में प्राप्त होनेवाली सफलता का एक अभिन्न अंग होता है। इस प्रकार सोच–विचार कर ही जीवन में अपने काम की पुनः शुरूआत करनी चाहिए क्योंकि लगन और आत्मविश्वास के आधार पर किया गया कर्म एक दिन जरूर रंग लाता है और मंजिल अवश्य प्राप्त होती है।

ऐसा कहा जाता है और देखा भी गया है कि हर महान पुरूष की सफलता के पीछे ज्यादातर स्त्री का ही हाथ होता है। तो सावेजी की सफलता के पीछे भ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मालती (बा) का हाथ है। जब सावेजी दुःखी होकर खेत से वापस आये थे तब उन्होंने बा को सारी बातें बताई थीं कि, किस प्रकार प्रयोग असफल होकर धान की फसल में नुकसान हो सकता है। गांववालों ने उनकी हंसी भी उड़ाई ओर ऐसे पागलों जैसे प्रयोग न करने की सलाह देते हुए व्यंग्य भी किया। उस वक्त सावेजी की सारी बातें सुनकर मालती बा ने उन्हें जो हिम्मत दी वह अतुलनीय थी।

बा ने अपने पहने हुए और अलमारी में रखे हुए सारे गहने निकालकर सावेजी के चरणों में रख दिये और गर्व से कहा "ये सारे गहने आपके प्रयोग और सफलता से ही मिले हैं। अगर ये गहने कृषि–प्रयोग में चले भी जायें तो मुझे अफसोस या दुःख नहीं होगा। अभी तो सारी जिन्दगी जीने और जीतने के लिए बाकी है। आप जो भी (नये–नये) प्रयोग कृषि के लिए करना चाहते हैं, अवश्य कीजिए। आखिर आप क्या साथ लाये थे जो कि नुकसान की चिंता लिये बैठे हैं। आप उठिए और अपने कार्य में लगिए। फिर दिखा दीजिए कि आपके प्रयोग के क्या–कया सफल परिणाम हो सकते हैं। यह मत भूलिए कि ये वही मतलबी गांववाले हैं, जिन्होंने आपके प्रयोग सफल होने पर तो वाह–वाह की थी, और अब जब एक प्रयोग में आप असफल रहें, तो हंसी उड़ाते हुए उन्होंने आपको पागल तक कह डाला। आप ऐसी बातों की चिंता करना छोड़ दीजिए, क्योंकि सुख–दुःख, दिन–रात, धूप–छांव ये तो जीवन में आते ही रहते हैं। अब आप जाइए ओर गहने बेचकर पैसे लाइए ओर अपनी सफलता की राह बनाइए। मैं हर मुसीबत में आपके साथ हूं। एक दिन हम जरूर सफल होंगे।"

युद्ध में जानेवाले राजपूत योद्धा को जिस तरह राजपूतानियां प्रोत्साहन देती हुई कहती हैं कि 'विजयी होकर ही आना, वर्ना मुंह मत दिखाना।' ठीक उसी प्रकार बा ने भी पतिदेव की हिम्मत बढ़ाई। आश्वासन और प्यार के ये बोल सुनकर सावेजी तो गद्‌गद् हो उठे थे। पत्नी और बच्चों के सामने उन्होंने प्रतिज्ञा की कि "अब मैं जीवन में पीछे मुड़कर देखूंगा हीनहीं कि क्या हुआ था? मगर बचपन में जिस पेड़ की माँ को ढूंढने का प्रयास किया था उसे अब ढूंढकर ही रहूंगा।" इस प्रकार सावेजी ने एक दृढ़ निर्णय लिया ओर अपने कार्य में लग गये। सावेजी को शुरू से ही गांधीजी ओर विनोबाजी की बातों पर पूरा विश्वास था कि ये महान पुरूष कभी गलत हो ही नहीं सकते। इसी विश्वास को ध्यान में रखकर उन्होंने विनोबाजी का वह लेख (धान की प्राणवायु पानी में) फिर से पढ़ा कि शायद समझने में कहीं कोई गलती हो गई हो। मगर कहीं भी गलती नजर नहीं आई। इसके बावजूद उन्होंने अपने किये गये प्रयोग के बारे में इतना जरूर सोचा कि 'शायद जमीन की रचना, वातावरण या रासायनिक खद के प्रयोग के कारा ही यह असफलता मिली है।" अब नष्ट होती धान की फसल को किस तरह से बचाया जाये इसी बात पर सावेजी ने अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया था।

फिर घर के सभी लोगों और मित्र–मंडली को खेत पर खींचकर लाये और विनोबाजी के लेख के आधार पर प्रयोग से घटित चमत्कार को खुशी–खुशी दिखाने लगे। यह सब देखकर, सुनकर उनकी मित्र–मंडली ने शंका करते हुए कहा "सावेजी! आप सब को गलत बात क्यों बताते हैं? क्या सिर्फ पानी बदलने से इतना फर्क आ सकता है? लोगों ने जो आपकी हंसी उडाई थी उसी के कारण प्रयोग में सफलता मिली है यह दिखाने आप रात के अंधेरे में चुपचाप आकर जरूर रासायनिक खाद खेत में छिड़क गये होंगे। सिर्फ पानी बदलने से सफलता थोड़े ही मिली है। भला मिलती भी कैसे?"

सावेजीने तब लोगों को विश्वास हो, इस तरह से समझाया "आखिर मुझे क्या पड़ी है कि मैं अपने पांव पर खुद कुल्हाडी मारूं। अगर रासायनिक खाद छालकर ही सफलता मिली है तब इसमें भी मेरा ही फायदा है क्योंकि उसके बहाने मेरे पास जो खाद की एजेंसी है, कम–से–कम

उसकी खाद की बिक्री तो बढ़ जाएगी। फिर क्यों मैं अपना ही नुकसान करूं? ओर हाँ! मैं तो गांधीजी के 'सत्यमेव जयते' के सिद्धांत को ही मानता हूं। इसलिए मैं कसम खाकर कहता हूं कि यह सफलता केवल पानी बदलने से ही मिली है।"

इतना कुछ कहने के बावजूद जाने क्यों मित्र–मंडली मानने को कतई तैयार नहीं थी। मगर सावेजी की सच्चाई सफलता के रूप में अब सामने आ गई थी। इससे प्रेरित होकर वे शेश सारी क्यारियों का पानी बाहर निकालकर फेंकने लगे थे ओर उन सभी में ताजा पानी भरने लगे थे। इस प्रकार उन्होंने धान का अच्छा उत्पादन हासिल किया था।

सेन्द्रिय धान

1954 में सावेजी को सब्जी और धान की खेती से तगड़ा मुनाफा हुआ था। जिससे उन्होंने पास की दो एकड़ जमीन खरीद ली थी। सावेजी के पास अब खुद की साढ़े चार एकड़ जमीन हो गयी थी। और उन्होंने सोच रखा था कि दूसरे साल बगैर रासायनिक खाद के धान की खेती करेंगे। पर अंदर ही अंदर कहीं डर भी रहे थे कि यादि खान न डाला ओर असफलता मिली तो? इसलिए इस बात को ध्यान में रखकर उन्होंने आध ाा–आधा एकड़ जमीन के दो विभाग प्रयोग करने के लिए रखा। एक भाग में सेन्द्रिय खाद से और दूसरे भाग में रासायनिक खाद से धान की खेती की। शेष जमीन पर वही पुरानी खेती–पद्धति से धान रोपा ताकि नुकसान से कुछ तो बचा जा सके।

सेन्द्रिय खाद के रूप में सावेजी ने सिर्फ गोबर का ही उपयोग किया था। पहले भा की क्यारी में उन्होंने खरपतवार (घूर–निंदवन) बिलकुल ही नहीं किया था। बस बार–बार क्यारी का पानी बदलते रहे थे। दूसरे भाग में उन्होंने रासायनिक खाद से अपने पूर्व परिचित तरीके से ही खेती की थी। धान की फसल लगाने से लेकर काटने तक का सारा हिसाब लिाकर रखा था ताकि पता चले कि सेन्द्रिय खाद से कितना और रासायनिक खाद से कितना उत्पादन हुआ। एक दिन सावेजी जब अपने परिवार के साथ हिसाब करने बैठे तो स्वयं ही नहीं बल्कि सभी लोग चौंक पड़े क्योंकि सेन्द्रिय खाद से तैयार किया गया धान, रासायनिक खादवाले धान से कई तरह से बेहतर साबित हुआ। इस सच्चाई को निम्नलिखित आंकड़ों के जरिए भी कहीं बेहतर तरीके से जाना जा सकता है :–

	सेन्द्रिय–पद्धति	रासायनिक–पद्धति
(1) उत्पादन (अंदाजन)	50 किलो	100 किलो
(2) आमदनी (अंदाजन)	50 रूपये	100 रूपये
(3) जुताई, खाद, पानी दवा, खरपतवार आदि में खर्च	10 रूपये	80 रूपये
(4) मुनाफा	40 रूपये	10 रूपये

(5) स्वाद	मीठा	बेस्वाद
(6) जहर की मात्रा	बिलकुल नहीं	ज्यादा

उस वक्त रासायनिक खाद के उत्पादन के मुकाबले सेन्द्रिय खाद का उत्पादन 50% कम हुआ, पर मुनाफे की रकम दुगनी थी। अतः कहा जा सकता है कि जिस कृषि–पद्धति के उत्पादन से किसानों को फायदा हो और अधिक–से–अधिक पौष्टिक फसल हो, सही मायने में वही कृषि–पद्धति बेहतर है। रासायनिक खादवाली कार्य–पद्धति में खाद, दवाइयां बेचनेवाले और ट्रैक्टर से जोतनेवाले के पास घर के पैसे भी गये। दिन–रात की मजदूरी और अन्य मेहनत की हमारी आमदनी के पैसे भी दूसरों की तिजोरी में गये, सो अलग। इस तरह सेन्द्रिय खादवाली कृषि–पद्धति का मतलब हुआ कि उत्पादन कम पर बगैर नुकसान और कम मेहनत से फायदा कहीं ज्यादा। सावेजी का विश्वास मजबूत होते ही आधुनिक कृषि–पद्धति का पर्दाफाश भी हो गया। (मगर आज सेन्द्रिय खेती की नई खोजों से उत्पादन कम नही होता बल्कि अधिक मिलता है।)

सावेजी ने अब यह सोचना शुरू किया कि सेन्द्रिय कृषि–पद्धति से ज्याद पैदावार कैसे प्राप्त हो? तब सावेजी को उन आदिवासियों की कृषि–पद्धति याद आयी जो अनपढ़ होने पर भी खुद की सूझ–बूझ से धान की फसल के बाद चने मूंग आदि की खेती करते थे। ऐसा वे क्यों करते थे? इस बात की उन्हें कोई जानकारी नहीं थी, बस वे वर्षो से चली आ रही परम्परागत कृषि को अपनाकर अपना काम करते थे (हैं)। आदिवासियों की पुरानी कृषि–पद्धति के कई रहस्य एक दिन सावेजी ने ढूंढ निकाले, जैसे–ध ाान की फसल के लिए आदिवासी ज्यादातर ऐसी जगह पसंद करते थे, जहां पानी अक्सर बहता हो। अगरउस प्रकार की जगह न भी मिले तो वे फसल की क्यारी में मछली पालन जरूर करते थे। और जैसे ही क्यारी के पानी में मछली की ाल से किसी तरह का फर्क दिखा कि वे क्यारी का पानी तुरंत बदल डालते थे क्योंकि मछली के तड़फडाने का मतलब था पानी में ऑक्सीजन (प्राणवायु) कम हो जाना। इस तरह धान की फसल और मछली को ताजा ऑक्सीजन (प्राणीवायु) मिल जाता था।

आपने भी किसी मछली घर में देखा होगा कि जिस फिशटैंक में मछलियां होती हैं उसमें नीचे की ओर से हवा के छोटे–छोटे बुलबुले बाहर निकलते हैं, जो उनके सांस छोडने की प्रक्रिया को दर्शाते हैं। यानी मछलियां पानी में ही सांस लेती हैं, तभी तो छोड़ती हैं। अतः अब मैं एक लेखक या एक विचार के तौर पर कह सकता हूं कि चावल की फसल के लिए पानी बदलने की सुविधा अगर न भी हो तब भी मछली पालन जैसा फसल में प्राणवायु प्रदान करके, एक छोटा–सा प्रयोग करके देख सकते हैं। (फसल में हवा के बुलबुले बाहर निकालकर)

सावेजी ने आदिवासियों की तरह धान के बाद दाल की फसल उगाने की गुप्त बांते भी ढूंढ निकाली। क्योंकि उन्हें मालूम था कि धान की खेती के बाद जमीन के जितने भी उपजाऊ सत्व–तत्व होते हैं वे सब कम हो जाते हैं। इसलिए पुनः जब धान की खेती की जाए, तो उसे वे सारे पोषक तत्व प्रदान करने के लिए दहलनी फसल (जैसे–चना, मूंग, मसूर आदि) की खेती जरूरी है। ऐसी फसलें तीन पत्तियोंवाली होती हैं जो हवा से नाईट्रोजन प्राप्त कर अपनी जड़ों के द्वारा जमीन में गड्डान बनाकर इसे सुरक्षित रखती हैं। मूंग जैसी फसल का उत्पादन लेने के बाद हम देखते हैं कि कई छोटे–छोटे पौधे खेतों में ही रह जाते हैं, जिनसे वह पदार्थ खेतों को प्राप्त होता है। आदिवासी वही सेन्द्रिय पदार्थ अपने मवेशियों को खाने के लिए छोड़ देतें खेतों में जिसके फलस्वरूप जमीन को गोबर और मूत्र भी मिल जाता था। बारिश के समय में ये सारे सेन्द्रिय तत्व सड़कर गल जाते हैं। खेतों में रहनेवाले केंचुओं जैसे जीव इस सड़े हुए पदार्थ का सेवन करके इसे खाद में रूपांतरित कर देते हैं जो धान की खेती के समय उर्वरता प्रदान करती है। यह कारण है कि आदिवासियों को हर साल एक समान उत्पादन मिलता था (है)।

ऐसी ही कृषि–पद्धति का उपयोग सावेजी ने भी करके देखा था। जिस आधा एकड़ खेते में उन्होंने सेन्द्रिय पदार्थ का उपयोग करके धान की फसल उगाई थी, उसी में सब्जी के बजाय दाल की फसल उगाई और अच्छा उत्पादन प्राप्त किया था। सावेजी दाल की फसल के बाद आदिवासियों की तरह खेत में अपने पशुओं को चरने छोड़ देते थे। इस प्रकार खेत को तीन माह का विश्राम मिल जाता था।

भविष्य में किसी भी तरह के नुकसान से बचे रहने के लिए सावेजी प्रयोग के साथ–साथ सुरक्षा भी रखते थे। यही कारण था कि एक तरफ तो वे सेन्द्रिय कृषि–पद्धति का प्रयोग करने में लगे थे, वहीं दूसरी तरफ अन्य खेतों में आधुनिक तरीके से सब्जी की खेती कर आगे बढ़ते थे। इस तरह उनकी उस जमीन से, जिस पर रासायनिक खाद प्रयोग न करने का महज दूसरा ही साल था, आंतरिक उर्वरता के कारण, उस दूसरे साल भी काफी

अच्छा उत्पादन और आमदनी हुई। सावेजी की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही है कि वे मात्र अपनी जमीन की ही नहीं, बल्कि अपने बड़े भाई के बगीचे और केशव भाई के खेतों की भी देखभाल किया करते थे। इस तरह उन्हें हर तरह की कृषि का एक साथ अच्छा अनुभव भी प्राप्त होता रहता था।

1955 में सेन्द्रिय पदार्थ के उपयोग का वह केवल दूसरा ही साल था और सावेजी को धान का अच्छा उत्पादन भी प्राप्त हुआ था। इस कारण उन्होंने सेन्द्रिय–पद्धति में धीरे–धीरे ही आगे बढ़ने की सोची। जब काफी अनुभव प्राप्त हो गये और विश्वास मजबूत हुआ, तो उन्होंने आधा एकड़ जमीन में और आधा एकड़ जमीन जोड़ दी। तीसरे साल सावेजी ने पूरे एक एकड़ में धान की खेती की और सफल हुए। ठीक उसी तरह, जिस तरह उन्होंने सोचा था। मैं यहां यह बता दूं कि जिस आधा एकड़ में सावेजी ने आदिवासी कृषि–पद्धति को अपनाकर दहलनी फसल की खेती की थी वहाँ (सेन्द्रिय–पद्धति से) उत्पादन में 10% की वृद्धि हुई थी।

इन तमाम बातों के बावजूद सावेजी के दिमाग में हमेशा एक बात कौंधती थी वह थी गेहूं के बारे में। क्योंकि उनके घर में जिस गेहूं का उपयोग खाने के निमित्त किया जाता था वह बाजारसे खरीदा जाता था। इसलिए उस गेहूं से वह स्वाद, सुगंध नहीं मिल पाता था जिसे वे जवानी के दिनों में पाते थे। इसका उस गेहूं से वह स्वाद, सुगंध नहीं मिल पाता था जिसे वे जवानी के दिनों में पाते थे। इसका एक कारण यह है कि आज पूरे भारत में किसानों ने आधुनिक कृषि को स्वीकार कर लिया है। इस आधुनिक कृषि से भले ही चार गुना ज्यादा उत्पादन प्राप्त होता हो, मगर कीमत भी तो कई गुना चुकानी पड़ती है। साथ ही साथ जिस गुणवत्ता की हम अपेक्षा करते हैं वह तो एक जहर के करूप में तब्दील हो चुकी है, जिसे खाने के बाद एम न एक दिन तो असर होगा ही। यही कारण था कि सावेजी ने गेहूं की खेती करने के बारे में सोचा लेकिन जमीन और पर्यावरण असके अनुकूल नहीं थे । अतः उन्होंने गुजरात के कई जिलों में पहले गेहूं की फसल और उत्पादन लेने का अवलोकन किया। उसके बाद अपनी जिस जमीन को वह तीन माह का विश्राम देते थे अब असे विश्राम न देकर वहॉ सेन्द्रिय खाद से गेहूं की फसल और उस के बाद दलहनी फसल उगाने का विचार किया था। यह विचार सावेजी के जीवन में महत्वपूर्ण उद्देष्यों में से एक था।

सेन्द्रिय गेहूं

'अगर फसल जितने विस्तार में अगायी गयी है उतने विस्तार को पानी से सींचा जाये तो अनुपयोगी घासों के उगने की संभावना कम होगी।' इस प्रकार उन्होंने धान की फसल के बाद चने, मूंग की खेती न करके गेहूं की खेती आरंभ की। गेहूं की खेती के लिए सावेजी ने आधा एकड. खेत में तीन फुट चौडी और पंद्रह से बीस फुट लंबी कई छोटी–छोटी क्यारियां बनाई।

अब तक उन्होंने कभी बाजार से बीज की खरीदारी नहीं की थी। जहां तक धान और सब्जी की खेती की बात है तो उसके लिए पुराने बीज का ही उपयोग करते आये थे। आज के जमाने में संकरित (हाईब्रिड) बीजों की ही ज्यादा मांग है जबकि अससे किसानों को काफी नुकसान हुआ है। पहले ऐसा कतई नहीं था। पहले तो किसान चाहे कैसी भी परिस्थिती हो, अनाज बेचने से पहले उत्तम प्रकार के बीज अवश्य संभालकर रख लेता था। वे उत्तम बीज किसान की भूमि और वातावरण के हर प्रकार से अनुकूल देशी बीज ही होते थे। एक साधारण किसान कम–से–कम दो बार नई फसल उगा सके, इतने बीज घर में संभालकर रखता था ताकि अगर किसी कारणवश एक फसल नष्ट भी हो जाती, तो उस संग्रहित बीज के व्दारा पुनःखेती की जा सके। कभी–कभार तो ऐसी परिस्थिति भी आ जाती थी कि किसी किसान के पास बीज ही नहीं होता, तो ऐसे में गांव के दूसरे किसान उसे भाई समझकर मुफ्त में या उधार के तौर पर बीज अवश्य संभालकर रख लेता था। वे उत्तम बीज किसान की भूमि और वातावरण के हर प्रकार से अनुकूल देशी बीज घर में संभालकर रखता था ताकि अगर किसी कारणवश एक फसल उगा सके, इतने बीज घर में संभालकर रखता था ताकि अगर किसी कारणवश एक फसल उगा सके, इतने बीज घर में संभालकर रखता था ताकि अगर किसी कारणवश एक फसल नष्ट भी हो जाती, तो उस संग्रहित बीज के व्दारा पुनःखेती की जा सके। कभी–कभार तो ऐसी परिस्थिती भी आ जाती थी कि किसी किसान के पास बीज ही नहीं होता, तो ऐसे में गांव के दूसरे किसान उसे भाई समझकर मुफ्त में या उधार के तौर पर बीज दे देते थे। यानी ऐसा कहा जा सकता है कि आज की तरह पहले नकली विदेषी संकरित बीज का व्यापार कभी नहीं था।

1956 में सावेजी अपनी जिन्दगी में पहली बार एक विश्वासपात्र

किसान के पास से गेहूं के बीस किलो उत्तम बीज खरीदकर लाए थे। आध ाा एकड जमीन, जो गेहूं की खेती के लिए तैयार की गयी थी, सावेजी ने एक पंक्ति में नौ–नौ ईंच की दूरी पर थोडा सूखा अन्त तक कुल चार बार ही पानी दिया। पर ताज्जुब यह कि सिर्फ सेन्द्रिय खाद से गेहूं की पैदावार काफी अच्छी हुई थी।

गेहूं के बाद उन्ही खेतों में सावेजी ने मूंग की खेती की थी। मूंग को भी चार बार ही पानी दिया गया था। मूंग की पैदावार के दौरान दो फसल तो ले चुके थे, पर तीसरी बार मूंग तोडकर लेने में वह असफल हुए। क्योंकि तब तक बरसात शुरु हो चुकी थी। इसलिए उन्होंने धान की खेती की तैयारी शुरु कर दी। इस तरह से देखा जाये, तो सावेजी एक ही साल में धान, गेहूं और मूंग का उत्पादन प्राप्त करने में सफल हुए थे।

सेन्द्रिय खाद से चावल उगाने का वह तीसरा (1956) साल था। उस साल हर साल की अपेक्षा कम–से–कम 10% ज्यादा पैदावार हुई थी। इस सफलता को देखते हुए उन्होंने और आधा एकड जमीन को इस प्रयोग में शमिल कर लिया। इस प्रकार आधा एकड के तीन भाग हो गये थे। अब प्रयोग में सावेजी ने गोबर के साथ–साथ सेन्द्रिय पदार्थ का उपयोग करने को सोच रखा था। गांव के घरों से फेंका हुआ और खेतों से बाहर निकाला गया कूडा–कचरा, जो यूं ही पडा रहता था, वैसे सेन्द्रिय पदार्थ को बैलगाडी में ढो–ढोकर उन्होने अपने खेतों में बिछा दिया और उसे सडाने देने के लिए खेतों को पानी से सींच दिया। 1956 में सावेजी ने अपने प्रयोग में मात्र इतना ही बदलाव किया था और उस वर्ष भी बिना रासायनिक खाद के उत्तम धान का उत्पादन प्राप्त किया था। उस वर्ष इस बदलाव के कारण 25% से 30% अधिक उत्पादन हुआ था। सेन्द्रिय पदार्थ (कूडा–कचरा) से उत्पादन बढता है, इस तथ्य को सावेजी ने और अच्छे तरीके से सिध्द करने के लिए सोचा और अन्य फसलों के प्रयोग और शोध में लग गये।

सब्जी से भरपूर कमाई

सावजी का उद्देश्य नये–नये प्रयोगों व्दारा कृषि से अच्छी आमदनी लेनी थी। इसलिए उन्हें सब्जी के खेती का काम ज्यादा अच्छा लगा। वैसे भी किसान समाज में यह मशहूर है कि 'सब्जी की खेती से घर में पैसों की खनाखन बरसात होती है।' सावेजी ने इस मशहूर कहावत पर तन–मन से अमल भी किया। शिक्षक की नौकरी के दौरान सम्पूर्ण ध्यान कृषि में न लगा पाने के कारण भले ही उन्हें निर्धारित उत्पादन नहीं मिल पाता था पर बाद में लगन और संघर्ष के जरिए ऐसी संभावना अवश्य विकसित हुई कि ध ीरे–धीरे उन्हे जिस रुप में सफलता चाहिए थी, ठीक उसी रुप में प्राप्त होने लगी।

सेन्द्रिय कृषि–पध्दति के कारण ज्यादातर काम धान और दाल (दलहनी) की फसल में सिर्फ पानी–सिंचन ही था। सावेजी को यूं ही बेकार बैठे रहना कभी रास नहीं आया। यूं तो वे अन्य फसलों के लिए प्रयोग करते ही रहते थे। पर उन्हें सिर्फ प्रयोग की आमदनी पर निर्भर रहना उचित नहीं लगता था। इसी कारण से वह सब्जी की खेती में अथक प्रयास और मेहनत से काफी अच्छी आमदनी कर लेते थे, इतनी अच्छी कि वही आमदनी के रुपयों से जमीन खरीदकर अपने कार्यों का विस्तार किया था।

धान और दाल की फसल के लिए उन्होंने जमीन के तीन हिस्से अलग कर रखे थे और शेष हिस्सों में, जब उनका आत्मविश्वास काफी बढ गया तब, उन्होंने एक व्यापारी की दृष्टि से सब्जी की खेती करने की सोची और हर प्रकार की (पूर्व) तैयारी में जुट गये। अंततः सावेजी को सफलता मिली, वह तो मिलनी ही थी। सचमुच, सच्चा कर्मयोगी कभी नहीं थकता; कभी नहीं टूटता; कभी नहीं हारता। तब सावेजी सब्जी की खेती में भला कैसे पीछे रह सकते थे?

सन् 1957 का कटु अनुभव

यहॉ सरकार और विदेशी व्यापारियों की मिली–भगत का एक ठोस प्रमाण बताना चाहूँगा। आज बाजार में हर दुकान में आलू में आलू से बनी वेफर मिलने लगी है। हवा भरे 30 ग्राम वेफर 15 रु. में बिकती है। यानी कि किलो वेफर के हुए 500/– ये दाम तो काजू, बादाम के भी नहीं! अब जरा लागत और मुनाफा देखो जो 3 किलो आलू से बनी 1 किलो वेफर का है।

3 किलो आलू की कीमत	10/– रु.
तेल की	10/– रु.
मजदूरी	10/– रु.
पॅकिंग में प्रयुक्त थैली की कीमत	1/– रु.
घूस और अन्य फुटकर खर्च	10/– रु.
कुल लागत	41/– रु.

भारतीय व्यापारी आलू के वेफर 70/– से 100/– रु. प्रति किलो तक बेचते है, जबकि विदेशी व्यापारी 500/– रु. में! मैने सिर्फ उदाहरण के लिए 3 किलो आलू की 10/– रु. लागत मानी है, असल में तो किसान को इसके आधे दाम भी नहीं मिल पाते। यही हालत है आलू से बनाये हुए वडा (आलू टिकिया) और डबल रोटी (पाव) के बारे में। हमारे भाई उसे बेचते है 5/– रु में, जबकि मेकडोनाल्डस जैसी अनेक विदेशी संस्थाए उसी का नाम बरगर बताकर बेचते है 35/– रु. में!

वैसे तो किसी भी बाजार या मंडी में उत्पादन का भाव कम–ज्यादा होता ही रहता है, जो स्वाभाविक ही है मगर कभी–कभी जीवनावश्यक खाद्य–पदार्थ में उतार–चढाव इस हद तक कम हो जाता है कि किसानों की लागत से आमदनी कहीं कम होती है, जिसके कारण कितने ही किसान आत्महत्या तक कर लेते हैं। अन्य कितने कर्ज में लगातार डूबते चले जाते हैं और एक दिन गांव छोडकर शहर की तरफ चल देते हैं। अखबारों में इस प्रकार की कई बातें हमें आये दिन पढने को मिलती रहती हैं। इसके बावजूद किसानों के बीच एकता नहीं है जिसका पूरा फायदा व्यापारी उठाते हैं। सब्जी की खेती में काफी नुकसान भुगतने के बाद सावेजी ने किसान–समाज की इस बात को मानने से साफ इन्कार कर दिया की 'सब्जी लगाने से घर में पैसों की खनाखन बरसात होती है।' वे अब कृषि के किसी अन्य क्षेत्र में जाने की सोचने लगे थे।

ऐसा प्रायः देखा गया है कि जबतक आमदनी होती रहती है, तब तक, बहुत काम ऐसे व्यापारी होते हैं, जो हिसाब करने बैठते हैं। मगर सरकार को तो साल की समाप्ति के बाद हर हालत में हिसाब चाहिए ही। इसलिए मजबूरन उन्हें हिसाब करने बैठना ही पडता हैं। आर तभी पता चलता है कि असल में कितना फायदा हुआ या कितना नुकसान। नुकसानका कारण ढूंढकर कुछ व्यापारी ऐसे भी होते हैं जो हर माह अपने खर्च का हिसाब करते हैं और अपनी कमजोरियों को सुधारकर नुकसान से बचे रहते हैं।

मगर ज्यादातर किसान समाज कृषि में अपनी लागत का हिसाब नहीं रखते क्योंकि कृषि से होनेवाली आमदनी के लिए कोई सरकारी कर नहीं देना पडता। अतः बहुतसे किसानों को यह मालूम ही नहीं पडता कि कितना फायदा हुआ या कितना नुकसान! मगर सावेजी, जो ठहरे पढे–लिखे इंसान, सब्जी की खेती में कितना नुकसान और फायदा हुआ यह जोडने बैठे। यूं तो उन्होंने सेन्द्रिय कृषि से धान की फसल उगाई थी उससे उन्हें आधुनिक कृषि का मायाजाल कुछ–कुछ समझ में आया था मगर फिर भी उन्होंने सब्जी से अधिक मुनाफा पाने के लालच में रासायनिक खाद का दामन नहीं छोडा था। सावेजी को अत तो सब्जी के बारे में काफी अनुभ्झव हो चुका था, जिस के आधार पर हिसाब उन्होंने जोडकर देखा तो पाया कि "सब्जी में पहली बार जो उत्पादन मिला था उतना ही उत्पादन हर बार लेने के लिए 15% से 20% ज्यादा रासायनिक खाद, दवाइयां और पानी की मात्रा बढ़ता गया तो पांच साल तक उत्पादन तो वही रहेगा लेकिन रासायनिक खाद में खर्च की मात्रा 100% हो जायेबी। फिर मुझे कृषि से क्या फायदा होगा, तब तो शायद मुझे कृषि छोडकर भीख मांगनी पड़ेगी।"

उस समय सावेजी की यह गणना अंततः सच साबित हुई। आज आप किसी भी किसान से (जो रासायनिक खाद का उपयोग करनेवालों में से है और आधुनिक कृषि से जुड़ा हुआ हैं) पूछें, तो वह यही कहेगा कि "भाई साहब! पहले मैं रासायनिक खाद के एक बोरे का इस्तेमाल करता था, पर आज उतने ही उत्पादन के लिए एक बैलगाड़ी रासायनिक खाद का उपयोग करना पडता है फिर भी अपेक्षित उत्पादन नहीं मिलता। मैं आधुनिक कृषि से सचमुच तंग आ चुका हूं और अब इसे छोड़ देने में ही अपनी भलाई समझता हूं। पर जीविका का काई भी किसान को तो उसकी

जानकारी नहीं। यहां तक कि सरकार, कृषि वैज्ञानिक या कोई अन्य सलाहकार को भी यह जानकारी नहीं। अगर वे जानते भी हैं, तो किसी साजिश के कारण बताना नहीं चाहते। ऐसे में हम किसान करें भी तो आखिर क्या करें? बस इस प्रश्न का उत्तर पाने की राह हंम देख रहे हैं।"

किसान का यह कहना एकदम सही है, क्योंकि सरकार उनके साथ षड्यंत्र ही कर रही है। वह भला क्यों सच्चाई बताने लगी? अगर बतायेगी तो उसी निजी पूंजी से स्थापित रासायनिक खाद के कारखाने क्या बंद नहीं हो जायेंगे? अपना इतना बड़ा नुकसान कौन मुर्ख है जो करके लेगा? और सच्चाई का दामन पकड़ेगा? सत्ता पर काबिज मंत्रियों और सरकारी अधिकारियों का धंधा तो तब ही रुक जायेबा। फिर उनके रियायती दर के नाम पर किसानों को ठगने का जो ढोंग है उस का क्या होगा? इस तरह तू भी चूप, मैं भी चूप के जरिए सत्य छुपाने की योजना ही चलाई जा रही है। अब किसान–समाज के एकजूट होने का समय आ गया है। उन्हें अपने बेहतर उत्पादन के प्रति जागृत होना ही पड़ेगाः ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जागृत हुए थे भास्कर सावेजी।

सावेजी, जो सब्जी का वार्षिक हिसाब कर रहे थे, जांच–परख के बाद इस निर्णय पर पहुंचे थे कि 'धरती माता को जहरीले खाद और दवाइयों से मुक्त करने के लिए मुझे धीरे–धीरे आधुनिक कृषि को छोड़ना होगा। मुझे सेन्द्रिय कृषि–पध्दति से धान की फसल से एक अनुभव मिला था कि जमीन की उर्वर – शक्ति वापस लाने में थोडा समय लगता ही है। अगर मैं यूँ ही आधुनिक कृषि छोड़ डूं और मेरा उत्पादन और आमदनी कहीं घट जाये तो? तो जल्दबाजी के बजाय, जब तक कोई दूसरा विकल्प नहीं मिलता, तब तक आधुनिक कृषि के साथ ही जुड़े रहने में ही अकलमंदी है।'

सन् 1957 के कटु इस अनुभव के बाद 1958 में धान (चावल), गेहूं, चना, मूंग की फसल में सम्पूर्ण रुप से सेन्द्रिय खाद का उपयोग करते हुए और सब्जी में रासायनिक खाद की मात्रा कम करते हुए वे अपने प्रयोग में आगे बढे।

किसान भाई! सावेजी जैसा कटु अनुभव से बचने के लिए मेरा एक व्यापारी अनुभव बताना चाहता हूँ। हमं बार–बार सरकार से हर बात की अपेक्षा क्यों रखते हैं? असल में सरकार को तो हमें सहायता करके मजबुत बनाना चाहिए। क्योंकि सरकार ने देश के फायदे के लिए कई अन्य योजना भी बनाई है,

बाग़वानी

भास्कर भाई ने धान की फसल के लिए आधा–आधा एकड़ की प्रत्येक क्यारी बना रखी थी। चार फुट चौड़ी और दो फुट ऊंची मेड़ (दीवार) पानी भरे रहने के लिए बना रखी थी। धान की फसल काटने के बाद उन्हीं क्यारियों में, जिनमें सब्जी बोई जाती थी, जरूरत के हिसाब से पानी मिलता रहे इसलिए मेंडों के बीच से डेढ़ फुट चौड़ा और नौ ईंच गहरा नाला भी बनाया था। मेड़ों के बाकी हिस्से खाली थे जिन पर मिट्टी, पानी और सूर्यप्रकाश के कारण घास उग जाती थीं। सावजी को इस घास से काफी परेशानी होती थी। तब उन्होंने सोचा कि क्यों न आदिवासीयों की तरह मेड़ों पर सब्जी उगायी जाये ताकि जमीन का सम्पूर्ण उपयोग हो सके। इसतरह अतिरिक्त आमदनी तो बढ़ेगी ही साथ ही साथ वहॉ घास भी नहीं उगेगी। यानी इसतरह की मिश्र कृषि कें ही भलाई है। अंततः उन्होंने अपनी मिश्रित कृषि में थोड़ा बदलाव किया और मेड़ों को चौडा किया जायेबा और धान की खेती को सीमित। उन्हे मालूम था कि इन्हीं योजनाओं के तहत शायद वे अपनी आमदनी बरकरार रखते हुए पारसियों की तरह धीरे–धीरे बगीचे की और जा सकेंगे।

सावजी ने बड़े भाई के बगीचे की पूरी तरह स्वयं देखभाल की थी उससे उनका अनुभव बढ़ा था। क्योंकि सागर से मिले नारियल के बगीचे विकसित करने संबंधी ढेरों जानकारियॉ सावेजी को पहले से ही थी। मुझे जब सावेजी फसल और सब्जी को छोड़कर बगीचे की और जाने के फायदे बता रहे थें तब मैने उनसे सवाल किया था "क्या किसान इतने नासमझ और मूर्ख हैं कि जिस तरह सब्जी–मंडी का अध्ययन किया था, उसी तरह फल–मंडी का क्यों नहीं किया ? आज भी किसान सिर्फ सब्जी और अन्न की खेती के साथ ही क्यों जुड़ा हुआ है?"

हंसते हुए सावेजी ने तब कहा था, "आप जैसे धनवानों और पूंजीपतियों की ही मेहरबानी के कारण। और सरकारी योजना, षडयंत्रों और कृषि–पध्दति के भटका देनेवाले ज्ञान के कारण। यह मत भूलिए कि किसानों को अंग्रेजों ने तो पहेले ही लूट लिया था, थोड़ा कुछ जो बचा उसे हमारी सरकारी योजनाओं ने लूंट लिया है। सभी जानते है कि भारतीय किसान किन किन कारणों से बोण (कर्ज) तले दबा हुआ है। ऐसे में बेचारे

किसान के पास बचा ही क्या है कि वे बगीचे की और जाने को सोचें। बगीचा लगाने की क्षमता तो सिर्फ धनवानों, बड़े जमीन के मालिकों और मल्टीनेशनल कम्पनियों के पास है। बगीचे के बारे में यह कहावत मशहूर है कि 'इसे बाप लगावे तो बेटा खावे।' यानी जब बाप कोई पौधा लगाता है तो उसके पेड़ बनने, फलने–फूलने में सात से दस साल का समय लगता है। सात से दस साल तक मेहनत और खर्च का भार उठाना पड़ता है तब कहीं जाकर फल मिलता है। और वह तभी जबकि वह बढ़िया मातृवृक्ष से (कलम) पौधा बना हो, वरना इतने दिनों की देखभाल और खर्च के बाद भी पौधा फलेगा–फुलेगा जरूर मगर पेड़ से उपज नहीं मिलेगी। ऐसे में बेचारे किसान क्या करेंगे? रोयेंगे या मर जाना बेहतर समझेंगे? आखिरइतने दिनों तक जोखिम, श्रम, पैसा, धैर्य और साहस कौन किसान रख पायेगा? कि उसका गुजारा होगा कैसे? ये स्पश्अ है कि ये काम सिर्फ धनवान, बड़े जमीन के मालिकों का ज्यादा है। बल्कि उनके लिए ही सोची–समझी गई यह योजना बनाई है। किसान समाज अन्न और सब्जी के उत्पादन का जोखिम उठा सकता है क्योंकि असमें तीन से पांच माह के अंदर ही आमदनी का परिणाम सामने आ जाता है। अगर किसी कारणों से वह फसल नष्ट हुई तो उसे दूसरी बार उगाने का जोखिम ले सकता है पर बीचे में सफलता या असफलता का परिणाम तो वर्षोबाद ही मालूम पड़ता है। अब आप ही बताइए कि क्या छोटे किसान यह जोखिम उठा सकते हैं?"

किसान समाज का बगीचे की और न जाने का कारण मैं अब अच्छी तरह से समझ चुका था क्योंकि सावेजी ने जितनी भी बातें कही थीं वे उनके अनुभव के बाद निकली थीं और जो पूरी तरह सच थी। वर्ष 1957 में जब सावेजी ने बगीचा लगाने की बात सोची तब तो वह एक प्रयोगवीर का प्रथम चरण था। बगीचे पर सम्पूर्ण रूप से नजर रखने और अपने काम को समय से पूरा करने के लिए, सावेजी ने 1957 में एक छोटा–सा घर (झोपड़ी) बनाकर, अपने पूरे परिवार के साथ खेतों में ही रहने लगे थे।

उस वक्त सावेजी को बगीचे के बारे में जो जानकारी थी उसी के आधार पर खेतों की मेड़ों पर नारियल और चीकू के पौधे लगाने की सोची। अनुभव को एक दिन सावेजी कुछ इस तरह रखा "अगर फल देनेवाले दो वृक्षों के पत्ते एक–दुसरे को छूने लगें तो फल नहीं आते, या कम आते हैं। पत्तें पेड़ के रसोईघर होते हैं, उसे अगर सूर्य की रोशनी पूरी तरह से न मिले तो वहां फिर खाना कैसे तैयार होगा? इसलिए पेड़ों के अधिक फलने–फूलने के लिए दो पेड़ों के बीच योगय अंतर रखना ररूरी है। तब मैंने नारियल के दो पौधों के बीच 25 फीट और चीकू की दो कलमों के बीच 30 फीट का अंतर रखने को साचा। पर मेरे खेतों की लंबाई–चौड़ाई कम–ज्यादा होने के कारण अंतर रखने को साचा। पर मेरे खेतों की लंबाई–चौड़ाई कम–ज्यादा होने के कारण यथोचित सफलता मिली नहीं परन्तु इसके बावजूद मैंने इसका हल निकाल लिया था। वह यह था कि जहां 25 फीट का सही अंतर मिला, वहां तो नारियल के पौधे और जाहां दो मेडों के बीच 20 फीट से कम का अंतर मिला वहां चीकू की कलम लगाई थी। नारियल और चीकू के पौधों को साथ–साथ लगाने का कारण यह था कि नारियल में सिर्फ तना नीचे रहता है और पेड़ के ठीक विपरीत और कम ऊंचाई पर ही फल देना शुरू कर देता है। इस तरह दोनो पौध ों को सूर्य की समुचित रौशनी मिल जाती है।"

चार फीट चौड़े बांध (मेड़) के बीच में पानी के लिए जो नाला बना हुआ था, उसी के बीच पेड़ लगाना तय था पर कुछ इस तरह कि पानी बगैर रूके पौधों को सींचता रहे। सावेजी ने नाले को गोलाकार रूप में बनाया था। पौधों को लगाने के लिए उन्होंने तीन–तीन फीट की लंबाई, चौडाई और गहराई के गड्ढे kksns Fks vkSj mllgsa lw Zs dh leqfpr jks'kuh izkIr gks blfy, lcnzg fnu rd tca gh dkscM fn k Fkkf गड्ढ भरने का काम अभी जारी था कि सावेजी के मन में एक बात कौंधी कि दो पौधों के बीच जो 25 फीट का अंतर है उसमें सब्जी लगायी है। पर सब्जी के चार मॉह के उत्पादन के बाद तो वह जगह खाली हो जायेगी और इस तरह बिना उपयोग कई सालों तक यूं ही जमीन पड़ी रहेगी। पानी और सूर्यप्रकाष के कारण वहॉ पर फिर से घास उगती रहेगी। इससे तो बेहतर यह होगा कि कुछ ऐसा सोचा जाए, जिससे उस जगह का भी सदुपयोग हो सके। अब उस नयी योजना के लिए जैन समाज उपयोगी साबित हुआ। जैन लोग हर महीने अष्टमी और चतुदर्शी के दिन भोजन में हरी सब्जी त्याग देते हैं और ज्यादातर अन्न (चावल–दाल) और केला ही खाते हैं। महाराष्ट्र गुजरात राज्य में केले की भारी मांग है। इनका बाजार–भाव भ्ज्ञी अक्सर अच्छा रहता है। इसी के मद्देनजर सावेजी ने दो पौधों के बीच केला लगाने की बात सोची। आठ–आठ फीट की दूरी पर अठराह ईंच के लंबे–चौड़े और गहरे गड्ढें को सेन्द्रिय पदार्थ से भरने के बाद वहां केला (गड्डान) लगाई और सब्जी भी उगाई। इस प्रकार सावेजी ने नारियल के

साथ केले और सब्जी लगाने की अपनी योजना पूरी की। बताई गई आकृति के अनुसार गड्ढों को भरा गया था।

उन्होंने चीकू की दो कलमों के बीच की दूरी 30 फीट की जगह 15 फीट की तय की। और चीकू की दो कलमों के बीच की दूरी का गणित कुछ इस तरह से तय किया कि इस बदलाव के कारण अब दो कलमों के बीच सब्जी के साथ एक केला लगाया जाना संभव हुआ। इस तरह चीकू के पेड़ की यह योजना भी पूरी कर ली गयी।

आकृति के अनुसार पहली मेड़ पर 15 फीट के अंतर पर चीकू हैं। चीकू के बीच में दो केली लगाये गये हैं और पानी के लिए जो नाला है असके दोनों और सब्जी लगाई गई है। दुसरी और तीसरी मेड़ के 25 फीट के अंतर में नारियल लगाये गए हैं। उनके बीच 8–8 फीट के अंतर पर दो केले लगाये गए हैं और नाले के दानों और सब्जी लगायी गई है। वैसे तो नाले का पानी मुख्य रूप से नारियल के लिए था। पर उसका फायदा केले और सब्जी के लिए भी लिया गया। उस तरह बगीचे में हर तरह के पौधों के होने से जमीन हमेशा ढंकी रहती थी और उसकी नमी भाप बनकर उड़ नहीं पाती थी। पौधों की छांव के कारण अनुपयोगी घास के पनपने की परेशानी भी धीरे–धीरे कम होने लगी थी। ऐसा सावेजी की कृषि–योजना के कारण ही संभव हो पाया।

सावेजी ने अपना बगीचा लगाने का काम 1958 तक पूरा कर लिया था। खेती का विस्तार क्योंकि अत तक काफी बढ़ चुका था। इसलिए बीस–बीस घण्टों तक बैठकर रहट (चरखी) चलाते थे और सभी पौधों को सींचते रहते थे। जिस दिन रहट चलाने का काम ठप्प राहता उस दिन वे गांव के फेंके हुए कूडे–कचरे भैंसा–गाड़ी में भरकर खेती के लिए लाते थे। कभी–कभी तो बाजार से गोबर खरीदकर लाते और खेतों की उर्वरता बढ़ाने के प्रयत्न में लगे रहते। जैविक खाद से उसकी उत्तम गुणवत्ता का पता भी चला ने मजबूरन रासायनिक ,खाद का उपयोग भी किया था मगर 30% ही, बाकी तो उसी सेंन्द्रिय पदार्थ, गोबर और गोमूत्र का उपयोग ही ज्यादा मात्रा में किया गया था।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पानी नहीं, नमी चाहिए

सावेजी ने तने के पास गोलाई में जो रिंग बनाई थी, ज्यादा बारिश होने के कारण उसमें पानी भर गया था और कई मेड़ों के बीच का नाला और रिंग टूट चुकी थी। जिस पेड़ के तने की रिंग में पानी भरा हुआ था, वह जमीन नरम होने के कारण पेड़ के तने से कई नई जड़ें निकल आई थी और पत्ते भी पीले पड़ गये थें। जबकि जिस पेड़ की रिंग टूट चुकी थी और जहॉ पानी जमा नहीं हो पाया था, वह हरा–भरा यानी बिलकुल स्वस्थ दिखाई दे रहा था, उसकी नई जड़ों का निर्माण भी नहीं हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि पानी का पेड़ के तनो के पास जमा रहना, उसके लिए उचित नहीं। सावेजी ने दूसरा निरीक्षण किया कि धान के लिए खेतों में जो पानी भरा रहता था उस तक पेड़ की जड़ें कभी नहीं पहूॅची थीं, बल्कि जहां तक उसकी नमी थी, वहीं तक आकर जड़ें वापस मुड़ गयी थीं। तब सावेजी अपने नरीक्षण के जरिए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जैसे मॉ–बाप बच्चों को बड़े जलाशय के पास जाने से मना करते हैं ठीक वैसे ही पेड़ की मॉ उसके बच्चों जैसी अपनी जड़ों को अगर विकास करना ळै तो पानी के पास जाने से मना करती है। इससे यह साबित होता है कि पेड़ों को पानी के बदले सिर्फ नमी चाहिए, क्योंकि इसी में अनका विकास संभव है। इस बात के सबूत पहाड़ों पर खड़े हरे–भरे पेड़ भी हैं। हम जानते हैं कि बाारिश का पानी पहाड़ों पर रूकता नहीं बल्कि बहकर नीचे आ जाता है। इसके बावजूद उनके स्वास्थ्य में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आती। अपने निरीक्षण के दौरान सावेजी ने यह भी सोचा कि तने के पास पानी जमा रहने से जड़े सड़ जाती हैं क्योंकि उन्हें ताजी हवा नहीं मिल पाती। यही कारण है कि पेड़ की मॉ परिवार को बचाने बार–बार नई जड़ों का निर्माण कर–करके थक जाती है। अगर उसकी सारी शक्ति जड़ों के निर्माण और पत्तों के पीलेपन को दूर करने में ही खर्च होती रही तो मॉ के पास फल देने की शक्ति कहां से आयेगी? इस तरह सावेजी ने पूरे विश्व में यह प्रथम खोज की थी कि, 'पानी नही, नमी चाहिए तभी तो हरे–भरे रह सकते हैं पेड़ और उनसे जुड़ा हमारा जीवन।'

सन् 1958 की अपनी अनोखी खोज के आधार पर सावेजी न पेड़ों पर होनवाले अत्याचार को रोक दिया। मेड़ों के बीच में जो पानी के लिए नाला था उसे तुरन्त सेन्द्रिय पदार्थ और मिट्टी से भरने का निर्णय कर

लिया। पर उपयुक्त मिट्टी की समस्या एक बार फिर सामने आ खड़ी हुई क्योंकि पासवाले तालाब में बारिश का पानी भरा हुआ था। तब सावेजी ने पेड़ों के योग्य विकास के लिए सेन्द्रिय पदार्थ और सागर के किनारे से रेत लाकर नाले और रिंग को सम्पूर्ण भर दिया, तसकि जड़ें धान के खेतों में भरे हुए पानी से ही परिवार के लिए नमी और खाद आसानी से पा सकें।

पेड़ों को 'पानी नहीं, नमी चाहिए' के प्रयोग से बगीखे में सावेजी का हौसला, रुची और श्रध्दा काफी बढ़ गई थी। इसलिए उन्होंने अपनी नई खरीदी गयी जमीन पर नये प्रयोग करने की जो योजना बनाई, वह सम्पूर्ण यप से सिर्फ सेन्द्रिय कृषि–पध्दति के जरिए बगीचे को विकसित करने की थी। वैसे इसके पीछे एक ठोस कारण और भी शामिल था। वह यह कि जब वे बड़े भाई के बगीचे की देखभाल करते थे तब उन्हें ऐसे कई अनुभव प्राप्त हुए थे जिसका फायदा व अपने बगीचे के लिए भी उठाना चाहते थे। केरल से आये वैज्ञानिकों के सुझाव के अनुसार रासायनिक खाद से भले ही सब्जी में खूब फायदा मिला था पर उस प्रकार का फायदा पेड़ों (नारियल) से कभी भी नहीं मिल पाया। सावेजी ने यह अनुभ्झव उस वक्त किया था कि जब रासायनिक खाद का उपयोग करने से 100 से 125 का उत्पादन मिलता था और जब उसका उपयोग न करने पर 90 से 100 नारियल का था। देखा जाए, तो बगैर रासायनिक खाद के उत्पादन में भले ही गिरावट आती हो, पर फायदा तो उपयोग न करने मैं ही ज्यादा था, क्योंकि रासायनिक खाद का खर्च जो बचता था। इस ठोस कारण को ध्यान में रखकर सावेजी ने सिर्फ सेन्द्रिय पदार्थ के उपयोग से ही भाई के बगीचे को विकसित करने का निर्णय लिया था। पर उस वक्त प्रयोग के दौरान उनके पास पानी देने का वही पुराना तरीका था। वह था तने के पास रिंग बनाकर उस में पानी भरने का। रासायनिक खाद बंद हो जाने के दो साल बाद उसी पेड़ से नारियल का 100 से 125 का उत्पादन फिरसे मिलने लगा था। वही उत्पादन अब वे सेन्द्रिय पदार्थों के जरिए अपनी नई जमीन पर भी पाना चाहते थे।

मेड़ पर नाले और रिंग को भर देने के बाद केले, चीकू और नारियल का विकास, जैसा उन्होंने सोचा था, ठीक वैसा ही था। धान के खेतो में भरे हुए पानी की नमी से यह हो रहा था। कुछ दिनों में तो केले के पेड़ फलने–फूलनेवाले थे। यह सब कुछ देख–देख सावेजी का आत्मविश्वास पहाड़ की तरह ऊंचा और मजबूत हो गया था। सावेजी एक–से–एक नये प्रयोग करते जा रहे थे, मानो उनकी यात्रा अनंत हो।

सावे पध्दति से सेन्द्रिय बाग

प्रयोगधर्मी सावेजी ने अपनी डेढ़ एकड़ की नयी जमीन को दो हिस्सों में बांट दी। एक हिस्से पर चीकू और दूसरे में नारियल लगाने की योजना बनायी। नीचे दि गई आकृति के हिसाब से प्रथम नारियल के पौध ो लगाने की योजना बनाई :–

इस आकृति में 25 X 25 X 25 = 625 वर्ग फीट में मुख्य रूप से चार नारियल हैं। 25 ईंच की जरा ढ़लानेवाले सभी 18 ईंच की ऊंचाईवाले मेड़ पर नारियल और केला, साथ में मिर्ची, टमाटर, बैंगन आदि सब्जियां है। मेड़ के दोनों तरफ 9 ईंच गहरी और 18 ईंच चौड़ी नाली बनायी गयी है। आकृति में बतायी गयी 36 ईंच की तीन मेड़ों पर कद्दू, लौकी, करेला जैसी बेलवर्ग की सब्जियां हैं। बीच में सिर्फ दो 24 ईंच की मेड़ पर 8–8 फीट के अंतर पर चार केले हैं, और नारियलों के बीच में सिर्फ दो की संख्या में केले हैं। इस प्रकार चार नारियल के 625 वर्ग फीट के अंतर कुल मिलाकर बाहर केलों के पौधे (गड्डान) लगाये गये हैं। बीच में जो 36 ईंच की मेड़ है, उस पर कद्दू का उत्पादन लेने के बाद यूं ही छोड देने की बजाय नारियल से साढ़े बारह फीट का अंतर छोड़कर मेड़ के बीचोबीच सावेजी ने चीकू की तीन कलमें लगाई। चीकू कलम से दोनों तरफ एक–एक फीट का अंतर रखकर नजदीक से पानी देने की व्यवस्था की गई थी।

सावेजी ने अब चीकू लगाने पर ध्यान देना शुरू किया। यूं तो सामान्य तौर पर चीकू 40 फीट X 30 फीट की दूरी पर लगाये जाते हैं। परंतु उन्होंने चीकू की कलम 20 फीट X 15 फीट के अंतर पर लगाई। आकृति के मुताबिक कुल मिलाकर 9 चीकू के पौधे लगाये गए। मुख्य रूप से 40 फीट X 30 फीट के अंतर पर जो चार चीकू है उनके विकास पर ज्यादा ध्यान दिया जाना है। यानी अगल–बगल जो चीकू हैं मुख्य चीकू के विकास में यदि अड़चन आए, तब उन्हें काटा भी जा सकता है। इस तरह जब तक मुख्य चार चीकू बढ़ते रहेंगे तब तक आजुबाजु के पेड़ों से उत्पादन और लकड़ी भी मिलती रहेगी। चीकू के पौधों तक पानी पहुंचने को ध्यान में रखकर ही 10 नाले बनाये गये थे, 40 X 30 फीट = 1200 वर्ग फीट के बीच में कुल 9 चीकू, 7 $^{1/2}$ X 10 फीट के अंतर में 16 केले और नाले के अगल–बगल की सभी मेड़ पर सब्जी लगाई गयी थी।

बाग़–बगीचे की खेती (हॉर्ट्रीकल्चर) का इतिहास गवाह है कि, आज तक सभी किसान पेड़ के तने के पास ही पानी देते हैं मगर सावेजी इसे अत्याचार मानते हैं, क्योंकि पेड़–पौधों को जितनी पानी की जरूरत है उससे अधिक पानी असल में उसका शत्रु है। इसलिए अपने प्रयोग के हिसाब से सावेजी ने पानी देने के लिए ये नाले तने से 1 फीट की दूरी पर बनाए थे। और यह भी तय कर रखा था कि जैसे–जैसे पेड़ों का विकास होता जायेगा वैसे–वैसे नालों का हटाकर दूरी पर ले जाएगा और दो के ज़गह पर सिर्फ एक ही नाला होगा, जिससे भविष्य में 50% पानी की बचत हो सकेगी। सावेजी को तो सिर्फ पेड़ों के लिए नमी की जरूरत थी, पानी की नहीं।

पुराने प्रयोग मे जो नारियल, चीकू और केले मेड़ पर थे उनसे होकर गुजरनेवाले नालों को जब सावेजी ने पूरी तरह से भर दिया तब वे पेड़ खेतों में दिये गये पानी की नमी मात्र से अपना विकास करते जा रहे थे। मेड़ के निचले हिस्सों को नमी मिलती रहे, इसलिए बांध के दोनों तरफ खेतों की फसल के लिए नाली बनायी गयी थी। यूं तो पानी खेतों की फसल के लिए था पर पेड़ों को भी छः फीट की उचित दूरी से भरपूर नमी मिल रही थी। इसे ही तो कहते हैं "एक पंथ दो काज" यानी बाग और फसल दोनों का उत्पादन एक ही पानी से! वाह भई वाह!

ठीक हमारी तरह पेड़ों को भी जुकाम होता है, ठंड लगती है। इसलिए ज्यादा पानी से परहेज उनके लिए भी जरूरी है। पेड़–परिवार की मॉ जब नई जड़ें बना–बनाकर थक जाती है तब बीमार पड़ जाती है और पत्ते पीले होने लगते हैं। सोचने की बात है कि जब परिवार का मुख्य सदस्य ही बीमार या कमजोर हो जाए, तो परिवार का हर सदस्य अनुत्साहित, कामचोर और आलसी बन जाता है। ध्यान रहे कि यह बात हमारी तरह वनस्पति जगत पर भी समान रूप से लागू होती है।

हालां कि मनुष्य ने (अनजाने में जड़ों के पास पानी जमा करके) पेड़ों की मॉ के साथ भारी अत्याचार किया है। किन्तु वह मनुष्य के साथ ऐसा नही करती। वैसे उसको प्रकृति ने जबान नहीं दी, वर्ना पेड़ की मॉ इतना तो जरूर चिल्ला–चिल्ला कर कहती कि, 'ओ बुध्दिवाले प्राणी! मेरे ऊपर अब ज्यादा अत्याचार मत कर।' वैसे तो लाचार मॉ के पास पैर भी नहीं, वर्ना पूरे परिवार के साथ वह मनुष्य से कहीं दूर भाग जाती। अततः पूरा लाचार परिवार बस चुपचाप मानव–समाज का जुल्म सहता रहता है। इतना सब होने के बावजूद भी पेड़–परिवार अपने धर्म–कर्म कभी नहीं भूलता। जहरीले कार्बन डायऑक्साइड के बदले शुध्द ऑक्सीजन प्रदान करता रहता है। बीमारियों को दूर भगाने के लिए आयुर्वेदिक दवाइयां भी देता है। मृत मनुष्य से लिए खुद को जलाकर या मीटाकर स्वर्ग लोक में जाने के लिए मार्ग बनाता है। मृत मनुष्य के लिए खुद को जलाकर या मीटाकर स्वर्ग लोक मे जाने के लिए मार्ग बनाता है। इस तरह वनस्पति जगत के एक नहीं, अनगिनत उपकार गिने जा सकते हैं। मैं तो बस इतना ही कहना चाहता हूं कि हर एक पेड़–पौधा जिस तरह हमारे अनुकूल पर्यावरण बनाने की कोशिश करता हैं उसके ठीक विपरीत, हम भेट स्वरूप रासायनिक खाद और जहरीली दवाइयों के जरिऐ उसपर जुल्म करते रहते हैं। जबकि पुराने जमाने में हमारे पूर्वज इन्हीं पेड़ों की पूजा किया करते थे। सभी धर्म–शास्त्रों में बताया गया है कि पेड़–पौधों में श्री रणछोड़ (श्री कृष्ण भगवान) का निवास है। इसके बावजूद अशिक्षित तो कम किन्तु ज्यादातर पढ़े–लिखे लोगों का प्रकृति के प्रति नजरिया एकदम बदल गया है। उन्हें तो सिर्फ पैसा चाहिए। इस बात से अंजान बने हुए कि हम पेड़ों की नहीं, बल्कि प्रभुजी के अंग को काटते हैं। फिर भी भगवान की महानता देखिए, कि पेड़ उगते ही रहते हैं। लेकिन प्रभुजी ऐसा कब तक कर सकते हैं? यही कारण है कि अब वे भी संभवतः तंग आ गये है। और मनुष्य के ऐसे कुकर्म से पर्यावरण का अस्तित्व ही नष्ट होना शुरू हो गया है।

मुझे ऐसा लगता है कि मानव–समाज को कृषि–पध्दति के साथ–साथ पर्यावरण की भी सही पहचान और महत्व समजाने के लिए जैसे प्रभुजी ने अब भास्कर सावेजी को ही कार्यभार सौंप दिया हो। मैं यूं ही ऐसा नहीं कहता बल्कि आपको याद होगा कि 1940 में तूफान के कारण प्रसाद के रूप में समुद्र किनारे काफी मात्रा में नारियल मिले थे। नारियलों का गांववासियों ने अपने–अपने तरीके से उपयोग भी किया था लेकिन सावेजी ने उनका उपयोग गोपालबाग में पौधे उगाने में किया था। कि जब पौंधे से पेड़ बनेंगे, तब उनके फल श्रीनाथजी (श्री कृष्ण भगवान) के चरणों में चढ़ाने का मौका मिलेगा। अब सोचिए, आखिर प्रभुजी चतुर, ईमानदार और निःस्वार्थ सावेजी से क्या करवाना चाहते थे? इस सबूत से भते ही आपको संतुष्टि मिले या न मिले, पर सच भी तो कुछ होता है।

बचपन में सावेजी ने पंड़ों की मॉ की तलाश में जिस पेड़ को छिन्न–भिन्न कर डाला था उस मॉ की पीड़ा अब उन्हें महसूस होने लगी

थी। सावेजी की कार्य–पध्दति से अब पेड़–परिवार को अब अपने को मजबूत बनाने की भरपूर ताकत प्राप्त होने लगी थी। ज्यादातर तीन प्रकार की जो जड़े होती हैं, वे सब छः फीट चौड़ी मेड़ से सेन्द्रिय खाद और नमी प्राप्त करने में लग गई थीं। पेड़–परिवार के कामों का विस्तार होने लगा था और नमी प्राप्त करने में लग गई थीं। पेड़–परिवार के कामों का विस्तार होने लगा था और सभी के मिल–जुलकर रहने के कारण नारियल, चीकू और केले के पेड़ वास्तव में स्वस्थ, निरोगी और हरे–भरे दिखने लगे थे। केले के पेड़ तो फुलने–फूलने भी लगे और करीबन 18 से 20 किलो केले का अच्छा उत्पादन भी मिला था।

सावेजी को नारियल के बारे में जो वृहद अनुभव प्राप्त है उसे एक दिन उन्होंने मुझे जानकारी देने के उद्देश्य से बताया कि "1941 में समुद्र से प्राप्त नारियलों को मैंने अपने भाई के बाग में लगाया था वे सात साल के बाद फल देने लगे थे और वे हमारे वातावरण के साथ संबंध–बनाकर घुलमिल गये थे। उन्हीं देशी नारियलों के पौधे मैंने अपने बाग में भी लगाये थे। 1941 से 1948 तक का उनका सफर देखों तो उससे भी यही साबित होता है कि वे अब हमारे पर्यावरण (प्रकृति) का अटूट हिस्सा बन चुके थे। एक यह भी कारण है कि जब मैंने उन्हें अपने बाग में नई कार्य–पध्दति के हिसाब से लगाया था तो उन्हें विकसित होने का और अधिक मौका मिला। यूं तो वे विकसित थे एक साल के, मगर मेरे बाग में वे मेरी सेन्द्रिय कृषि कार्य पध्दति के कारण पूरे तीन साल के दिखते थे। पूरी तरह से हरे–भरे और तेजस्वी।"

जहां तक पेड़ो के साथ छेड़खानी की बात है तो सावेजी के हिसाब से मेड़ पर प्रथमबार के प्रयोग और कार्य पध्दति के कारण हुई थी लेकिन जो नई जमीन खरीद गयी थी उस पर उनके लिए पूरी तरह से सेन्द्रिय कृषि, मंच और नाले का उपयोग किया गया था जिससे वहा। उनका कही बेहतर विकास हुआ था। मिश्रित कृषि में सब्जी सेन्द्रिय पदार्थों से तैयार होने के कारण स्वाद और सुगंध में उत्तम दर्जे की पायी गयी थी। सब्जी–उत्पादन के बाद सावेजी ने उसका बचा कूड़ा–कचरा और घास–पात उखाड़कर पहली बार जो 18 इंच दूरीपर नाली बनायी थी उसीमें भर दिया। और नारियल चीकू और केले के बीच अब सिर्फ एक नाली पेड़ से 36 ईंच दूरीपर बनाकर वे अब 50% पानी कर बख्त असौ पेड़ों का विकास चाहते थे। नई नाली की खुदाई से जो मिट्टी मिली उससे पुरानी दोनों नालियों को, गोबर और सेन्द्रिय पदार्थें के साथ रखकर, भर दिया गया। मिट्टी कम पड़ी तो एक बार फिर उन्होंने तालाब की मिट्टी का उपयोग किया।

नई नाली और अन्य काम चालू थे कि उसी दौरान सावेजी ने पेड़ों पर हो रहे एक और अत्याचार को देखा और उसके हल के लिए सोच–विचार करने लगे। और उन्होंने अंततः एक ऐसा आविष्कार कर डाला जो पूरे विश्व का आज भी पहला और महानतम आविष्कार माना जाता है।

घास तो ईश्वर का वरदान है

सब्जी के उत्पादन के बाद सावेजी शेष बचे सेन्द्रिय पदार्थ और जंगली घास को उखाड़कर प्रथम नाले में भरते थे, जिस प्रथम नाले से मेड़ों पर खड़े पेड़ नमी और खाद प्राप्त करते थे। उस वक्त सावेजी का यह सामान्य अवलोकन था। फिर सावेजी ने सोचा कि 'सब्जी के शेष सेन्द्रिय पदार्थ और घासों को उखाड़ते वक्त कितनी ही पेड़ो की जड़ें भी टूटकर हाथ में आ जाती हैं। मिट्टी की ऊपरी परतों में ही पेड़–परिवार को उपज देनेवाल जड़ें (बाल जैसी) होती हैं, जो टूटकर बाहर आ जाती हैं। ऐसे में पेड़ों की मॉ को अपने बच्चों को खो देने का कितना दुःख होता होगा! ये जड़ें तो उसकी कमाई करनेवाली औलादें हैं। जाने किस तरह बिचारी मॉ अपनी पीड़ा सहन करती होंगी?"

एक बार किर सावेजी ने काफी सोच–विचार किया और अपने अंदर उठे प्रश्नों का जवाब ढूंढने में लगे गये कि "जहां एक और आधुनिक कृषि–विज्ञान कहता है कि, जंगली घास, खेती और जमीन का दुश्मन है। क्योंकि वह सारी उर्वरता और खाद खा जाती है। इसलिए निर्धारित उत्पादन नहीं मिल पाता। अतः उनको उखाड़ फेंकना निहायत जरूरी है।' अगर यह जानकारी सही है तो कुछ प्रश्न और उठते हैं। यह घास क्या मात्र दुश्मनी के लिए ही उगती है? क्या प्रकृति इतनी नासमझ है कि जो वनस्पति–सृष्अि में कोई किसी दुश्मन को जन्म देगी? अरे भाई! गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि इस सृष्टि में काई किसी का दुश्मन नहीं, सभी में मरा ही निवास है। तब ये आधुनिक कृषि वैज्ञानिक घास को जंगली दुश्मन क्यों मानते हैं?"

अब सावेजी अपने कुछ सवाल आप लोगों से पूछना चाहते हैं "किसान भाई! आप लोग एक फसल काटने के बाद जितना कूडा–कचरा और घास होती है उसे आग लगाकर जला देते हैं ताकि फसल को नुकसान पहुंचानेवाले घास होती है उसे आग लगााकर जला देते हैं ताकि फसल को नुकसान पहुंचानेवाले घास और उसके बीज का सफाया हो जाए और खाद का पूरा फायदा सिर्फ फसल को मिल सके। उसके बाद आप लोग खेतों को ट्रैक्टर से जोतवाते हैं ताकि मिट्टी के नीचे बचे शेष दुश्मन भी दब जाए। और जब सब तरह की सुरक्षा कर ली जाती है, तब आप फसल के लिए बीज बोते हैं। निर्धारित उत्पादन पाने के लिए आप लोग अच्छी जुताई, रायायनिक खाद और गोबर का भी उपयोग करते हैं। ज्यादा पानी भी सींचते हैं ताकि बीज अच्छी तरह से अंकुरित हो। तो उसके बाद खड़ी होती हैं। जैसाकि आप लोगों ने देखा ही होगा कि बीज के अंकुरित होकर पौधा बनने और जमीन से ऊपर करीबन 8 से 10 ईंच बढ़ने में 10 से 20 दिन तक का समय तो लग ही जाता है। तब तक पौधे की अगल–बगल घासें भी निकालनी शुरू हो जाती है जिनकी लंबाई पौधे से काफी कम होती है। इसलिए इतने छोटे दुश्मन को उखाड़कर फेंकना भी मुश्किल काम होता है। ऐसे में किसान भाई आप लोग फसल को बढ़ाने के चक्कर में खाद डालते हैं। पर आप लोगों ने देखा होगा कि फसल शुरु में जब 8 से 10 ईंच की ऊंचाई की थी तब घास 1 से 2 ईंच ही लम्बी थी। इस हिसाब से दोनों के बीच में 7 से 8 ईंच का फासला बनता है, जो फसल की उपज के आखिरी वक्त तक बना रहना चाहिए। क्यों भाईयों! ठीक कह रहा हूं न मैं? अगर कुछ दिनों में आप घास को उखाड़ कर नहीं फेंकते हैं, अगर आपने घास को उखाड़कर फेंका नहीं तो अब ऐसी स्थिती आ जाती है कि घास को मिल रहा है। वह सांप–सी सरसर बढ़ती जा रही है। क्या आप की फसल सोई हुई है? या आधुनिक क1शि वैज्ञानिकों ने ऐसी कोई साजिश रची है जिसके कारण फसलों को खाद का फायदा ही नहीं मिल रहा! सबसे पड़ा प्रश्न तो यह उठता है कि आप लोगों ने जब आग लगाकर कहे हुए दुश्मन को जला दिया था, तो अब यह घास कैसे उग आई? मेरे हिसाब से यह आधुनिक कृषि–पध्दति किसानों को ठगने के सिवाय और कोई काम नहीं करती। वह कैसे? तो बताईए क्या ऐसी कोई जमीन नहीं होती, जहां बगैर खाद के पहले जितना ही घास न उगती हो? अरे भाई! घास और कई पौधें तो बगैर खाद के घर की छत और सीमेंट की दीवारों पर भी उग आते हैं! तो फिर उन्हें खाद आखिर मिलती कहां से है? जबकि आधुनिक जहरीली दवाईयों से उनका सफाया किया जा चुका होता है। तो फिर ऐसी क्या बात है कि प्रकृति व्दारा कभी नष्ट न होनेवाली कांग्रेसी घास का सृजन करती है?" ये सारे प्रश्न महाराष्ट्र राज्य के सांगली जिले में जिल्हें 'कृषि–पंडित' की पदवी हासिल है, उन्हीं सावेजी के हैं।

1958 में सावेजी ने पेड़ की मॉ के दुःख का अनुभव कर के खरपतवार और जुताई का काम बंद कर दिया था, अब उसका रास्ता उन्होंने यह ढूंढ निकाला कि घास जब फसल के विकास में रूकावट पैदा करेगी तभी काटी जायेगी और वह भी सिर्फ 2 से 3 ईंच ऊपर से ही। जिस

तरह से हम जरूरत होने पर सर से बाल काटते है। इस योजना से सावेजी को काफी फायदा हुआ क्योंकि घास के उखाड़ने के खर्च की भारी जो बचत हुई। साथ ही साथ धरती मॉ को हरे रंग का वस्त्र भी पहनाया जा सका। क्योंकि बार–बार घास उखाड़ने से मॉ वस्त्रहीन हो जाती थी। इस निर्णय से पेड़–पौधों को दिया गया पानी भाप बनकर उड़ता भी नहीं और घास की छांव में पानी को सुरक्षा मिल जाती थी। घास के रहने के कारण पेड़–पौधे को कम पानी लगा। जड़ों की सुरक्षा तो हुई ही साथ ही साथ अनुकूल बढ़ने भी लगीं। कमाऊ औलादों बढ़ने के कारण कमाई में भी वृध्दि द होने लगी। रूकावट डालने वाली घास को काटने से पशुओं को भी चारा मिलने लगा। इस तरह सावेजी को काफी फायदे होने लगे थे। सावेजी ने तब एक नया सूत्र बनाया कि 'घास अभिशाप नहीं, परंतु प्रभुजी का वरदान है। इसे उखाड़ फेंकने में भलाई नहीं बल्कि जरूरत पड़े तो बस इसे काट–छांट देने में है।'

सम्पूर्ण बाग़ की ओर

सेन्द्रिय खाद से अच्छा उत्पादन मिलने के बावजूद सावेजी को रासायनिक खाद से अब तक सम्पूर्ण मोह – भंग नहीं हुआ था क्योंकि सब्जी के बेहतर उत्पादन का नशा जो एक बार लग चुका था। मगर अब बगीचे से सावेजी को अच्छी आमदनी होने लगी थी। इसी बात को ध्यान में रखकर उन्होंने 1959 में धान एवं अन्य सेन्द्रिय खादवाले उत्पादन के प्रयोग के लिए आधा–अधा एकड़ के जो तीन भाग थे, उन्हें छोड़कर शेष हिस्सों में सम्पूर्ण रूप से बगीचा तैयार करने की योजना बनानी शुरू कर दी। पहलेवाले बगीचे की मेड़ों पर जो नारियल, चीकू और केले थे उनमें से दूसरी बार करीबन 25 से 30 किलो का उत्पादन प्राप्त हुआ था। मेड़ो पर स्थित पेड़ों के आशाभरा विकास को देखकर सावेजी ने सेन्द्रिय पदार्थ और तालाब की मिट्टी से 6 फीट की मेड़ के दोनों तरफ की चौड़ाई 2–2 फीट और बढ़ा दी। अब मेड़ की चौड़ाई 10 फीट हो गई।

नये बगीचे में किए सावेजी के सारे प्रयोग अभी तक सफल रहे थे। जहां तक खरपतरवार और जुताई की बात थी तो वह पेड़–पौधों का जितनी दूरी तक विस्तार था वहॉ तक बंद था। पानी देने का तरीका भी साव–पध्दति के अनुसार ही था। इस प्रकार जैसे–जैसे सावेजी प्रत्यक्ष रूप से अपना काम करते गये वैसे–वैसे उनके अवलोकन और अनुभव का विस्तार भी होता गया। अब खेत और बाग सावेजी के लिए विद्यापीठ और कॉलेज अपने आप में एक विलक्षण संस्था पन गये थे। सावेजी जब नई फसल उगाने की तैयारी करते, सिर्फ तभ्झी खेतों को जोतते थे यानी सिर्फ एक बार और फिर कभ्झी नहीं। उन्हें (दुसरी–तिसरी बार) जुताई बंद करने के बार में एक सवाल का सामना करना पड़ा कि "यदि मान लेते हैं पेड़–पौधों को बाहरी हिस्सों का ताजा हवा मिल जाती है पर मिट्टी की उलट–पुलट यानी (दूसरी) जुताई बंद करने पर मिट्टी में दबी हुई जड़ों को ताजा हवा भला कैसे मिलेगी? अगर मैं जुताई कर जमीन बंद करने पर मिट्टी मे दबी हुई जड़ों को ताजा हवा भला कैसे मिलेगी? अगर मैं जुताई कर जमीन के साथ हस्तक्षेप (छेड़खानी) करता हूं तो कितनी ही जड़ें टूट जाती हैं! तो सवाल यह उठता है कि, मिट्टी में जो जडे हैं उसे ताजा हवा आखिर मिलेगी तो कैसे? जंगल के पेड़–पौधों की प्रकृति व्दारा जुताई किस तरह से और भला किस तरह होती है?" सावेजी अपने इन सारे प्रश्नों पर सोचविचार कर ही रहे थे कि इतने में बारिश का मौसम नजदीक आ गया और वे धान की खेती में जुट गये।

किसान के सच्चे मित्र केंचुएं

कूड़ा–कचरा और सेन्द्रिय पदार्थ से सावेजी ने जो कृषि की थी, उसके उत्पादन में अब तो दिन–प्रतिदिन वृध्दी होती जा रही थी क्योंकि जमीन की उर्वरता–जैविकता का भरपूर सहयोग प्राप्त होने लगा था।

1954 में सावेजी ने सेन्द्रिय खाद से धान की खेती की। इसमें सफलता मिलने के बाद आधा–आधा एकड़ के तीन भागों पर बिना रासायनिक खाद से उनका प्रयोग चालु थे। और खेत की मेड़ों पर सिर्फ सेन्द्रिय खादकी मदद से बगीचाभी तैयार हो रहा था। इसप्रकार से देखा जाये, तो कुछ खेतों को सेन्द्रिय कृषि–पध्दिति से जुड़े हुए चार साल तक और अन्य कुछ को तीन साल तक हो चुके थे। इसी बीच रासायनिक खाद का प्रयोग न करने के कारण जमीनकी जैविकशक्ति अत्याधिक बढ़ गई थी।

यह 1959 के एक दिन की बात है। धान की खेती के शुरूआती काम लगभग पूरे हो चुके थे। पर देखरेख की जिम्मेदारी कब खत्म हुई हैं, जो अब होती! इसलिए लगाए गये पौधों का निरीक्षण करने सावेजी खेतों में भरने लगा था। सावेजी एक चीकू के पेड़ के नीचे छुप गए और खड़े–खड़े प्रकृति की सुन्दरता का मजा लेने लगे। इतने में किसी आविष्कार की कोई फिल्म देख रहे हों, ठीक ऐसी ही कुछ बांते उन्हें देखने को मिली। अचानक सावेजी के पांव तले गुदगुदी हुई और उन्होंने जैसे ही पांव हटाया तो देखा कि एक केंचुआ जमीन से बाहर निकल दूसरा बिल बनाकर मिट्टी के अंदर चला गया। सावेजी ने जब ध्यान से देखा ता पाया कि, कई केंचुएं बिल में जाने से पहले काली मिट्टी के रूप में मल त्याग कर जाते है। उन्हें यह दृश्य आनंदित करने लगा। और केंचुओं की कार्य–प्रकृति में उनकी रूचि जगी। वे जब मल हाथ में लेकर देखने लगे तो सचमुच दंग रह गये। क्योंकि सामान्य तौर पर हर जीव के मल से दुर्गंध आती है वहरं केंचुओं के मल से तो खुशबू आ रही थी!

सावेजी को तब याद आया कि जब वे अपने गांव से दूसरे गांव जंगल के रास्ते पढ़ाने जाते थे तो जंगल में ऐसी ही मिट्टी की भीनी–भीनी खुशबू आती थी। यह याद आते ही उनके भीतर कृषि की आंतरिक जुताई के बार में उठे प्रश्नों के दीये जलने लगे। और जब दिये जलने लगे, तो उनके प्रकाश में सर्वप्रथम भारतीय शिक्षण–पध्दति दिखाई पड़ी। वे स्कूल में बच्चों को पढ़ाते थे कि केंचुएं तो किसान के सच्चे दोस्त हैं। वे दोस्ती का फर्ज निभाते हुए किसानों के बहुत से काम खुद कर देते हैं। उनकी शरीर–रचना और कार्य–पध्दति की थोडीसी जानकारी पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक दी जाती (है) थी। बाकी कक्षाओं में भारतीय जनसंख्या की वृध्दि के मद्देनजर आधुनिक कृषि के बारे में जो पढ़ाया–सिखाया जाता है, यानी चौथी कक्षा के बाद विद्यार्थियों को केंचुओं के बारे में फिर कभी नहीं पढ़ाया जाता। मानो बच्चों को सिर्फ दिखावे के लिए उनके बारे में जानकारी दी गई (है) थी। शायद इसीलिए सावेजी दिखावे की इस जानकारी को भूल चुके थे, ठीक वैसे ही जैसे आज अन्य किसान भूल चुके हैं। पाठक बंधुओ! भारतीय कृषि की पढ़ाई में यह परिवर्तन आखिर क्यों? आखिर किस कारणवष किसान के इस सच्चे मित्र को जीवन से बाहर किया जा रहा है, कृषि में रासायनिक कृषि–पध्दति को क्यों अहमीयत दी जा रही है? इसके पीछे क्या रहस्य छुपे हुए हैं?

अपने अवलोकन के जरिए सावेजी ने पाया कि केंचुओं की कार्य. पध्दति काफी रचनात्मक है। वे जड़ों का धीरे से सरकाकर या अससे सटकर बाहर आते हैं। वे एक छेद (बिल) से ऊपर आते हैं और बगल में दुसरा छेद बनाकर मिट्टी के अंदर चले जाते (आर्गेनिक) सेन्द्रिय पदार्थ को शरीर में विभिन्न क्रिया–प्रक्रियाओं व्दारा (इनॉर्गेनिक) खनिज पदार्थ के रूप में विघटित करते हैं और उसे, जहां जड़ों का मुख होता है, वहां रख देते हैं। इसमें वनस्पति–सृष्टि के फलने–फूलने के लिए आवश्यक सारे तत्व मौजूद होते हैं। इसप्रकार हर बार केंचुएं दो नये छेद बनाते हैं जिसके पीछे प्रकृति का एक बड़ा रहस्य छिपा हुआ है।

सेन्द्रिय कृषि, सजीव खेती, बिना जोती हुई खेती, जैविक कृषि आदि अनेक नामों से जानी जाती है। वर्तमान आधुनिक कृषि को कृषि समझ कर नहीं, बल्कि एक व्यापार या धंधा समझकर किया जा रहा है। सेन्द्रिय कृषि व्यापार नहीं हैं, परंतु एक जीवनकार्य है संस्कृति है एक जीवनशैली है, आनंदमय कार्य है। धंधा, व्यापार, उद्योग आदि शब्दों के आने से लाभ हानि के प्रश्न भी खड़े हुए। मगर खेती तो ऐसा नविनिर्माण कार्य है जहां एक दाने से हजारों दाने तैयार होाते हैं, वहां नुकसान का प्रश्न कैसा?

हमें तो सिर्फ सेन्द्रिय पदार्थ से जमीन तैयार करके उसमें पौधा लगाना अथवा बीज बोने का काम करना है। उसके बाद उनके अंकुरित होने का काम प्राकृतिक है। जड़ों के विकास का काम भी प्राकृतिक है। फल आने का काम भी सम्पूर्ण रीते से प्राकृतिक है। फल तैयार होने के बाद

उसे तोड़ लेने का काम हमारा है। फिर उसमें नुकसान है कहां? सामान्यत कृषि सिर्फ पांच मुद्दोंपर ही की जाती है। (1) पानी (2) खाद (3) जुताई (4) फयन रक्षा (5) निराई (खरपतवार)। किसी भी पेड़, पौधे या फसल के लिए नमी या आर्द्रता (गीलेपन) की जरूरत होती है, पानी की कतई नहीं। मतलब यह कि गीलापन बनाए रखने के लिए सिर्फ 7 से 20 प्रतिशत पानी देना जरूरी है। बाकी काम कीड़ों या केंचुए व्दारा प्राकृतिक रूप से हो जाता है। सेन्द्रिय कृषि में सभी कार्य कुदरती है, इसलिए कुदरत के कार्य में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

साधारणतः कम से कम दो साल तक कोई भी रासायनिक खाद न डालें, नाही जुताई करें, और नाही घास निकाले; सिर्फ नियंत्राण करें और गिरे हुऐ पत्ते, घास, कूड़ा–कचरा, करकट, सड़ी–गली टहनियॉ, छालें, मरे जानवर, मानव मल–मूत्र, गोबर, इत्यादि यदि जमीन और पानी के संपर्क में लाएं तो वहां सड़ने की क्रिया प्रारंभ होती है। इस क्रिया से 12 से 16 डिग्री सेल्सीयश तापमान तैयार होते है। अब केंचुओं के बारे में कहा जाये तो ऐसा माना जाता है कि वे सोते हीं, उन्हें आराम की जरूरत नहीं और उनकी मृत्यु भ्झी नहीं होती! इसका मतलब यह नहीं कि वे अमर है। उसका यह अर्थ है कि अगर उसके दो टूकडे भी कर दिए जाए, तो भी वह जीवित रहता है। वह लगातार मिट्टी सेवन करता है। इसके लिए असे बार–बार मल त्यागना पड़ता है। वर्शा ऋतु में मल–विसर्जन के लिए उसे जमीन की ऊपरी सतह पर आना पड़ता है। चौबीस घंटो में वह कम से कम 7 से 10 बार नया छेद करते हुए जमीन की सतह पर आता है। ऊपर आने की दोन वजह हैः (1) मल त्यागने के लिए और (2) ऑक्सिजन लेने के लिए। एक बार ऊपर आने–जाने की क्रिया में वह दो छेद करता हैः एक आते हुए और दुसरा अन्दर जाते हुए। छेद करते समय वह मिट्टी में पंचिंग करता है, ड्रिलिंग नही। अगर वह ड्रिलिंग करता तो उस जमीन पर विकसित होते हुए पौंधो की जड़ें कट जाती। वह दो छेद क्यूं करता है? तो इसका जवाब हैः एक तो छेद की दिवाल के साथ शरीर को दबाकर मल त्यागने के लिए असे पुरा बाहर आना पडता है परंतु ऐसा करने में उसे कौए या बगुले व्दारा खा लिए जाने का डर भी रहता है, इसलिए वह अपना शरीर सिर्फ आधा इंच ही उपर लाता है तथा कोई है या नहीं यह जॉच लेता है। इसके बाद वह दूसरा छेद करते हुए जमीन में घूस जाता है। ऐसा करने से, उसका शरीर हवा में से पास होता है और जब अंतिम छोर आत है तब मल त्याग कर वह जमीन में घुस जाता है। अब यदि एक दिनमें वह दस बार ऊपर आता है तो 10 X 2 = 20 छेद होते है। अब जब एक एकड़ जमीन में चार लाख केचुए कार्य करते हैं तो मात्र एक ही दिन में 20 छेद X 4 लाख = 80 लाख छेद हो जाते हैं!

केंचुओं को और पौधे की जड़ों को सदैव कार्यरत रहने के लिए हमेशा गीलेपन की जरूरत होती है। वर्षा ऋतु के दौरान केवल तीन माह (90 दिन) नमी मिलती है, यानी 90 दिन X 80 लाख छेद = 7 करोड़ 20 लाख छेद एक एकड़ जमीन में तैयार हो गए। यानी कि वह जमीन सम्पूर्ण रूपसे छिद्रयुक्त हो गई। अर्थात इस तरह जमीन में अब ऑक्सिन का आवागमन होने लगा। अब यह जमीन सजीव हो गई और उसमें ह्यूमस नामक तत्व बढ़ने लगते हैं। जिनकी मात्रा में लगातार वृध्दि होती है। इसके अलावा जमीन छिद्रयुक्त और नरम बन जाने के भंडार में वृध्दि होती है। इसके अलावा जमीन छिद्रयुक्त और नरम बन जाने के कारण बार–बार होनेवाला जुताई का खर्च भी बच जाता है। जुताई करने से धरती माता की गोद में पलनेवाले जीवों की जो हत्या हो जाती है वह भी अब नही होती।

हर एक केंचुआ अपने स्वयं के वजन से डेढ़ गुनी अधिक मिट्टी खाता है। वह जितनी मिट्टी खाता है उसमें 4% सेन्द्रिय पदार्थ और 96% मिट्टी होती है और 100% मल (वरमी कास्टिंग) के रूप में बाहर निकालता है। एक एकड़ जमीन में 4 लाख केंचुए X 1.5 टन मल = 6 लाख टन मिट्टी मल के रूप में प्राप्त होती है। इस मल की जांच करने पर मालूम हुआ कि दूसरी खाद्ययुक्त मिट्टी के मुकाबले इसमें दुगुनी कैल्शियम, दुगनी मैग्नेशियम, सात गुना नाइट्रोजन, 11 गुना फॉस्फरस और 4 गुना पोटॅश रहता है। उसी प्रकार इस मिट्टी में एक्टिनोमाईमिटिस नामक सुक्ष्म जीवों की संख्या 7 गुना बढ़ती रहती है। साथ ही लिग्नीन और लिग्नाईट नामक इन दो तत्वों की वृध्दी होती है जिसके कारण पौधे में रोग–प्रतिरोधक शक्ति लगातार बढ़ती रहती है।

1) जुताई की जरूरत नहीं। चूँकि एक एकड़ जमीन में 4 लाख केंचुए जुताई का काम करते हैं। इसलिए जुताई का खर्च बच जाता है। 2) एक एकड़ जमीन की मिट्टी खाद्ययुक्त बन जाती है, जो जड़ों के मुख पर मिलती है। इससे कृत्रिम खाद के खर्चे से भी मुक्ति मिलती है। 3) फसल के संरक्षण के लिए पौंधो में रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है, जिससे दवाइयों का खर्चा भी बच जाता है। 4) घास में फसल ज्यादा ऊपर आती है और

सूर्यप्रकाश न मिलने के कारण कुछ दिनों बाद घास के दब जाने से उसका खाद में रूपांतरण होता है। जिससे निराई (खरपतवार) निकलवाने का खर्ची भी बच जाता है। 5) नमी और घास के कारण पूरे साल केंचुएं व्दारा इसी तरह यह कार्य चलता रहता है। 6) इनके बिल सुरंग जैसे होने से जड़ो को वायु मिलती है। और बिना किसी खर्च के पानी के भंडार में वृध्दि होती है; भूमि में जल स्तर बढ़ता है।

केंचुओ की कार्य–पध्दति पर सावेजी ने जो शोध की है, अब उससे भी कई व्यापारी किसानों को ठगने का धंधा कर रहे हैं। आज कल केंचुएं और उसके मल बेचने का एक नया व्यापार चल निकला है। इन पर खरीदे गये केंचुओं से किसानों की भूमि को कोई फायदा नहीं पहुंचता क्योंकि उनके खेतों मे रासायनिक खाद के प्रयोग के कारण क्षार और एसिड की मात्रा ज्यादा हो जाने से ये केंचुएं तुरंत मर जाते हैं। ऐसे में किसान की अज्ञानता के कारण जब उसे फायदा नहीं मिलता, तब उन्हें सेन्द्रिय कृषि से नफरत होने लगती है। अगर खरीदारी से बचकर सावे–पध्दति के हिसाब से खेतों मे सेन्द्रिय पदार्थ, कूडे–कचरे और गोबर का उपयोग किया जाए तो प्रकृति अपने आप चार से पांच लाख केंचुए पैदा कर सकती है। यह भला कैसे? वह इस तरह कि जैसे घर के किसी कोने में शक्कर, गुड़ या कोई अन्य खाद्य सामग्री अथवा मृत, कीट–पतंगा या जानवर गिर पडता है। और सड़ता है तो तब असे ले जाने के लिए चींटियों को हम फोन नहीं करते, न ही किसी प्रकार का संदेश भेजते हैं, पर वे प्राकृतिक संदेश पाकर स्वयं ही बगैर किसी निमंत्रण के घर में आ जाती हैं। ठीक इसी तरह सभी जीव अपना कार्य करते हैं। सेंन्द्रिय पदार्थ से केंचुएं भी अपने आप आ जाते हैं। जब वे मुफ्त में प्राप्त होते हैं तब इन्हें खरीदकर मूर्ख बनने की क्या आवश्यकता? किसानों को ठगनेवाले व्यापारी उन्हें मशीन से नहीं बनाते वे भी तो इन्हें प्रकृति से ही प्राप्त करते हैं, फिर किसान इन्हें इसी प्रकार क्यों नहीं पा सकते? इसे पाने के लिए मात्र बस श्रध्दा, श्रम और सही सोच की जरूरत है, खरीदने की कतई नहीं।

अगर किसान–समाज अपने खेतों में ज्यादा–से–ज्यादा सेंन्द्रिय पदार्थ का उपयोग करता है तो केंचुएं अपने सच्चे दोस्त के प्रति अपना फर्ज खुशी–खुशी निभाते हैं। अपने घर खेतों में ही बना लेते हैं। इसलिए तो जब सावेजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने रासायनिक खाद, जहरीली दवाइयां और आधुनिक कृषि–पध्दति का उपयोग एकदम और पूरी तरह से बंद कर दिया था।

जियो और जीने दो

हमारी हिन्दू संस्कृति में प्रत्येक घर के आंगन में तुलसी का पौधा अवश्य होता है। इसके महत्व को देखते हुए सावेजी ने बगीचे क मेड़ों पर तुलसी के कई पौधे लगा दिये। फिर जानलेवा दवाइयों का छिड़काव बंद करने के बाद सावेजी गौमूत्र, तुलसी, नीम, तम्बाकू और अनय जड़ी–बूटीयों युक्त वनस्पतियों का घोल बनाकर उसका उपयोग छिड़काव के निमित्त करने लगे। इससे जीवों की हत्या भी रूक गई और उनकी संख्या भी! यह प्राकृतिक परिवर्तन क्यों? उनके मन में उठे सभी प्रश्नों के उत्तर उन्हें जंगल के पेड़–पौधों के अवलोकन से ही मिल जाते थे। जंगल में उत्पादन देनेवाले कई पेड़ होते हैं, जिनके लिए जुताई, खाद या रक्षा का कोई प्रबंधा नहीं होता फिर भी वे फलते–फूलते हैं क्योंकि वहॉ जुताई और खाद का काम तो केंचुएं कर देते है। इसी तरह कई कीटक भक्षी प्राणी और पक्षी उनकी रक्षा का काम भी करते हैं।

मनुष्यों को छोड़कर सृष्टि के सभी जीवों में 99 जीव मांसाहारी होते है। एक प्रतिशत जीव सम्पूर्ण रूप से शाकाहारी होते हैं। संक्षेप में इतना ही कि बड़े मांसाहारी जीव छोटे जीव का शिकार करके खुद का भरण–पोषण करते हैं। सूक्ष्म (यानी नजर से न दीखनेवाले) शाकाहारी जीवों को कई छोटे–छोटे जीव खाकर फसल रक्षा करते हैं। गहराई से समझने के लिए आइए, कुछ उदाहरण देखते हैं। मकड़ा, जो सम्पूर्ण रूप से मांसाहारी जीव है, सब्जी या पत्तों का सेवन नहीं करता बल्कि जाल बनाकर उड़नेवाले जीवों को फंसाता है और अपना जीवन बिताता है। इसी तरह लाल चींटी, छिपकली, मेंढक आदि अन्य कई जीव हैं। वहीं पक्षियों मे गिध्द, कौआ, चील जैसे पक्षी हैं, जिन्हें लोग पंसद नहीं करते हैं घृणा के भाव से देखते हैं जबकि इनकी तो पूजा होनी चाहिए। ये पक्षी मानव समाज का अहित करनेवाले नहीं हैं। क्योंकि ये कैंन्सर जैसे महारोगवाली लाशों को खाकर कुछ ही समय में उनको मल में परिवर्तित कर देते हैं। जर सोचिए कि अगर मनुष्य का थूका हुआ कफ (बलगम या रास्ते में फेंके गए मृत चूहों आदि को अगर ये पक्षी खाना छोड़ दें और उनका अस्तित्व भी खतरे में आ जाये तो मानव–समाज की तब क्या दशा होगी?

ये बातें तो सिर्फ शाकाहारी और मांसाहारी जीवों के बारे में हुई। मगर सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि अगर किसान–फसल–रक्षा के लिए

दवाइयों का छिड़काव न करे तो उसे कीड़े खाने लगते हैं, जैसे कि – दीमक। यदि दवा का छिड़काव न किया जाए, तो वह पेड़–पौधों को काफी नुकसान पहुंचाता हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैने सावेजी से प्रश्न किया कि 'क्या ऐसी परिस्थिति में भी आपका मानना है कि दवाइयों का छिड़कावा करना जरूरी नहीं हैं?

सावेजी ने अनुभव और सबूतों के आधार पर बताया कि "गीता में श्री कृष्ण ने का है कि इस संसार में कोई किसी का दुश्मन नहीं और प्रकृति ने एक भी वस्तु ऐसी नहीं बनायी जो जीवन के लिए उपयोगी न हो। छोटे–से–छोटा जीव और घास का एक तिनका भी उपयोगी है। इन सब को योग्यता के हिसाब से काम भी दिये गये हैं इसलिए इन सब को जीने का पूरा अधिकार है। किसी भी कार्य के लिए जीवों में शक्ति की जरूरत होती है और इसलिए उसे पाने की खातिर उनकी भाग–दौड़ लगी रहती है। प्राकृतिक आहार से शक्ति पाने के लिए प्रकृति ने सुंदर शरीर की रचना भी की है। साथी साथ प्रकृति ने अपने प्राकृतिक चक्र को चलाने की सही व्यवस्था भी की है। जैसे 'जीवो–जीवस्य, जीवनम्' की महान कड़ी। एक जीव दूसरे जीवन व्यतीत करता है। प्रकृति ने अपने हिसाब से जब चाहा तब एक का नाश कर, दूसरे जीव की रचना की है। जैसे की पहले पृथ्वी अग्नि का एक धधकता गोला थी। धीरे–धीरे जब यह ठंडी हुई तो प्रकृति ने अपनी रचना शुरू की। प्रकृति ने सबसे पहले जीव–जगत और उसके बाद वनस्पति–जगत की रचना की। हजारों वर्ष के बाद जब उसे अपनी रचना में कमी दिखायी पड़ी, तो उसमें कुछ परिवर्तन कर के बंदर से बुध्दिजीवी मनुष्य की रचना में कमी दिखायी पड़ी, तो उसमें कुछ परिवर्तन कर के बंदर से बुध्दिजीवी मनुष्य की रचना कर डाली। प्रकृति ने बंदर की तरह मनुष्य को हर प्रकार से शाकाहारी बनाया है।"

जैसाकि अक्सर हम लोग आपस में कहते रहते हैं कि हरेक से कभी न कभी कोई न कोई गलती हो ही जाती है, प्रभुजी से भी किंचित एक गलती हो गयी है! उन्होंने मनुष्य की रचना जो कर डाली। क्योंकि आज वही मनुष्य प्राकृतिक चक्र को सही तरीके से घूमने मैं अड़चनें खड़ी करने लगा है। इस संदर्भ में बहुत कुछ गिनती करने के लिए बताया जा सकता है, लेकिन सावेजी से प्राप्त ज्ञान के आधार पर मुझे एक ही उदाहरण सामने रखना है। बंदर की तरह मनुष्य की भी रचना प्रभुजी ने शाकाहारी जीव के रूप में की है, इस बात को इस निरिक्षण के जरिए साबित किया जा सकता है: एक कमरे में बंदर को रखिए और असे खाने के लिए रोज मांसाहारी भोजन दीजिए। बंदर मर जाना पसंद करेगा लेकिन मांसाहारी भोजन को छुएगा भी नहीं। क्योंकि उसे मालूम है कि उसकी शरीर–रचना मांस खानेवाले जीवों की तरह नहीं है। और न ही उसके पास लंबी जबान, चीरने–चबाने के लिए नाखून और दांत है। हर तरह से उसका शरीर शाकाहार के लिए ही बनाया गया है। ठीक उसी तरह प्रभुजी ने मनुष्य की भी रचना की है। पर पता नहीं ऐसी कौन–सी बात मजबूरी बनकर सामने आई होगी कि मनुष्य को मांस खाना पड़ा होगा। जिस स्वाद की उसे आदत लग गयी थी कि वह आज भी कायम है। असल में मरे हुए जीवों को शमशान में जलाते हैं या कब्रिस्तान में गाड़ते हैं पर मनुष्य ने तो अपने पेट में ही ये सब व्यवस्था कर रखी है। प्रकृति ने अपने चक्र को चलाने के लिए जीवों में बार–बार प्राण डाले पर मनुष्य ने हर बार इस में हस्तक्षेप कर उनके प्राण हर लिये। इस तरह मनुष्य ने आज पूरी तरह से प्रकृति–चक्र में बाधा खड़ी कर दी है।

सावेजी ने कहा, "शाकाहारी होकर भी मनुष्य ने जिस तरह अपने भोजन में परिवर्तन किया है, अन्य जीवों ने भी इसी प्रकार अपने प्राकृतिक आहार में परिवर्तन किया है। ऐसा ही एक उदाहरण है दीमक का। वह जब सूखे पत्ते, लकडी, कागज आदि चीजों में लग जाती हैं तो ये चीजें मिट्टी का ढेर हो जाती है। पर वही चीजों को (जो पेड़.पौधों और लकड़ी से बनी हों) अगर पॉलिश, तेल या रंग करके रखें तो इन पर दीमक नहीं लगती। वह तब भी नहीं लगती, जब ये चीजें भीगी हुई हो, क्योंकि इस स्थिति में वे चीजें उसके आहार के लायक नहीं होतीं। यह बात खेतों–बगीचों में भी लागू होती हैं, जहॉ शाखाओं और सूख चुकी यानी मर चुकी फसलों और पदार्थ से होता है। इस तरह सही मायने में देखा जाए, तो दीमक सफाई करने का काम भी करती है। मगर आज कल तो हर बात पर जैसे उलटा ही रवैया अपनाया जा रहे है। उदाहरणार्थ आधुनिक कृषि वैज्ञानिक सिखाते हैं कि सूखे पत्ते, डाली या घास आदि जो सेन्द्रिय पदार्थ है, उनमें रोग के कीटाणु छिपे होते हैं इसलिए इन्हें खेतों–बागों के लिए कच्चा सोना होते है, वहीं रासायनिक खाद, जहरीली दवा इनके लिए नुकसानदेह है। इसके बावजूद इस तरह की गलत शिक्षा दी जाती है। सोचने की बात है कि जब सारे सेन्द्रिय पदार्थ जला दिये जाते हैं तो दीमकों के लिए बचता क्या है जिसे खाकर वे जिन्दा रहेंगी। इसीलिए दीमकों ने भी प्रकृति और मनुष्य से

बगावत कर डालीं और खाने में परिवर्तन करके हरी और गीली वनस्पति को भी खाने को प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि जीने के लिए कुछ तो जरूरी है।" ऐसे में सावेजी से प्राप्त ज्ञान के आधार पर मुझे फिल्मों के ये दो गीत याद आते हैं:

कल्पवृक्ष फार्म

सचमुच सावेजी की सेन्द्रिय कृषि एक ऐसी कृषि–पध्दती है, जिसे आलसी–से–आलसी और अनपढ़ – से अनपढ़ किसान भी अपना सकता है। क्योंकि सावे कृषि–पध्दति में न तो जुताई, न रासायनिक खाद, न फसल रक्षा और न ही घास उखाड़ फेंकने की काई जरूरत है। सिर्फ एक जगह बैठकर चारों दिशाओं में पानी–सिंचन करना है। जाने क्यों इतनी सरल, सीधी औ बगैर खर्च की कृषि–पध्दति होन पर भ्झी यह किसानों को पसंद नहीं। यह भी एक कड़वा सत्य है कि 1960 से आज तक सरकार ने भी इसको बढ़ावा नहीं दिया। बल्कि हमेशा नज़रअंदाज ही किया है।

पेड–पौधों की फसल जमा करना, फिर उन्हें मंडी में ले जाना और फार्म में पानी–सिंचन करना, बस इतने काम ही अब सावेजी के पास बचे थे। सावेजी के पास स्वार्थ या लोभ जैसा कुछ न था इसलिए उन्होंने अपने भाईयों के खेतों में भी वैसी ही कृषि–पध्दति लागू की और उन्हें भी काफी फायदा हुआ। खेतों के लिए अब ज्यदाकुछ काम शेष था नहीं। जो भी छोटे–मोटे काम थे उन्हें उनकी धर्मपत्नी (मालती बा) और बेटों (नरेश और सुरेश) ने संभाल रखा थो। इसलिए धीरे–धीरे सेन्द्रिय कृषि का पूरे किसान समाज में सावेजी ने प्रचार शुरू कर दिया, ताकि सभी इसका लाभ उठा सकें।

समाचार पत्रों के जरिए सावेजी को राजनीति और कृषि–योजना की जानकारी लगातार मिलती रहती थी। उन्हें यह जानकर बहुत दुःख होता था। और वे अत्याधिक चिंतित हो उठते थे कि नेहरू की कृषि–योजना व्दारा हररोज गांधीजी की नीतीयों का खून होता है। उनका मानना है कि गांधीजी की कृषि–नीति को न अपनाकर कृषि प्रधान देश भारत के किसान जिस दुर्दशा और आत्महत्या की स्थिति से गुजर रहे है, उसके पिछे नेहरु और उनके सलाहकार स्वामीनाथन ही दोषी हैं। यह बात सावेजी की तरह हम सब भी जानते हैं, मगर सत्ता के सामने सब पहले भी चुप थे, आज भी चुप हैं! इन बातों से सावेजी का मन जब भी बैचेन होता, वे शांति के लिए आध्यात्मिक किताबों का सहारा लेते। उन्हे इन किताबों से ही मालूम पड़ा कि प्रभुजी के चरणों में किसी भी काम की शुरुआत करने के लिए नारियल की ही भेंट चढ़ायी जाती है। इस फल को इतना महत्व क्यों देते है? नारियल को श्री फल और कल्पवृक्ष फल क्यों कहा जाता है? अब वे इस

सवाल का जवाब खोज निकालने में जुट गये।

एक दिन सावेजी अपने बाग में एक नारियल के पेड़ के सामने खड़े हो गये और उसमें रहनेवाले श्री कृष्ण से कई प्रश्न किये थे? जवाब के लिए सावेजी का बस टुकुर–टुकुर उन्हें देखने–भर का संबंध हुआ था। जवाब में कुछ देर के बाद एक पेड़ से एक परिपक्व नारियल जमीन पर आ गिरा। थोड़ी देर में दूसरे पेड़ से एक सुखा पत्ता गिरा। गिरे हुए उस नारियल को सावेजी ने गौर से देखा, जो करीबन चालिस फीट की ऊंचाई से गिरा था पर उस पर खरोंच बिलकुल नहीं आई। यह देखकर उनके मन में प्रश्न उठा "नारियल के पेड़ से पके फल अपने–आप गिरते है।, ठीक वैसे ही जैसे पत्ते एवं अन्य सूखी वस्तुएं गिरती है। जबकि चीकू और आम के फल पेड़ पर चढ़कर बड़ी सावधानी से तोड़ने पड़ते हैं। अगर जरा–सी भी गलती से वह फल गिर गये, तो दबकर खराब हो जाते हैं। फिर नारियल के फल के साथ ऐसा क्या है जिसके कारण प्रकृति ने उसे संरक्षण प्रदान किया है और अन्य फलों को नहीं? इसका आखिर क्या रहस्य हैं?

हजारों साल पहले जिन ऋषि–मुनियों ने कल्पवृक्ष नारियल पर जो खोज की थी उसके सारे रहस्य सावेजी के सामने प्रत्यक्ष रूप से आने लगे, जैसे "प्रभुजी के चरणों में चढ़ाया नहीं जाता, चढ़ाना भी नहीं चाहिए (ऐसा हर धर्म में बताया गया है।) पर सूखा नारियल, सूखा चावल आदि मंदिर के पूजारी स्वीकार करते हैं। मगर कच्चे फल या सब्जी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि ऐसी वस्तुएं भेट स्वरूप करते हैं। मगर कच्चे फल या सब्जी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि ऐसी वस्तुएं भेंट स्वरूप नहीं करते, क्योंकि ऐसी वस्तुएं भेंट स्वरूप नहीं चढ़ायी जा सकती।" शास्त्रों की ये प्रथम और जरूरी बातें सावेजी के ध्यान में आई थी।

कल्पवृक्ष नारियल के सभी रहस्य के बारे में सावेजी ने मुझसे कहा था कि "नारियल के हर तरह से संरक्षण के लिए उनके बाहरी हिस्से को कवच के रूप में बना दिया है। और ऐसा इसलिए कि नारियल का फल ग्याहर महीनों में पकता है। और जब पूरी तरह से वह पकता है तब खुद टूटकर पेड़ पर से गिरता है और वह भी अधिक ऊंचाई से, तो प्रकृति के हिसाब से उसका संरक्षण और पवित्रता बनाए रखने अन्य फलों से अधिक संरक्षण असे जरूरी है। प्रकृति के इसी संरक्षण के कारण नारियल 'श्रीफल' है (हर इच्छा की पूर्ति करनेवाला) सर्वाधिक शुध्द, और पवित्र फल। नारियल की तरह सुपारी के पेड़ पर चढ़ने को भी मना ही है, क्योंकि इसकी रचना भी नारियल के पेड़ की तरह बिजली के खम्भे–सी–सीधी है। सुपारी, जिसकी श्री गणेश के रूप से में स्थापना होती है। इस कारण से इसकी रचना भी नारियल के फल के बाहरी हिस्से की तरह ही होती है जो कि वस्तुतः उसका कवच है। प्रकृति नारियल और सुपारी के पेड़ों की पवित्रता बनाये रखने के लिए पेड़ों पर चढ़ने की अनुमति नहीं देती। काफी ऊंचे, सीधे होन के कारण इसपर चढ़ना जान का खतरा भी होता है। सोचने की बात है कि जब प्रकृति बगैर मेहनत, खर्च और उचित समय पर खुद ही फल प्रदान करती है, तब भले आदमी जान जोखिम में डालकर, पेड़ पर चढ़ने की मूर्खता करने से क्या फायदा?"

शास्त्रों में नारियल को कल्पवृक्ष कहने के कुछ ठोस कारण हैं। जैसे, नारियल के पत्तों से गरीब भाइयों के घर बनते हैं। और झाडू भी बनते हैं। इसके रेशों से पांव – पोंछ और रस्सी भी बनती है। कई ऐसी चीजें बनती हैं जो गृह उपयोगी होती हैं। इस तरह नारियल मनुष्य की हर इच्छा और आमदनी की पूर्ती करनेवाला पेड़ है तभी तो इसे 'कल्पवृक्ष कहा गया है। इस पेड़ की एक और बात गौर करने लायक है। इस बात को सावेजी ने कुछ इस तरह से समझाया है "किसी भी पेड पर किसी हथियार से घाव कभी नहीं भरता। जैसाकि आपने देखा भी होगा कि किसी पेड़ की शाखा जहां से काटी जाती है वहां किसी जीव–जंतु के अंदर जानेसे पहले ही पेड़ कुछ ही दिनों मे उस जगह को छाल से ढंक देता है पर नारियल का पेड़ ऐसा नहीं कर पाता। यही कारण है कि वह अपने सूख चुके किसी (पत्ते, फल आदि) भी भाग को खुद ही अलग करके गिरा देता है।"

सावेजी को कल्पवृक्ष के बारे में जब यह अनुभव हुआ तब उन्होंने अस पर चढ़ना या उसे किसी भी तरह की क्षति पहुंचाना एकदम छोड़ दिया। उससे उन्हें भविष्य में काफी फायदा हुआ। पहले तो वे कच्चे व हरे नारियलन पेड़ पर चढ़नेवाले किसी अनुभवी व्यक्ति से उतरवाते थे पर अब ऐसा न करने से इसका खर्च भी बच गया। महत्वपूर्ण बात यह है कि कच्चे नारियल, जिनका वजन पत्तों पर टिका रहता था, इनके हटते ही पत्ते ऊपर की दिशा में बढ़ते थे जिससे उनको सूर्य का सम्पूर्ण प्रकाश नहीं मिल पाता था। पर जबसे उन्होंने नारियल तुड़वाना बंद किया तभी से पत्तों के नीचे की और झुके रहने के कारण इन्हे सम्पूर्ण रूप से सूर्य–प्रकाश मिलने लगा। इससे नारियल के उत्पादन में काफी वृध्दि हुई। इस कार्य–पध्दति के कारण सूखे नारियलों को ज्यादा दाम मिलने लगे और सूखे नारियलों

से सावेजी ने जो पौधे (शास्त्रीय तरीके से) तैयार किए उनकी मांग भी बढ़ने लगी और अधिक मुनाफा होने लगा (यानी सावेजी की पांचो अंगुलियां घी में थी) इसी तरह सावेजी देखते ही देखते रातों–रात अमीर हो गये।

जल सूचक पौधा

वर्तमान परिस्थिती को देखते हुए विव्दानों, महापुरूषों, और ज्ञानियों की यह बात सौ प्रतिशत सच जान पड़ती हैं कि अब जो विश्वयुध्द होगा वह जमीन, संपति अथवा सत्ता के लिए न होकर, सिर्फ जीवन की जरूरी पानी के लिए होगा। इस बात का सबूत सामने है। पहले लोग पेयजल की 'मुफ्त प्याऊ' बनवाते थे।, जबकि आज पानी बोतलों में भरकर बेचा जाता है। ऐसे में अगर विश्वयुध्द को रोकना है तो पानी का उपयोग साच–समझकर, उचित मात्रा में ही करना होगा।

सभी यह वास्तविकता जानते–समझते हैं, इसके बावजूद जो करना चाहिए, उस पर अमल नहीं करते। उदाहरण के लिए जब एक आदमी बाथुरूम में पेशाब करत है तो उसकी मात्रा अंदाजन 200 से 300 मि.ली. होती जबकि उसकी सफाई के लिए वह 10 से 15 लीटर पानी खर्च करता है। यह लापरवाही शहर और गांव दोनों जगह समस्या बन खडी है। ऐसी परिस्थिति रही तो फिर कृषि और जीवन कैसे संभव होगा? देखा जाये तो किसानों ने यह पानी की समस्या स्वयं की है! वह कैसे?

इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि जबसे किसानों ने आधुनिक कृषि–पध्दति को स्वीकार किया है तभी से पानी की समस्या पनपनी शुरू हुई है। इस बात को सावेजी ने अपने अनुभव के आध ाार पर यों कहा कि "किसानों ने जबसे संकरित (हाइब्रिड) बीजों का उपयोग करना शरू किया तभी से रासायनिक खाद का भी उपयोग करना आरंभ किया, जो ज्वलनशील होती है। पौधों को खाद की गर्मी से बचाने के लिए ज्यादा–से–ज्यादा जल सिंचन की जरूरत पड़ती है। जमीन सम्पूर्ण गीली हो जाने के कारण सूर्य की गर्मी से जमीन का तापमान बढ़ता है। इसी कारण जमीन के अंदर रहनेवाले जीवों को गर्मी से बचाने के लिए प्रकृति घास उगाती है। संकरित बीजवाली फसल की ऊंचाई कम होती है, जबकि प्राकृतिक घास ज्यादा ऊंचाई तक पनपती हैं। अब आधुनिक कृषि–पध्दति के वैज्ञानिक ने बताया है कि जंगली घास जब उखाडकर फेंकी जाती हैं तब खेतों में सिर्फ फसल ही फसल दिखाई देती हैं। इसलिए जब कड़ी धूप जमीन पर पडती है तप फसल को बचाने के लिए यानी फसल की हरियाली के लिए रासायनिक खाद और अधीक पानी की जरूरत महसूस होती हैं। इसलिए जब कड़ी धूप जमीन पर पड़ती है तब

फसल को बचाने के लिए यानी फसल की हरियाली के लिए रासायनिक खाद और अधीक पानी की जरूरत महसूस होती है। अब फिर खाद डालकर जल–सिंचन करते हैं। पानी बोरवेल या कुएं से निकालते हैं, जो क्षार के कारण भारी जल कहलाता है। कड़ी धूप में 70% पानी भाप बनकर उड़ जाता है (नमक तैयार करने की कार्य–पध्दति के समान)। तब खेतों में पानी का क्षार और रासायनिक खाद का क्षार जमा हो जात है, जिससे जमीन पत्थर जैसी कठोर, कड़क और सख्त हो जाती है। ऐसे में फसल की ज़डो को जब ताजी हवा नहीं मिल पाती, तो परिणामस्वरूप पौधे भी कमजोर होने लगते हैं। फसल की रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है और उन पर जीव–जंतुओं का हमला शरू हो जाता है। इसके हल के लिए आध ुनिक कृषि वैज्ञानिक कीटनाशक दवाइयां लेकर बाज़ार में खड़े रहते हैं जिसे किसान को मज़बुरन अपनाना हरी पड़ता है। इस तरह पानी का क्षार, खाद का क्षार और दवा का क्षार जब अत्याधिक मात्रा में एकत्रित हो जाता है तब जमीन के अंदर बसनेवाले केंचुएं और अन्य जीव मर जाते हैं, जिससे खेतों की जमीन पत्थर जैसी कठोर बन जाती है। ऐसीर जमीन को हल–बैल जुताई करने में असमर्थ होते हैं। फिर आधुनिक वैज्ञानिक ट्रैक्टर से जुताई करने का मार्ग बताते हैं जिसके दबाव से जमीन सिर्फ दब ही नहीं जाती, बल्कि मिट्टी के पिस जाने से पाउडर जैसी मुलायम बन जाती है, जिससे वह जमीन चिकनी और लसलसी (फिसलना) हो जाती है। तब बारिश के पानी का जमीन में उतरना और सोखना असंभव – सा होता है और खेतों में पानी फसल के साथ भर जाता है। प्रकृति से प्राप्त पानी खेतों में भरा रहेगा, तो नुकसान पहुंचता है, इसलिए फसल बचाने के लिए किसान उसे बाहर निकाल फेंकते हैं। यही कारण है कि बहुत सारे किसान खेतों में नाला, गड्ढे या तालाब सा बनाकर पानी को जमा करके उपयोग करते हैं। या कुएं में भरकर (रीचार्ज) उपयोग करते हैं। मगर अफसोस कि ये सारे प्रयत्न बेकार जाते हैं क्योंकि आमदनी से कहीं अधिक खर्च भी तो हो चुका होता है, उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि किसी खेत में सालाना 10 इंच बरसात होती है, पर वह किसान जो आधुनिक खेती से जुड़ा हुआ है, पूरे साल में 40 से 50 इंच ऊंचे स्तर तक पानी का उपयोग करता है! ताज्जुब की बात है कि किसान को ऐसे में पता नहीं होता कि बोरिंग या कुएं का जल–स्तर कितना नीचे चला गया है? किसान को क्या यह सच्चाई मालूम नहीं होती? सचमुच किसान इतना ना समज है की वह आधुनिक कृषि–पध्दति के जरिए इतना ठगा जाता है इसकि जानकारी ही नही!"

आधुनिक कृषि के कारण जल का स्तर नीचे जाता है इसके कई ठोस सबूत है। गुजरात के महेसाणा जिले में 20 साल पहले पानी का स्तर 30 से 40 फीट था, जो आज 2500 से 3000 फीट नीचे चला गया है। शायद आपका अनुभव भी कुछ ऐसा ही होगा। मेरे हिसाब से ऐसी परिस्थिती में आधुनिक कृषि–पध्दति के बजाय सेन्द्रिय कृषि की सावे–पध दति अच्छी है। क्योंकि इस पध्दति में खेतों में पानी कितना चाहिए, कितना नहीं, यह सूचना हमेशा मितली रहती है। साथ ही साथ जिस कुएं के पानी का स्तर नीचे चला गया हो वह भी पुनः बढ़ जाता है। इतना सब बगैर मेहनत और खर्च के? जी हॉ! क्योंकि सावेजी अपने फार्म में शास्त्रीय – पध दति का उपयोग करते हैं और उसी के आधार पर बगीचे में कब पानी देना है, कब नहीं, यह सुचना प्राप्त करते हैं। पूरे विश्व में सावेजी ने पहली बार एक ऐसा आविष्कार कर दिखाया है जिससे पानी की समस्या कभी भी हल की जा सकती है।

वह आविष्कार इस प्रकार हुआ थाः जब सावेजी का कल्पवृक्ष फार्म बनकर तैयार हो गया ळाा तब उसकी शोभा बढ़ाने के निमित्त उनकी लड़कियां (वत्सला और सुरेखा) बाजार से भिन्न–भिन्न प्रकार के पौधे और गमले ले आई थीं। उन्हीं में से दो पौधे क्रोटन के थे। आंगन में गमले में रखे इन दोनों पौधों पर सावेजी की अक्सर नजर पड़ती थी। उन दिनों सावेजी के पास कोई ज्यादा काम तो था नहीं, इसलिए बस क्राटन के पौध ो पर प्रयोग करने की इच्छा जागृत हुई और वह इस काम में लग गये।

दोनों पौधों पर अलग–अलग प्रयोग किये। उनके मन में प्रश्न था कि गमले के अतिरिक्त पानी नीचे के छेद के जरिए बाहर निकल जाता है, उसे अगर बंद कर दिया जाये तो ऐसे में पौधे की स्थिति क्या होगी? और उन्होंने एक गमले के नीचे का छेद मिट्टी से बंद कर दिया। दूसरे पौधे के बारे में उनका प्रश्न था कि अगर उसे पानी न दिया जाये तो वह कितने दिनों तक जीवित रहेगा? और पौधे की तब क्या दशा होगी? इसके लिए उन्होंने दूसरे गमले में पानी–सिंचन करने को बंद कर दिया।

दोनों पौधों के बारे में पांच दिनों के अवलोकन से यह पता चला कि पहले गमले के क्रोटन की जड़ें इतनी बाहर निकल आर्यी थीं कि मिट्टी पर संपूर्ण छा गयी थीं और वह जड़े 6 या 8 ईंच से ज्यादा लम्बी न थीं।

जड़ो का बाहर निकल आने के कारण था ताजा हवा का न मिलना। सावेजी ने गमले के छेद से मिट्टी निकाल दी और जड़ो को पूव्र स्थिति में आने के लिए छोड़ दिया।

दूसरे गमले का क्रोटन पौधा पानी–सिंचन न करने के बाद भी स्वस्थ खड़ा था पर उसके पत्ते जैसे ठंड लगती हो उस प्रकार, सिमटकर मुरझा गये थे। इससे यह पता चलता है कि पौधे को पांच दिनों तक पानी ने दिये जाने के बाद भ्झी उसमें खुद जीवित रखने की ऊर्जा मौजूद थी। उसी पौधे को पांच दिनों बाद पानी देकर सावेजी बागीचे में चल गये, और थोड़ी देर बाद घर लोटे। तब सावेजी ने सी पौधे को दुबारा देखा तो आश्चर्यजनक परिवर्तन पाया। अब उसी पौधे के पत्ते पानी मिलने से मुरझाये हुए न रहकर ऊपर की और खिल उठे थे। सावेजी ने पौाधे की ऊपरी डाल का हिस्सा तोड़कर देखा तो पानी टप–टप टपकने लगा। बस उनका आविष्कार यहीं पूरा हुआ। विश्व का एक महान आविष्कार जिससे आसानी से यह पता लगाया जा सकता है कि 'बगीचे में पानी–सिंचन कब करना हैं?'

क्रोटन के पौधे के आविष्कार के बारे में सावेजी ने मुझसे बताया था कि "अगर यही पौधा नाले की अगल–बगल में लगाया जाये तो जल–सिंचन की सूचना अक्सर यही प्राप्त हो सकती है। मैंने इस पर अमल करने के लिए इन्हें नाले की अगल–बगल में लगा दिया था। इससे फार्म की शोभा तो बढ़ी ही, साथ ही उनके पत्तों को मुरझाते देखकर जल–सिंचन का पता भी मिल जाता था। मैं अब तक इसी क्रोटन की सूचना के आधार पर जल–सिंचन करता आया हूं। यूं तो पहले–पहले पेड़–पौधों को जल समयानुसार देने के बारे में काफी सावधानियां बरतनी पड़ी थी मगर अग क्रोटन के कारण वैसी कोई परेशानी नहीं रही।"

विदेशों में जल–सिंचन की जानकारी के लिए अनेक आधुनिक इलेक्ट्रौनिक यंत्रो का उपयोग किया जाता हैं। जबकि सावेजी ने नाले के पास सिर्फ क्रोटन के पौधे लगाये हैं जिनके पत्तों के मुरझाने मा;ा से नमी के कम होने का पता तो चतला ही है साथ ही साथ यह भी सिध्द होता है कि गर्मी की ऋतु से जाड़े की ऋतु में पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है! पहले सावेजी रोजाना जल–सिचन करते थे, मगर अग उन्हें गर्मी में 25 दिन और जाड़े में 15 दिन बाद ही जल–सिंचन करना पड़ता है। शायद आपको प्रश्न होगा कि गर्मी में पानी कम क्यों लगता है? इसके कई वैज्ञानिक कारण है, मगर संक्षेप में मुझे इतना ही कहना है की यह तभी संभव है कि जब किसान सेन्द्रिय खेती करे।

जल–संशोधन केन्द्र–वर्धा के अध्यक्ष डॉ. तारक काटे, एक दिन अपने तमाम शोध–उपकरण और केन्द्र से जुड़े व्यक्तियों के साथ सावेजी से मिलने के लिए आये। उन्होंने एक ऐसी बात बतायी जो किसी को भी अचरज में डाल सकती है। सावेजी के गॉव में नारियल, चीकू, आम, केले के बगीचों में सभी के लिए जल–सिंचन की अपनी अलग–अलग पध्दति है। उन्होंने अपने उपकरणों से पानी खर्च होने की जानकारी हासिल की और एक रिपोर्ट बनायी। रिपोर्ट के बारे में बताते हुए डॉ. काटे ने बताया कि "15 से 20 साल पुराने पेड़ के लिए आधुनिक कृषि–पध्दति उपयोग करनेवाले और तने के पास रिंग बनाकर पानी देने वाले किसान एक दिन में करीबन 140 से 150 लीटर पानी रोजाना खर्च करते हैं। अगर जल का बूँद – बूँद सिंचन यानी ड्रिप (जो महंगी और ठगनेवाली पध्दति है) अपनाते हैं तो एक दिन में 70 से 80 लीटर पानी खर्च होता है। जबकि सावेजी की सिंचन – पध्दति, जो 10 से 12 फीट के अंतर पर बनी नाली–पध्दति है, उस में एक दिन में मात्र 15 से 20 लीटर खर्च होता है"

पाठक बंधुओ फ जरा सोचिए कि कितने पानी की बचत हुई? यही कारण है कि आज तक सावेजी के कुएं का जल–स्तर 40 फीट से नीचे नही गया। जबकि गांव के सारे बोरवेल और कुओं का पानी 125 फीट नीचे चला गया है। गर्मी के दिनों में गांव की महिलाएं आज भी सावेजी के कुएं से ही पानी भरनें आती हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने तो पशु–पक्षियों के लिए भी पानी पीने की खातिर एक हौद का निर्माण किया है। मित्रो ! सावेजी का यह भी एक 'सेवा' करने का रूप है।

कल्पवृक्ष फार्म का उत्पादन और आमदनी

हर एक बच्चे को अपनी मॉ का दूध पीने का अधिकार होता है, पर उसका लहु चूसने का नहीं। उसी तरह धरती भी हमारी मॉ है जिसका दूध हमें दाने के रूप में प्राप्त होता है। मगर आज आधुनिक कृषि–पध्दति के जरिए हमने मॉ के दूध के साथ–साथ उसका लहू भी चूसना शरु कर दिया है जिसके कारण वह दिन–प्रतिदिन कमजोर होती जा रही है। अब खेतों में हम कितनी भी रासयनिक खाद छींटे मगर उत्पादन नही बढ़ता। पर सावेजी ने धरती को मॉ ही समझकर जब सच्चे दिल से उसकी सेवा की और उसको जलाने के बजाय अपने सेन्द्रिय कृषि प्रयोग के माध्यकम से खेती की तो 1960 से लकर आज तक उत्पादन कभी कम नहीं हुआ, बल्कि हर साल बढ़ही जा रहा है।

आधुनिक खेती से एक नारियल के पेड़ जो कभी 100 से 125 फल देता था, सेन्द्रिय खेती से वही पेड़ अब 300 से 350 फल एक साल में देता। है। चीकू का हर प्रति एकड़ 1500 से 2000 किलो है। प्रति वर्ष गेहूं की फसल के लिए अनुकूल जमीन न होने के बावजूद एक एकड़ से 500 से 600 किलो उत्पादन प्राप्त होता है। दलहन फसलों से मूंग प्रति वर्ष एक एकड़ में सावेजी को 500 से 600 किलो, चना (बगैर सिंचन के) 300 से 400 किलो और दाल 200 से 300 किलो प्राप्त होता है। सावजी को अपनी खेती–पध्दति के जरिये आज 10 रु की लागत और कम महनत से 100रु. की कमाई होती है। पर उन्हें तो यह 10 रु. का खर्च भी ज्यादा लगता है। इसलिए उन्होंने खर्च और कम करने की एक योजना बनायी जिसके जरिये सफलता मिली तो मुनाफा और भी बढ़ा। इस योजना की चर्चा हम आगे करेंगे।

कल्पवृक्ष फार्म पर आनेवाला हर व्यक्ति सावेजी से यह सवाल जरूर करता हैं –'सावेजी, आपको दस एकड़ जमीन से सालाना लागत काटकर कितना मुनाफा प्राप्त होता हैं? इस सवाल का जवाब आध्यात्मिक और गांधीजी के सिध्दांतों पर चलनेवाले प्राकृतिक प्रेमी सावेजी कुछ इस तरह से देते हैंः मुझे अपने उत्पादन से सिर्फ मुनाफा होता है, नुकसान कुछ भी नहीं। हर साल हमारे यहां काफी बारिश होती है। इसी तरह आंधी–तूफान आने से केले–चीकू के पेड़ अपने फल–फूल के साथ जमीन पर गिर जाते हैं, इसके बावजूद मुझे मुनाफे को लेकर कोई चिन्ता नहीं होती। इसके पीछे मूल बात यह है कि जिस आधुनिक खेती के कारण टोंडली की तरकारी में अन्य किसानों की तरह मुझे भी नुकसान उठाना पड़ा था, उस प्रकार कानुकसान सेन्द्रिय खेती अपनाने के बाद मुझे नहीं उठाना पड़ता। क्योंकि मेरी कार्य–पध्दति से जुताई, खाद, दवाई, खरपतवार आदि में मेरा कोई खर्च नहीं। इसलिए एक दो पेड़ गिर भी जायें, तो मेरी खुशी में कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, आमदनी थोड़ी कम जरूर हो जाती है, पर जहां मुनाफा हो वहॉ, थोडे नुकसान से क्या परेशानी। आप पुछेंगे वह भला कैसे? (पुनः सावेजी आध्यात्मिक भाव में डूबकर बातें सामने रखते हैं।) तो इतना जातन लिलिऐ की दाने–दाने पे लिखा है खानेवाले का नाम। अगर पेड़ ये फल गिरे हैं, तो हो सकता है जमीन में रहनेवाले केंचुएं और अन्य जीवों के निमित्त गिरे हों! क्योंकि उन्हें भी तो फलों का सेवन करने का पूरा हक है क्योंकि वे ही तो उपजाऊ जमीन (पेड़ों) के लिए सेन्द्रिय पदार्थ से खाद बनाकर देते हैं। अब आप ही बताइए कि नुकसान कहां हुआ? और अब जीवन में कैसी चिन्ता या परेशानी? इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कृषि जैसे धार्मिक कार्य में नफा–नुकसान आदि बातों के लिए कोई स्थान नहीं। जितना प्रकृति से मिला है उतने में ही संतुष्ट रहो और अपना काम करते जाओ।" सावेजी ने इतने सुंदर विचार सामने रखने के बावजूद किसान को किसी तरह की संतुष्टि नहीं होती यांनी वे अपने सवाल का अधुरा जवाब मिला है, ऐसा ही समझते हैं।

जैसे घर में किसी बच्चे का जन्म होता है तो पूरा घर खुशी से आनंदित हो उठता है। मॉ भी खुशी से बच्चे के बड़े होने की जिम्मेदारी संभ्झालती है। निरोगी आहार (अन्न, फल–फूल) का सेवन करती है ताकि बच्चे को दूध पिलाती है तब क्या आप उससे यह सवाल करते हैं कि माताजी! जरा आप बतायेंगी बच्चे को कितना लीटर दूध पिलाती हैं? और उसके लिए आपने कितने, फल और अन्न का सेवन किया? क्या आप में ये हिसाब के प्रश्न, एक मॉ से पूछने कि हिम्मत है? नहीं ना? तो मेरे भाई! फिर धरती मॉ के बारे में ऐसे सवाल क्यों करते हैं? जिसके देह को हर बार हल और ट्रक्टर से चीरते (जोतते) हैं, उस पर बड़े–बड़े यंत्रो का उपयोग करते हैं, उसे रासायनिक खाद और जहरीली दवाइयों से जलाते हैं। इतने सारे अत्याचार करते हैं। फिर भी धरती मॉ हंसते – हंसते एक दाने के बदले हजारों दाने देतरी है, ताकि उसके बेटे भूखे न सोयें। और आप लोग हैं कि वेदेशी संस्कृति के रंग में रंगकर किन्तु भारतीय संस्कृति की चद्दर

ओढ़कर पूछते हैं कि धरती मॉ के दूध (दाने) से कितनी आमदनी हुई? कितना खर्च हुआ? शायद आपको अपनी भारतीय संस्कृति की कोई जानकारी नहीं। सक्षेप में इतना ही जान लीजिये कि हमारे पूर्वज खेत में हल जोतने से पहले धरती मॉ की हल्दी, कुंकुम, चावल और नारियल तोड़कर पूजा करते थे। प्रार्थना करते हुए माफी भी मांगते थे कि 'हे धरती मॉ! हमें माफ करना कि अन्न प्राप्त करने के लिए हम आपके देह को चीरते हैं। हमारे इस उपराध को माफ करते हुए एक बीज से हमें हजार अमृत स्वरूप के दाने प्रदान करने की कृपा करना। यही हमारी विनती है।' यह थी हमारी भारतीय संस्कृति। जबकि विदेशों में तो मॉ के दूध का भी व्यापार होता है। उस नीचता के बारे में आपने कभी सोचा है? फिर भी अगर आप लोगों को इस सवाल का जवाब चाहिए ही, तो बस इतना जान लें कि सावेजी को, जिनका कल्पवृक्ष फार्म 10 एकड़ जमीन पर है, प्रतिवर्ष एक एकड़ से 50 हजार रूपये का मुनाफा होता है। यह जानकारी मैंने सावेजी से कुछ इस तरह से पाई हैं।

सावेजी ने बताया कि "मई माह के अंत में नवाबी कोलम नाम के धान (चावल), जो मेरा अपना देशी–बीज है, उसी से मैं पौधे तैयार करता हूं। जुलाई में जब वर्षा होती हैं तब कीचड़ (लेपा करना) करके मैं 1.5 से 2 फीट के अंतर पर दो–दो तैयार पौधे लगाता हूं। एक एकड़ में 8 से 10 किलो बीज के बने पौधे की जरूरत होती है और दस लोग मिलकर एक ही दिन में सारे पौधे लगा लेते है।

धान की फसल लगाने के 22 दिन बाद मैं, सीताफल, करंज, नीम के हरे पत्ते जमा करता हूं। यह सारे पत्ते दो बोरी भर के होते हैं। इन सारे पत्तों को कूट–कूट कर मैं चटनी बनाता हूं। यह चटनी धान के खेतों में थोडें–थोड़े अंतर पर डाल कर मिट्टी में पांव से दबा देता हूं। इसके बाद फसल तैयार होने तक खेतों में दोबारा कोई भी नहीं जाता।

इस प्रकार एक एकड़ से 1500 से 2000 किलो तक धान का उत्पादन मिलता है। माना की 1500 किलो ही धान का उत्पादन मिला, तो हमें पॉलिश के बाद 1150 किलो चावल मिलता है। मेरा यह चावल 25 रुपये किलो के भाव से मेरे घर से लोग ले जाते हैं। अब सिर्फ धान के उत्पादन से मुझे कितना मिला?

आमदनी :–

1) 1150 किलो चावल X 25 रु. = 28,750 रु.
2) धान से प्राप्त सेन्द्रिय पदार्थ 3000 किलो X 1 रु. = 3,000 रु.

कुल आमदनी = 31,750 रु.

खर्च :–

1) जमीन का लेपा (कीचड़) करना = 200 रु.
2) पौधे बनाना और लगाने का 10 लोग X 40 रु. = 400 रु.
3) चटनी बनाकर लगाने का 2 लोग X 40 रु. = 80 रु.
4) धान कटाई और दाना अलग करना 10 लोग X 40 रु. = 400 रु.
5) धान से चावल का पॉलिश तक = 500 रु.

कुल खर्च = **1580 रु.**

मुनाफा :–

1) आमदनी = 31750 रु.
2) खर्च = 1,580 रु.

धान से मुनाफा (A) = **30,170 रु.**

अक्तूबर में साधारण जुताई करके जमीन को धूप में थोड़ो तपने देते हैं जिससे कि पुराना घास सूख जाये। धान के खेतो में मैं 3 फीट X 20 फीट के छोटे–छोटे बांध बनाता हूं। एक एकड़ में जो छोटे बांध बने होते हैं उनमें 2 ट्रॅक्टर सूखा हुआ गोबर खाद के रूप में डालता हूं। सारी तैयारी होने के बाद गेहूं की फसल लगाता हॅं।

गेहूं की फसल के लिए मैं मेरे अपने देशी–बीजों का ही उपयोग करता हूं। गेहूं की दो कतारों के बीच में 9 इंच और दो पौधे में 1/2 इंच का ही अंतर रखता हूं। बांध की दीवार के ऊपर 3 फीट के अंतर में सरसों के बीज लगाकर प्रथम जल–सिंचन करता हूं। प्रथम जल सिंचन के 25 दिन बाद दूसरी बार पानी सिंचन करता हूं। जब गेहूं 70% से 80% तक बड़ा हो जाता है तब मैं तीसरा जल–सिंचन करता हूं। गेहूं में घास निकलती है, जरूरत हो तो उसे काटकर वहीं बीछा देता हूं। इस प्रकार गेहूं की फसल से 500 से 600 किलो तक उत्पादन मिलता है।

आमदनी :– गेहूं का उत्पादन 500 किलो X 8 रु. = 4,000 रु.

खर्च :– जुताई, बांध और मजदूरी का सारा खर्च सरसों से मिलता है।

मुनाफा :– गेहूं से आमदनी (B) = 4,000 रु.

गेहूं की फसल के बाद अब मूंग की फसल लेनी होती है। गेहूं और सरसों का उत्पादन लेने के बाद बांध की दीवार ठीक ठाक करनी पड़ती है। मार्च के पहले सप्ताह में हम देशी मूंग के बीज बोते है। हम हाथ के,

औजार की सहायता से दो लाइन की बीच में 1 फीट का अंतर और दो पौधे के बीच में 9 इंच का अंतर रखते है। इस प्रकार एक एकड़ में घर के 8 किलो मूंग के देशी बीज लगते है। इस काम को 3 लोग पूरा करते हैं।

मूंग की फसल के लिए हम कोई भी खाद नहीं डालते। बीज को अंकुरित करने के लिए प्रथम जल सींचा जाता है। मूंग जल्दी से उग जाते है इस कारण वहॉ छांव हो जाती है और छांव में घास नहीं निकलती। 45 से 55 दिनो में तो मूंग की फसल तैयार हो जाती है। जब यह मूंग की फसल पककर काली होती है तब 60 से 65 दिनो बाद प्रथम बार उसे तोड़ लेते है। इस के बाद फिर दूसरी बार जल–सिंचन होता है। दोबारा जब मूंग तैयार होता है तो फिर तोड़ लेते है। तीसरी बार मूंग तोड़ने से पहले बारिश शुरु हो जाती है। इस प्रकार एक एकड़ से 500 से 600 किलो मूंग का उत्पादन मिलता है।

आमदनी :– मूंग का उत्पादन 500 किलो X 25 रु. = 12,500रु.

खर्च :–

1) बीज बोने की 3 लोगों मजदूरी : 3 X 40 रु. = 120 रु.
2) मूंग दो बार तोड़ने की 6 लोगों की मजदूरी : 6 X 40 रु. = 240 रु.
3) दाना अलग करके सफाई करने का
   9 लोगों का खर्च : 9 X 40 रु. = 360 रु.

कुल खर्च = 720 रु.

मुनाफा :–

1) मूंग की आमदनी = 12,500 रु.
   खर्च = 720 रु.
   मूंग से मुनाफा (C) = **11,780 रु.**

अब दोबारा धान की फसल लगाने से पहले गेहूं के सेन्द्रिय पदार्थ खेत के एक कोने में एकत्रित कर नरम गद्दा समान (पलीहर) बीछा लेता हूं। उसे जलाकर सारी जमीन को गरम कर लेता हूं, जो धान के छोटे पौधे बनाने से पहले जरूरी है। जिस प्रकार धान का सेन्द्रिय पदार्थ हम बेचते है ठिक वैसे ही गेहूं का सेन्द्रिय पदार्थ भी पशुधन के लिए बेच सकते हैं। मगर यह बात तभी संभव है जब सरकार सबसीडी देने के बजाय शहर का कूड़ा–कचना (सिर्फ सेन्द्रिय पदार्थ) गांव में वापस लाये। यह बात कभी भी संभव नहीं है। क्यों? वह बात आप अच्छी तरह से जान चुके हो।

हमने गेहूं और मूंग में जो जल सींचा उसके सारे खर्च, जैसे कि बिजली, पंप और औजार का मिलाकर कुल 1500 रुपये खर्च हुए।

A) धान का मुनाफा = 30,170 रु.
B) गेहूं का मुनाफा = 4,000 रु.
C) मूंग का मुनाफा = 11,780 रु.

कुल मुनाफा = 46,450 रु.
सिंचन – खर्च = 1,500 रु.

एक वर्ष में एक एकड़ से कुल मुनाफा= 44,450 रु.

अशोकभाई! यह तो सिर्फ एक एकड़ मुनाफे की बात हुई अब मूंग के एक पौधे ने जो नाइट्रोजन जमीन में रखा, उसका भी गणित तो देखो।

एक एकड़ मे मूंग के 50,000 पौधे लगते हैं। मान लो कि एक पौधा सिर्फ 5 ग्राम ही नाइट्रोजन जमीन में रखता हो तब भी 50,000 पौधे X 5 ग्राम = 250 किलो शुध्द नाइट्रोजन जमीन को प्रकृति की ओर से मुफ्त मिला न !!

अगर किसान बाजार से यूरिया की एक बोरी लाता है तो 100 किलो रासायनिक खाद में उसे सिर्फ 40 ग्राम नाइट्रोजन मिलता है। इस जहरीले रासायनिक खाद की कीमत भी चुकानी पड़ती है। जबकि हमें तो 250 किलो शुध्द नाइट्रोजन मुफ्त मिला। यह सारी गिनती देखकर मेरा दावा है कि हर किसान एक एकड़ जमीन से कम–से–कम 50,000 रुपये का मुनाफा तो कमा सकता है।"

'संघवी फार्म' का श्री गणेश

सामान्य रूप से ऊंचे उठनेवाले नरियल (वेस्ट कोस्ट टॉल) के लिए 25 x 25 x 25 फीट का चौड़ा अंतर रखा जाता है। इसी माप के अनुसार नारियल के पौधे लगाने के निशान लगाये गये थे। सभी पौधों को यथोचित पूरब पश्चिम से सूर्य–प्रकाश मिले, इसलिए रस्सी का सहारा देकर एक कतार में उत्तर–दक्षिण में गड्ढे खोदने के प्रथम निशान लगाये गये। गड्ढा खोदने का काम आगे बताये गये माप के मुताबिक ही 3 x 3 x 3 फीट का तय किया गया था। जिस प्रकार कुआं – खुदाई का काम कॉण्ट्रैक्ट पर दिया जाता है उसी प्रकार गड्ढ़ा खोदने का काम भी दिया गया था। नारियल के लिए गड्ढ़े खोदने की लागत समान्य रूप से तीनप रूपये प्रति गड्ढ़े आती थी। मगर संघवी फार्म की जमीन की परिस्थिती देखकर कॉण्ट्रैक्टर ने एक गड्ढ़े के पांच रुपये तय किये थे। बेचारे मजदूरों ने यह समझकर काम लिया कि रोजाना 15 से 20 गड्ढ़े तो आसानी से खोदे जा सकेंगे, लालच में आकर गड्ढ़े खोदने का काम हाथ में तो ले लिया था, मगर उनके हथियार भी टेढे होकर टूट जाते थे। एक इंच से भी ज्यादा मोटा हथियार मुड़ जाता था। इस बात से आपको अंदाजा हो ही गया होगा कि कैसी थी संघवी फार्म की बंजर (वेस्ट लेण्ड) जमीन की परिस्थिती? इसके बावजूद बेचारे मजदूर जैसे तैसे काफी पसीना बहाकर सिर्फ दस गड्ढ़े ही खोद पाये थे।

बुध्दिजीवी, मनुष्य के हाथों सख्त होती महेनत को देखकर मरा तो मन ही भर आया था। एक बार तो बाग लगाने का काम छोड़ देने को दिल किया। मैंने अपने मन की बात सावेजी को बतायी। सावेजी ने अपने जीवन के अमूल्य अनुभव और निरीक्षण को याद करते हुए कहा "मेरा कल्पवृक्ष फार्म तो पूरी तरह से विकसित हो चुका है।

"वैज्ञानिकों का कहना है कि दो नारियल के पौधों को अच्छी तरह से विकसित करने के लिए 25 x 25 x 25 का अंतर रखना जरूरी है, क्योंकि यह ऊंचे उठनेवाली नारियल की प्रजाति है। उसकी उम्र करीबन 80 से 100 साल की होती है। पौधों से पेड़ बनने में करीबन सात से आठ साल का समय लगता है। और उसके बाद अगर सही देखभाल रही, तो ही 10 से 12 नारियल का उत्पादन मिलता है। यह है आज के वैज्ञानकों का निष्कर्ष। जबकि मेरे नजरिये से ये बातें गलत हैं। असल में नारियल को 25 x 25 x 25 फीट के अंतर की जरूरत नहीं, बल्कि उतने विस्तार में सूर्य–प्रकाश की जरूरत होती है। अगर हम उतने ही विस्तार का सूर्य – प्रकाश पेड़ को दें तब भी नारियल के पेड़ अच्छा उत्पादन देंगे। अब जब हमें गड्ढ़े खोदने में इतनी कठिनाई हो रही है तो हम नये प्रयोग के तौर पर कम गड्ढ़े बनाकर भी यह बातें सिध्द कर सकते हैं। नये प्रयोग में अब हम दो–दो नारियल के पौधे एक साथ लगायेंगे और उनके लिए सूर्य–प्रकाश की सही जगह छोड़ देंगे। दो–दो पौधों के बीच में 25 फीट का अंतर रहेगा और दूसरी कतार पहली कतार से 50 फीट के अंतर पर होगी। इस प्रकार अग नया अंतर 25 x 25 x 50 फीट का रहेगा। इस हिसाब से 625 वर्ग फीट का अंतर हर पेड़ को मिल जायेगा।जस दिशा में सूर्य–प्रकाश मिलता हो उस तरफ मुडना वनस्पति – जगत का स्वभाव रहा है। इसी का फायदा हम संघवी फार्म में लेंगे। अगर हम 25 x 25 x 25 फीट का अंतर रखकर नारियल के पौधे लगाते हैं, तो हमें एक एकड़ में 70 गड्ढ़े करने पड़ते हैं। जबकि नये प्रयोग में 25 x 25 x 25 फीट के अंतर के मुताबिक अब हमें सिर्फ 42 गड्ढ़े ही करने पड़ेगे और नारियल के 84 पौधे लगेंगे। इससे हमें कई फायदे भी होंगे। गड्ढ़ की लागत कम होगी, एक ही पौधे लगेंगे। इससे हमें कई फायदे भी होंगे। गड्ढे की लागत कम होगी, एक ही पौधे से दूसरे की भी सारी जरूरते पूरी होगी और दो पेड़ साथ–साथ फलेंगे – फूलेंगे भी। दो कतारों के बीच का 50 फीट का अंतर सम्पूर्ण रूप से खाली रहेगा, जहां हम अन्य फसलन लगा पायेंगे। इस नये प्रयोग को लागू करने में अब हमें गड्ढ़े के माप में सुधार करना होगा और नये गड्ढ़े का माप 3 x 3 x 5 फीट का रखना होगा। अशोक भाई, अगर आपको नया प्रयोग स मझ में आया हो तो हम आगे बढ़े।"

नये प्रयोग और बीज

"जबसे सरकार ने औद्योगिक क्रांति के तहत नये–नये कारखाने लगाने के लिए किसानों की जमीन हड़प ली है, तभी से खेतों में का करनेवाले मजदूर नहीं मिलते। जबसे गॉवो में कारखानों का निर्माण हुआ है, जब किसी कारणों से कारखानों में काम नहीं मिलता, तभी मजबूरी में वे खेतों में काम करने आते हैं। कई बार कारखानों में काम नहीं मिलता, तभी मजबूरी में वे खेतों में काम करने आते हैं। कई बार कारखानों में काम नहीं मिलता, तभी मजबूरी में वे खेतों में काम करने आते हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि फसल और फल जब बिलकुल तैयार होते हैं, ठीक उसी वक्त उसे काटने–तोड़ने के लिए मजदूर नहीं मिलते। बार–बार नुकसान भी उठाना पड़ता है। इसी कारणवश गॉव के कई पारसी भाइओं नें अपने तैयार बाग भी बेच डाले है। इसलिए जैसे–जैसे हमें अनुभव मिलता जायेगा वैसे–वैसे आगे बढ़ने में ही समझदारी है। दूसरी बात, हम संघवी फार्म का चार हिस्सों में बांट देंगे और सभी हिस्सों में अलग–अलग फसल लगायेंगे। एक ही प्रकार की फसल बोने से कई बार भारी नुकसान का मुंह भी देखना पड़ता है। पहले पॉच एकड़ के विस्तार में करेंगे। इस प्रकार की कृषि के पीछे मेरा तो यही अनुभव है कि सभी किसान अपने ही गॉव के 7 से 10 किलोमिटर के अंतर्गत होनेवाले बीजों का उपयोग करना ही उचित समझे, क्योंकि ऐसे बीज उसी विस्तार की जमीन और पर्यावरण के साथ घुले–मिले होते हैं। तभी तो देशी बीजों से अपेक्षित उत्पादन मिलता है।"

सावेजी को खुद बीज के बारे में जो अनुभव था कि "जैसे सात गॉव के बाद बोली में बदलाव आता है, उसी प्रकार जमीन, पानी और वातावरण में भी बदलाव होता है। जबकि आधुनिक कृषि–विज्ञान हमें बताता है कि कोई भी वृक्ष या फसल किसी भी जमीन पर बढ़ेंगे। में भी मानता हूँ की वह जरूर बढ़ेंगे, लेकिन वातावरण अनुकूल न होने के कारण फलेंगे – फूलेंगे नहीं यानी हम उसे अप्राकृतिक रूप से बड़े जरूर कर सकते हैं, मगर उस पर निर्धारित उपज कभी नहीं मिल सकती। समझ लो की आधुनिक कृषि योजनाओं के तहत वे निर्धारित उपज लेते हैं, पर कितनी कीमत चुकाकर? वैसे कई बार उसमें भी तो सफलता नहीं मिलती और किसान की पूरी लागत पानी में चली जाती है। उदाहरण के तौर पर भारतवासिओं को सागवान–बाग के पीछे पूँजी लगवाकर लोगों को ठगा गया है। कागज पर सपनों का महल बनाकर, गलत–सलत तरीके से कई बड़ी–बड़ी कंपनिओं ने लोगों को लूटा है। आज कहां है वे सागवान के पेड़? और कहां है वे सागवान की इमारती लकड़िया? ताज्जुब तो तब होता है कि जिन कृषि वैज्ञानिकों को भारत में ही उगनेवाले सागवान के पेड़ की जानकारी नहीं, वे ही कृषि–पंडित बन बैठे हैं! और उपर से भारत के किसानों पर विदेशी घूस खाकर लाद दी है वहॉ की कृषि–पध्दति और अनुपयोगी नपुंसक बीज! कहां हमारी अलग संस्कृति, वातावरण और जमीन, और कहां विदेशी संस्कृति, वातावरण और जमीन! अगर कोई विदेशी भारत देश की यात्रा पर आता है तो सावधानी बरतने के लिए वह अपने देश का पानी भी लाता है। अगर गलती से भारत का पवित्र गंगाजल उस विदेशी के पेट में गया तो उसे दस्त हो जाता है। और उससे तैयार की हुई फसल? संकरित बीज याने चने जैसी प्रजाति जिनके गुण–धर्मो (जिनेटिक) के साथ हस्तक्षेप यानी छेड़खानी की गई होती है, ऐसे उत्पादन का कम–से कम 6 से 8 फीट बढ़नेवाला भारतीय इन्सान जब सेवन करता है, तब तो उसकी क्या हालत होती है? नतीजा आज सबके सामने है। आजकलकी नई पीढ़ी संकरित बीजों जैसी चने के पौधे – सी बौनी होती जा रही है यानी 'जैसा खा रहे है अन्न, वैसा बन रहा है सभीका तन–मन।" यह भी सोचने की बात है कि जो बीज फिर से बोने अंकुरित न हों, वैसे बीज किस काम के? वैसे नपुंसक बीजों के उत्पादन के कारण ही आज समाज में नपुंसकता बढ़ रही है। बीजों के साथ – साथ अब तो विदेश से नपुंसकता दूर करनेवाली वी – 2, व्याग्रा आदि दवाइयां भी आयी हैं। ये तो हुई सिर्फ विदेशी बीजों की बाते। मैंने आपको पहले बताया था कि समुद्र से प्राप्त नारियल से मैंने गोपालबाग में पौधे तैयार किये थे। उन्हीं पौधों को मैंने पहली बार अपने बड़े भाई के बाग में लगाया था। उन पौधों के पेड से सात साल के बाद फल मिले थे। धीरे–धीरे वही पेड़ हमारे पर्यावरण और जमीन के साथ हिल–मिल गये थे। उन्हीं के परिपक्व नारियल से मैंने दुबारा पौधे बनाये थे। तब उसके विकसित पेड़ पर छह साल में फल आये थे। मैंने पहली बार अपनी मेड़ो पर नारियल लगाया था। उस समय मुझसे कुछ गलतियां हुई थी, फिर भी पॉच साल में ही फल लगे थे। जब मैंने कोई भी गलती नहीं की और सम्पूर्ण रूप से नारियल चीकू का नया बाग लगाया, तबसात साल की जगह, सिर्फ चार साल में ही नारियल और तीन

साल में चीकू का उत्पादन मुझे मिला था। इस प्रकार जमीन, पर्यावरण और सेन्द्रिय पदार्थ की कार्य–पध्दति से क्या–क्या परिणाम होते हैं? वह आपके सामने हैं। मेरे कल्पवृक्ष फार्म में मधुमक्खी के व्दारा अच्छी तरह से तैयार हुए मातृवृक्ष के अच्छे पौधों का सही परिणाम अब आपको संघवी फार्म में भी देखने को मिलेगा। यूं तो कइयों को का सही परिणाम अब आपको संघवी फार्म में भी देखने को मिलेगा। यूं तो कइयों को बोलने का मौका भी मिलता है कि मैंने पहले जो आधुनिक कृषि–विज्ञान का उपयोग किया था, उसी के कारण मुझे अच्छे नतीजे मिले हैं। जबकि संघवी फार्म विश्व का ऐसा प्रथम फार्म होगा, जहॉ एक बूंद भी रासायनिक खाद, दवाइयों या आधुनिक क1षि के तकनीकी ज्ञान का उपयोग नही होगा। हम आशा रखें कि हमें प्रभुजी जरूर सफलता प्रदान करेंगे।"

"देशी नारियल के पौधे जैसी ही सफलता मुझे चावल, गेहूं, मूंग, चने और दाल के देशी बीजों में भी मिली है। मेरे पास मेरे पूर्वजों के रखे असली 'नवाबी कोलम' चावल के बीज हैं। सेन्द्रिय खेती व्दारा मैं उसी की फसल हर साल उगाता हूं। पिछले 40 साल से मेरा एक बार भी उत्पादन नहीं घटा, जबकि ग गॉव के अन्य किसानों को तो बाजार से लाये संकरित बीज के कारण सर पटक–पटक कर रोने की नौबत आ गई। जब कोई किसान पूरी तरह से हार जाता है तब वह मेरे दरवाज पर आता है और तब मदद करने के निमित्त मैं अपना देशी बीज देता हूं। मैं अपने कल्पवृक्ष फार्म से नारियल के पौधे बेचता हूं। वे सारे पौधे, जो शास्त्रीय पध्दति से तैयार किये गये होते हैं। किसान को सरकारी योजना तहत फायदा मिले इस उद्देश्य से सरकारी अधिकारीयों से मैंने कई बार कहा भी कि उसे जांच करके मुझे सरकारी प्रमाण – पत्र दीजिये; मगर नहीं, आज तक मुझे प्रमाणपत्र नहीं मिला। खैर, मुझे अब इस बात की फिक्र नहीं? क्योंकि पिछले 44 साल से बगैर किसी प्रचार–प्रसार के मेरे 40 हजार नारियल के पौधे यूं ही बिक जाते हैं। आज तक एक भी किसान शिकायत करने नहीं आया कि मेरे पौधे पर फल नही लगे। मैं सिर्फ पौधे बेचने में ही दिलचस्पी नहीं रखता, बल्कि मेरे जीवन का उद्देश्य है कि मेरी तरह हर किसान हर तरह से समृध्द और सुखी हो। मेरी इसी भावना के कारण जिस प्रदेश (केरल) में सबसे अधिक नारियल होते हैं वहॉ के पौधों में अब वही पुरानी शक्ति न होने के कारण मेरे नारियल के पौधों की खूब मांग निकली है। चेम्बर ऑफ कॉमर्स (कोलकाता) के प्रेसिडेंट श्री वी. एस. अग्रवाल 3000 नारियल के पौधे ले गये थे, वे आज वहॉ काफी अच्छी तरह से फूल–फूल रहे हैं। इसका भी प्रमाण–पत्र मेरे पास आया है।"

क्योंकि किसान को सरकारी योजना तहत बगीचा विकास का फायदा मिले। सारी बातें अच्छी तरह समझ लेने के बाद उस वक्त हमने दो–दो पौधे एक साथ लगाकर शुरूआत की थी। पॉच एकड़ में खोदे गये सारे गड्ढ़ो के सुर्य–ताप से तपने देने के बाद सावे खेती–पध्दति के बाध ाार पर भर दिया। केले के लिए उसी तरह से गड्ढ़े भरे गये। निशान लगाकर पूरे पॉच एकड़ जमीन की पहील और आखरी जुताई बड़े ट्रैक्टर से करवा ली गयी। मिट्टी की मात्रा नहीं के बराबर थी इसलिए संघवी फार्म के पास जो तालाब था उससे मिट्टी निकालकर जरूरत के मुताबिक उसे बिछा दिया गया। कल्पवृक्ष फार्म के समान ही यहॉ नारियल, केला और सब्जियां लगायी थीं। पानी–सिंचन के लिए वही मेड़ और नाला (ट्रेंच – प्लेटफार्म) बनाने की सावे – पध्दति थीं। सावेजी ने नारियल के पौधों के बीच में चीकू की कलम नहीं लगायी। ऐसा आखिर किस लिए?

सावेजी ने चीकू की कलम न लगाने का कारण समझाते हुए कहा कि "नारियल और चीकू साथ में लगाने का मेरा जो प्रथम प्रयोग था वह मरी एक बड़ी भूल थी क्योंकि मैंने नारियल के पेड़ पर चढ़ने की मनाई कर रखी थी जिसके कारण मैने देखा कि एक परिपक्व नारियल या उसका पत्ता जब पेड़ पर चंढ़ने की मनाई कर रखी थी। जिसके कारण मैने देखा कि एक परिपक्व नारियल या उसका पत्ता जब पेड़ की इतनी ऊंचाई से गिरता है तो, चीकू और शाखा के साथ भारी रूप से टकराने से फल गिर जाते हैं।मेरी खेती–पध्दति के नियम शाखा के साथ भारी रूप से टकराने से फल गिर जाते हैं। मेरी खेती–पध्दति के नियम के अनुसार मेरी कोई लागत नहीं, इसलिए यह मेरा नुकसान नही। मगर धंधे के नजरिये से देखा जाये तो यह नुकसान है। मैंने इस नुकसान से बचने का नया तरीका भी ढूंढ निकाला है। जब नारियल के पेड़ के नीचे भी कम धूप में फलने–फूलनेवाली कई मिश्र फसलें लगायी जा सकती हैं। जबकि आपके इस संघवी फार्म में तो नारियल के पेड़ बढ़ जाने के बाद 50 फीट वाली जगह यूं ही खाली रहेगी जहां हम कई नये प्रयोग करेंगे।"

सावेजी की नई योजना के मुताबिक दो–दो नारियल के पौधों के बीच में दो फीट का अंतर रखा गया। दो–दो पौधों के 25 फीट और 50 फीट के बीच में 8 X 8 X 8 फीट का अंतर रखकर सब्जी के केले लगाये

गये। कुल मिलाकर 24 केले लगे। नाले के पास मेड़ो पर तरबूज, कद्दू, लौकी, करैला, और कई सब्जियां भी लगायी गयी थीं। इस प्रकार हमने मिश्र फसल के साथ संघवी फार्म की शुरूआत की।

सब्ज़ी का उत्पादन

मगर जमीनको धूप से बचाने के लिए ज्यादातर कद्दू लगाये थ। सभी सब्जियों की उपज से हमें 15 हजार प्रति एकड़ की आमदनी हुई थी। इस प्रकार पॉच एकड़ से हमें 75 हजार की आमदनी हुई थी। सिर्फ चार माह में हमारे पॉच एकड़ में 60 हजार की जो लागत थी, वह 15 हजार मुनाफे के साथ लौट आई।

शनिवार को सच जाने

"अब कृषि का ही उदाहरण लें। आप भी जानते है कि भारत की सारी समृध्दि हमारे पूर्वजों की खेती व्दारा ही थी, जिसको लूटते–लूटते अंग्रेजों को भी दो सौ साल लगे थे। आज हम कितना भी खोजें, पूर्वजों के खेती–पध्दति से संबंधित वही ग्रंथ कहीं नहीं मिलते। यही कारण है कि भारत जैसा कृषि प्रधान देश आज विदेशी आधुनिक कृषि के मायाजाल में फंसा हुआ है। मजे की बाते तो यह है कि किसी भी देश का किसान भिखारी होगा वह देश भिखारी ही माना जाता है। यही हालत आज भारत देश की है। अब जब सरकार और प्रजा दोनो भिखारी है। तो फिर एक भिखारी दूसरे भिखारी को कहॉ से दो वक्त की रोटी, कृषि के निर्धारित उत्पादन के दाम, सही सोच, समझ और साधन दे पायेगा, जो आज किसानों के स्वयंभू नेता सरकार से बार–बार मांग रहे हैं। गलत कर्म और गलत खेती–पध्दति के जरिए भिखारी बने भारत देश को बचाने का अब सिर्फ एक ही मार्ग बचा है, जिसे मैं सम्पूर्ण पर्यावरण की रक्षा करनेवाली सेन्द्रिय कृषि के नाम से जानता हूं। जो मैं जानता हूं, वही कहता हूं, करता हूं क्योंकि बिना आचरण के उपदेश व्यर्थ है। आज सेन्द्रिय कृषि अलग–अलग नामों से जानी जाती है। कोई उसे प्राकृतिक कृषि–कोई जैविक कृषि, कोई सजीव खेती, कोई आधारदाईकृषि, तो कोई कुदरती कृषि जैसे भिन्न–भिन्न नामों से जानता है। मैंने आज तक यह कभी नहीं कहा और न ही कभी कहूंगा कि मुझे हर तरह की खेती की जानकारी है। मेरी तो दिली ख्वाहिश है कि जो भी व्यक्ती प्रकृति के रहस्य समझने में सफल हुए हैं और जीन्हें उनके प्रयोग में सफलता मिली है, उन्हें अपनी सारी जानकारी जन–कल्याण और पर्यावरण की रक्षा के लिए समाज को समर्पित कर देनी चाहिए। जैसे मैंने अपनी सारी बातें खुली किताब की तरह रखी है।"

चीकू और लीची

उन्होंने नये पॉच एकड़ पर चीकू और लीची के पेड़ उगाने की योजना बना रखी थी। चीकू की कलम हम वलसाड से लाये थे, जबकि लीची की कलम पास के बोरडी गॉव से श्री के. बी. ईरानी की नर्सरी से लाये थे। तब सावेजी को भी लीची की कलम और पेड़ की कोई भी जानकारी नहीं थी। इसलिए उन्होंने ईरानी साहब से इसे विकसित करने की जानकारी हासिल की थी। काफी जोर देकर ईरानी साहब ने कहा था कि 'आधुनिक विज्ञान, रासायनिक खाद और किटनाशक दवाइयों के बिना लीची की कलम का विकास असंभव है। अगर सही तरह से देखभाल की जाए, तभ्झी कोई सात साल के बाद लीची के पेड़ पर फल लगेंगे। और जब फल लगने शुरू होंगे तो आपके व्यारे–न्यारे हो जायेंगे। यही कारण है कि कई किसान लीची के पेड़ को 'असामानी सुलतानी' पेड़ भी कहते हैं।'

लीची के पेड़ में सावेजी का प्रथम अनुभव होनेवाला था। इसलिए ज्यादा जोखिम लेने के बजाय उन्होंने पॉच एकड़ जमीन के दो हिस्से करत हुए आधे में चीकू की 150 कलम और शेष में लीची की 150 कनम नगसपे का फैसला किया। बाकी जमीन पर सभी तैयारी करने के बाद वही सेन्द्रिय कृषि पध्दति का सहारा लेते हुए सावे कार्य–पध्दति लागू की गयी। चीकू और लीची की कलम के बेहतर विकास के लिए पहले के मुताबिक ही मिश्र फसल लगायी गयी थी। सब्जी तो वही थी मगर इस बार मिश्र फसल में केले के बजाय पपीता लगाया गया था। इस प्रकार की मिश्र फसल से लंबी आयुवाले पेड़ को उचित वातावरण (माईक्रोक्लाइमेट) मिलता है। ऐसा समझिये जैसे आप किसी वातानुकूलित कमरे में बैठे हो, ठीक वैसा ही। यह योजना तारीख 3–5–1998 को शुरूआत की थी। लीची का प्रयोग श्री सावे पध्दति की सेन्द्रिय कृषि को एक चुनौती थी।

केले का उत्पादन और आमदनी

दो–दो नारियल के प्रयोग को अब ग्यारह महीना होनेवाला था। सब्जी की आमदनी के बाद 50 पानी की बचत हुई ही थी। अब केले की उपज से आमदनी शुरू होने वाली थी। अब मैं आपको जो जानकारी देने जा रहा हूं वह सचमुच चौंका देनेवाली है। इस बात के पर्याप्त ठोस सबूत भी मेरे पास हैं। इन सबूतों के माध्यम से सावेजी और मैं कभी भी आधुनिक कृषि वैज्ञानिक, सरकारी संस्था और ऐसे लोग, जिनके मन में यह बात बैठ चुकी है कि सेन्द्रिय कृषि से उत्पादन कम होता है, उनके घमंड को आसानी से चूर–चूर कर सकते हैं।

अब आपको यह जानकर बहुत आश्चर्य होगा कि एक ही किस्म के केले, फिर भी दोनों के माल के बाजार–भाव में जमीन–आसमान का फर्क! जबकि हमारे केले से पड़ोसी के केले बड़े भी थे और वजन में ज्यादा भी। फिर भी उन्हें एक किलो का बाजार –भाव मिला 1/75 रुपये। और हमे सेन्द्रिय पदार्थ के केले का बाजार–भाव मिला एक किलो का 2/50 रुपये..!!? अब बाजार–भाव के कम ज्यादा होने का रहस्य समझिए बाजार–भाव अच्छा मिलने के लिए दो बातें आवश्यक है। जो सबसे महत्वपूर्ण है, वह यह कि किस कार्य–पध्दति से आपने उत्पादन किया है? दूसरी बाते ये कि फार्म से मिले उत्पादन को किस तरह से बांध कर मंडी में भेजा गया है।

हमारे और पड़ोसी किसान के उत्पादन को मंडी में भेजने का तरीका एक जैसा था। दोनों ने बोरे में केले को बांधकर सही तरह से भेजा था। मगर जब मंडी में केले को बेचने के लिए बाहर निकाला गया, तब दोनों के केले की हालत देखने जैसी थी। हमारे केले सेन्द्रिय खेती के थे, वे जब बोरे से निकाले गये, तब वैसे के वैसे ही दिखायी पड़े, जैसे वे पेड़ पर थे, जबकि आधुनिक खेती के केले जैसे पेड़ पर हरे–भरे थे, उसके विपरीत काले, कुछ पके और कुछ पूरी तरह से दबे हुए दिखायी पड़े। ऐसा माल मंडी में नहीं चलता क्योंकि मंडी से अधिक मात्रा में माल उठानेवाले व्यापारी ताजा और हरा–भरा माल चाहते हैं। क्योंकि मंडी से महिलाएं एक–एक सब्जी चुन–चुनकर खरीदती हैं। नरम या बिगड़े हुए माल कम दाम में बेफर बनानेवाले, होटलवाले या ठेले पर खाद्यपदार्थ बेचनेवाले ही खरीदते हैं।

आधुनिक खेत–पध्दति से प्राप्त उत्पादन जब तक पेड़ पर होता है, तब तक काफी स्वस्थ, सुंदर और बड़ा दिखायी पड़ता है क्योंकि इस

उत्पादन को निंरतर रासायनिक खाद और दवाइर्या मिलती हैं। जैसे ही उत्पादन पेड़ से तोड़कर या काट लेने के बाद पानी मिलना बंद होता है। ऐसी हालत में उत्पादन गर्मी से बचने के लिए हवा से नमी सोखता है। यही कारण है कि ऐसा उत्पादन नरम हो जाता है। उत्पादन जब बोरे में बांधा जाता है, तब कई बार ज्यादा गर्मी और उसके अंदर की खाद व दवाइयों की गर्मी के कारण वह काला हो जाता है या पक भी जाता है। इस तरह आधुनिक खेतीपध्दति से उत्पादन जरूर ज्यादा मिलता है, पर माल की गुणवत्ता न होने के कारण दाम काफी कम मिलता है। अतः लागत से आमदनी कम होती है। इससे ठीक विपरीत सेन्द्रिय खेती–पध्दति में होता है। क्योंकि उसका उत्पादन हर तरह से प्राकृतिक और कुदरती है, इसलिए जैसे वह पेड़ों पर होता है। बस ठीक उसी तरह अपनी सुंदरता पेड़ से उतरने के बाद भी बनाएए रखता है। इसी बेहतर गुणवत्ता के कारण मंडी में हरे–भरे प्राकृतिक उत्पादन के अच्छे दाम मिलते हैं।

अब और एक सच्चाई जानिये की कैसी होती है सेन्द्रिय खेती के उत्पादन की मिठास? वह तो जो चखे, वही जाने। मंडी में केले से वेफर बनानेवाले कई व्यापारी आते है। वे ज्यादातर अधिक मुनाफा पाने के लालच में सस्ता माल ही खरीदते हैं। मगर सभी व्यापारी ऐसे नहीं होते। कुछ व्यापारीयों ने हमारे सेन्द्रिय केले से वेफर बनाई थी। उसमे उन्हें जबरदस्त मुनाफा हुआ। यूं तो अन्य केलों के मुताबिक ही दिखनेवाली हमारे केले भी थे, पर प्राकृतिक केले के छिलके काफी पतले होते है इपके अंदर अधिक मावा रहता है। इस कारण कम केले से ज्यादा वेफर बनती है, नुकसान भी कम होता है। और स्वाद में काफी सत्व–तत्व और मिठा होता है इसलिए वह वेफर की बाजार में ज्यादा मांग होती है। ऐसे कई कारणों से हमारे प्राकृतिक केले की मंडी में काफी मांग होने लगी थी। मंडी में संघवी फार्म के केले को उत्तम दर्जे का नाम मिला था। साथ ही मंडी में बाजार–भाव भी ज्यादा मिला था। आधुनिक केले का बाजार घटकर जब एक किलो का 1 रुपया था तब हमारे केले का बाजार–भाव बढ़कर एक किलो का 6 रुपये तक हो गया था। थोड़े दिनों के बाद हमारे माल खरीदने का स्पर्धा लग गई थी। इस कारण वेफर उत्पादक सीधे हमारे फार्म से ज्यादा दाम देकर केले उठाने लगे। आज भी मंडी में जाकर पूछ सकते हैं कि संघवी फार्म के केले की कितनी मांग है।

आप आमदनी की बातें समझ गये हों, तो मैं एक ही केले की गड्डान (तना) लगाकर उससे कितने पेड़ पैदा होगें? और कितना उत्पादन मिलेगा? यह जानकारी भी दे दूं। आधुनिक खेती–पध्दति को अपनाने वालों से पूछिये कि केले के एक गड्डान लगाने के बाद क्या क्या परिस्थिति होती है? वे बतायेंगे कि 'यूं तो केले के एक गड्डान से कई पेड़ तक अच्छा उत्पादन मिलता है। उसके बाद भी उत्पादन तो मिल जाता है, मगर ज्यादा लागत आने के कारण नुकसान उठाना पड़ता है।'

सेन्द्रिय खेती से हमें भी उत्पादन तो मिलता ही है, मगर तीन बार नहीं बल्कि सात बार! अगर उत्पादन न भी मिले तो भी केले के बाग के कारण फार्म में ठंडा वातावरण बना रहता है और केले के पत्ते भी हमारे यहां से सब्जी बेचनेवाले खरीदकर ले जाते हैं। इस तरह आम के आम गुठली के दाम भी हमें मिलते ही रहते हैं।

सेन्द्रिय खेती की सावे–पध्दति से और हमारे पड़ोसी की आधुनिक खेती–पध्दति से देखें कि कितनी आमदनी हुई? इस बात का पता नीचे लिखे अंको से मिल जायेगा।

केले का उत्पादन	**सेन्द्रिय कृषि**	**आधुनिक कृषि**
पहली बार	18 किलो	25 किलो
दुसरी बार	30 किलो	30 किलो
तीसरी बार	25 किलो	20 किलो
चौथी बार	15 किलो	समाप्त
टोटल हिसाब	**88 किलो**	**75 किलो**
मंडी का भाव प्रति किलो	2.50 रुपये	1.75 रुपये
आमदनी	220/–रुपये	131.25 रुपये
लागत खर्च	–66/–रुपये (पानी, मजूरी, ट्रान्सपोर्ट)	–105/–रुपये (रासायनिक खाद, दवा,पानी, जुताई, खरपतवार, मजूरी, ट्रान्सपोर्ट)
मुनाफा	**154/– रुपये**	**26.25 रुपये**

हमें शुरु में मंडी से एक किलो केले के 22.0 रुपये मिले थे, जो बढ़कर 6 रुपये प्रति किलो हो गये थे। फिर भी आपकी तसल्ली के लिए हिसाब कम जोड़ा गया है, जिससे यह सिध्द होता है कि सेन्द्रिय खेती से उत्पादन और मुनाफा तो ज्यादा मिला, मगर सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि हमें निरोगी केले मिले। इस प्रकार सावेजी की खेती–पध्दति व्दारा हम संघवी भाइयों को बंजर भूमि से भी लाखों की आमदनी हुई।

नारियल का नया प्रयोग

प्रयोग की सफलता देखकर सावेजी ने अब तीसरे हिस्से को भी विकसीत करने का काम शुरू हुआ। दो–दो नारियल के पौधों से पेड़ बनाने का काम प्रकृति खुद बड़े सुंदर तरीके से कर रही थी मगर पौधों के विकास के निरीक्षण से समझ में आया कि जिस प्रकार जुडवॉ बच्चों में अगर एक का विकास के निरीक्षण से समझ में आया कि जिस प्रकार जुडवॉ बच्चों में अगर एक का विकास अच्छा रहा तो दूसरे का उतना अच्छा नही हो पाता। वैसे तो दोनों ी बच्चे बड़े होते हैं, मगर एक जल्दी बढ़ता है, तो दूसरा ध ीरे–धीरे। ठीक उसी तरह नारियल के दोनों पौधों के विकास में भी अंतर दीखता था। एक–दो जगह पर तो दो पौधों में से कोई एक पौधा बंजर भूमि की गर्मी के कारण मर चुका था। दोबारा उस जगह पर नया पौधा लगाया जा सकता था मगर फिर से पौधा लगाने कारण सावेजी ने अच्छा विकास देखने के बावजूद एक साथ दो–दो पौधे लगाने से मना कर दिया और नया प्रयोग बिलकूल अलग ढंग से किया था।

तीसरे हिस्से में नारियल के पौधे लगाने का अंतर रखा गया। एक–एक नारियल के बीच में 15 फीट और दो–दो नारियल की कतार के बीच में 40 फीट का था। इस तरह 600 वर्ग फीट जगह का उपयोग हो पाया। सावेजी ने 40 फीट की जगह में दोनों तरफ से 20 फीट का अंतर छोड़कर बीच में सीताफल और अमरूद जैसे पौधे लगाये। नारियल के पौध ों के साथ–साथ केले और सब्जी की मिश्र फसल तो पहले अनुसार ही थी। इस प्रकार 1989 में नारियल का नया प्रयोग शुरु किया गया था।

तीन साल में नारियल का उत्पादन

विश्व का जो प्रथम प्रयोग, दो–दो नारियल का तारीख 13–6–1987 से हमनें शुरु किया था। उसी पर तारीख 9–9–1990 से सभी पेड़ों पर नारियल के फल भी लगने शुरु हो गये। क्या यह आधुनिक कृषि से संभव है? क्या ये बातें बंजर भूमि पर भी संभव हैं? सब से बड़ी बात तो यह है कि सावेजी के गॉव में पले, वातावरण के साथ घुलमिल गये और सावेजी की शास्त्रीय पध्दति से तैयार किये देशी बीजों का ही यह कमाल था। सात साल के बजाय सिर्फ तीन साल में उत्पादन!!! मैं पूछना चाहूंगा कि आज के संकरित बीजों या फिर प्रयोगशाला में तैयार किये गये टिस्यु कल्चर के पौधों में ये खूबियां और ताकत पायी जा सकती हैं? खैर, इसे आप सावे कृषि–पध्दति की सफलता कहिये या फिर सेन्द्रिय कृषि के चमत्कार! मगर यह सौ प्रतिशत सच परिणाम हमारे सामने आया है।

विश्व में पहली बार दो–दो पौधों को एक साथ लगाकर सावेजी ने वैज्ञानिकों की धारणा को सिर्फ गलत ही साबित नहीं किया, बल्कि यह भी सिध्द कर दिखाया कि नारियल के चार पौधों को 625 फीट जगह की जरूरत नहीं, बल्कि उतनी जगह में सूर्य प्रकाश की जरूरत होती है। विश्व के सर्व प्रथम नये प्रयोग में भरपूर सफलता मिलने के बाद सावेजी ने संघवी फार्म के आखिरी हिस्से को विकसित करने की बात सोची।

आम और अशोकबाबा

जंगल में हर प्रकार की वनस्पतियां होती है, जो हजारों साल से एक दूसरों के सहारे और पशु, पक्षी और कीड़ों के आधार से निरोगी खड़ी है। इस कारण से सावेजी बाग में भी हर प्रकार की वनस्पतियां लगवाते हैं, ताकि किसी एक प्रकार के पेड़–पौधो की फसल के खराब होने पर दूसरे प्रकार के पेड़ – पौधों से मुनाफा मिल जाए। आम के बाग की शुरुआत से पहले मुझे सावेजी ने आम के बारे में गुरु–शिक्षा दी कि "अशोकभाई, आमों में सबसे अच्छा आम होता है केसर। वह सभी आमों में प्रथम स्थान पर है। दूसरे स्थान पर है राजापूरी, और तीसरे स्थान पर है हापुस। मगर गोरों की बातों में आकर आजकल बाजार में हापुस आम ही ज्यादा बिकता है। आज विश्व में गुजरात के आमों की सबसे ज्यादा मांग है। मगर जब से गुजरात के आम के बागों के किसान आधुनिक कृषि के चंगु में फंसे हैं तब से आम का अपेक्षित उत्पादन मिलता ही नही! जबकि मेरा मानना है कि आम के फल हर साल या एक ही साल में दो बार भी मिल सकते हैं और मुझे कई बार मिले भी हैं। अतः हम आम के बाग में भी ज्यादा जोखिम न लेते हुए तीनों प्रकार के आम की कलम लगायेंगे।"

हमने जब–जब नये प्रयोग की शुरुआत की, तब–तब जमीन के उस विस्तार में जल–सिंचन के लिए नये–नये बोर–वेल बनवाये थे। हर बार नये बोर–वेल के लिए पानी कहॉ मिलेगा? उसकी अलग–अलग तरीके से खोज भी करवाई थी। पानी शत–प्रतिशत मिलेगा ही मिलेगा, यह बात कोई भी ठोस रूप से नहीं कह सकता। 'भाग्य में होगा, तो पानी मिलेगा।' यह बात पानी की खोज करनेवाला हर व्यक्ति करता था। भाग्य के भरोसे चार बार बोर करवाया, जिसमें हमें तीन बार सफलता मिली थी, मगर चौथी बार काफी कम पानी मिला था। इसलिए जब पॉचवां बोर–वेल करवाना था, तब मैंने अपने कुछ विचार सावे–परिवार के सामने रखे। "इतने पैसे खर्च करके हम तांत्रिक, साधु और कई वैज्ञानिक उपकरणवालों को लाये थे। सभी ने एक ही बात बतायी कि भाग्य में होगा, तो पानी मिलेगा, वर्ना नहीं। वे जहां बताते हैं उसी को सच मानकर हम भाग्य पर भरोसा रख बोरिंग करवाते हैं। तो क्या काई ऐसी पध्दति नहीं है जिससे यह पता चले कि कहॉ से सचमुच पानी मिल सकता है? ताकि हमारी लागत व्यर्थ न जाये। अगर कहीं भी ठोस रास्ता मुझे दिखता है, अगर हमारे भाग्य में लिखा होगा तो पानी मिलेगा ही। और अगर पानी नहीं हुआ तो औरों को हम दोष भी नहीं दे सकते।"

एक ही कतार में उगी जंगली वनस्पति को देखकर जहॉ सबसे ज्यादा वनस्पति उगी थी, वहॉ पानी का भंडार जरूर होगा ऐसा विचार किया। और एक दिन प्रभुजी का स्मरण कर 'पानी अवश्य मिलेगा' इस विश्वास के साथ वही बोरिंग करवाया और विश्वास न हो सके इतना बड़ा पानीका भंडार मिला।

आम की कलम लगाकर पेड़ तैयार करने के पीछे एक जगह जाहिर कहावत हैः 'आम लगाये दादा और फल खाये पोता।' यानी कि आम की कलम लगाने के बाद कई सालों के बाद जब बेटे का बेटा होता है तभी आम खाने को मिलता है। आम के बारे में ऐसी बातें भी हैं कि कलम पर दूसरे ही साल फल लग सकते हैं। पर कम उम्र की कलम पर फल नहीं उगाये जाते जब तक वह कम–से–कम सात या दस वर्ष का पेड़ नहीं हो जाता। इस बीच अगर कलम या पेड़ पर फल लगते है तो उसे तोड़ दिया जाता है। अगर आप में सात से दस साल तक रूकने की शक्ति, धैर्य और पैसा लगाने की हिम्मत है तो आम का बाग लगाने को सोचिए। साथ ही साथ यह भी याद रखिए कि दादा या पिता की लगायी हुई कलम अच्छे मातृवृक्ष की हुई और अगर उसका सही विकास हुआ, तभी बेटे के भाग्य में फल पाना संभव होगा।

संघवी फार्म के ठोस सबूत को देखते हुए मैंने एक नइ कहावत बनाई; दाद आम लगाए और दादा ही फल खाउ।' आम की कलम लगाने के बाद अभी तो छः माह भी पूरे नहीं हुए थे कि इतने में करीब–करीब सभी आमों की कलम पर फूल (मंजरी) आ गए और बाद में फल भी। बंजर भूमि से छः माह में आम! ये बातें फिर से आंधी की तरह पूरे बलसाड (गुजरात) में फैल गयीं।

लीची का उत्पादन

श्री. ईरानी से हमें लीची की कलम और आधुनिक कृषि विकास की जानकारी मिली थी। उन्हीं को संघवी फार्म पर पौधो। के विकास और सिर्फ तीन साल में प्राप्त प्राकृतिक उत्पादन देखने के लिए निमंत्रित किया था। लेकिन लीची के उत्पादन के साथ पेड़ पर एक रोग लगा था, जिसे आधुनिक खेती–पध्दति के हिसाब से महारोग (वायरस) के नाम से जाना जाता हैं। इस रोग में पत्ते मुरझा जाते हैं। पत्तों के पीछे लाल रंग की जैसे मिट्टी लगी हो या किसी बच्चे को जैसे चेचक (माता) निकला हो ऐसा दिखाई पड़ता था। यह देखकर ईरानी भाई काफी घबरा गये और सलाह दी कि "सावेजी यह काफी खतरनाक बीमारी है। अब भी आप लीची के पेड़ पर दवाइर्या नहीं छिड़केंगे, तो फल के साथ खड़े सभी पेड़ों से हाथ धोना पड़ेगा। अब आपकी सेन्द्रिय खेती–पध्दति को कोई भी तौर–तरीका इन्हें नहीं बचा पाएगा। जब इतना अच्छा विकास हुआ है और फल लगे हैं, तो छोड़िए ये सेन्द्रिय खेती की बातें।" यह सलाह देकर वह चले गये।

कृषि–पंडित सावेजी ने मुझे बताया कि "हम किसे रोग–बीमारी कहते हैं? यह शब्द–प्रयोग मनुष्य के शरीर के लिए ठीक है मगर वनस्पति–जगत में रोग–बीमारी का तो नामोनिशान ही नहीं! हां, अगर कुछ होगी, तो वह होगी विकृति, जिसे आधुनिक कृषि में रोग–बीमारी कहते हैं। असल में वह है जीव जंतु (कीड़ों) का पेड़–पौधों पर हमला। अब और एक प्रश्न उठाता है कि यह हमला बगीचे के सभी पेड़–पौधों पर क्यों नहीं हुआ? सिर्फ फले–फुले लीची के पेड़ों पर ही क्यों? यह देखकर डरने की कोई बात नहीं। जैसे प्रकृति अपने आप इसका इलाज कर लेती है जैसे फुल खिलते है तो भॅवरे उस पर मंडराते हैं। अगले साल यही पेड़ महज खड़े ही नहीं रहेंगे, बल्कि फल भी देंगे। यह मेरा अनुभव और अवलोकन है। जरूरत मेरी बातों पर श्रध्दा और धीरज रखने की है, पेड़–पौधो पर वैसा प्राकृतिक घोल का छिड़काव कर सकते हैं।" सावेजी की बातें सौ प्रतिशत सच फल दे रहे हैं। इस तरह साल साल की जगह सावेजी ने सिर्फ तीन साल में लीची के पेड़ से अपनी कृषि–पध्दति के जरिये फल प्राप्त कर दिखाया। और आधुनिक कृषि वैज्ञानिक का भ्रम चुरचुर किया।

गन्ना

अब हमने सुपारी, काली मिर्च और अन्य फसले उगानी शुरु की। लेकिन बीच की जो 50 फीट जगह खाली थी, वह बगैर किसी उपयोग के यूं ही पड़ी रही। वहॉ सावेजी ने गन्ने की खेती करने की सोची। गन्ने के खेती के बारे में सावे गुरुजी ने जो कुछ समझाया, वह तो सचमुच एक क्रांतिकारी खोज और प्रयोग ही था। और वह भी विश्व का प्रथम प्रयोग साबित हुआ। जिसे कामयाब बनाकर सावेजी ने 'कृषि–पंडित' के नाम से दुनिया के महान किसान का किताब पाया और "लिम्का बुक ऑफ रेकॉर्ड" में हमें भी स्थान दिलाया।

गन्ने के बारे में सावेजी ने मुझे बताया कि "गन्ना तो एक पकार की घास ही है। इस गन्ने को गेहूं, मूंग या किसी भी प्रकार की फसल में लगनेवाले कम से कम पानी से ही उगाया जा सकता है। जबकि सरकार और आधुनिक कृषि विभागों ने गन्ने लिए धान फसल से भी अधिका पानी का उपयोग करवाया है। गन्ने की फसल गलत तरह से लगवाकर उन्होंने तो भारत देश को हर तरह से बर्बाद किया है। और भूमि को भारी नुकसान पहुंचाया है। आखिर वह भला कैसे? किसी भी अनपढ़ से पूछों कि जिन खेतों में बारिश का पानी जमा होकर रूका रहता है उन खेतों में कौन–सी फसल होगी? सबका जबाब होगा 'काई भी नही।' मगर नहीं! जिन खेतों में पानी भरा रहता है वहॉ प्रकृति ने एक अपवाद रख छोड़ा है। वहॉ धान की अच्छी फसल मिल सकती है। तभी तो किसान हमेशा धान की खेती वर्षा ऋतु में ही करते हैं। पर आजकल के कृषि वैश्रानिकों ने अनपढ़ व्यक्ति से भी ज्यादा खतरनाक काम किया है। जहॉ पानी नहीं जमा रहता, वहॉ भी पानी भर–भरकर धान और गन्ना लगाने की सलाह देते हैं और किसान वैसा करते भी हैं! ऐसी कार्य–पध्दति के कारण ही आज किसानों की हजारों एकड़ जमीन क्षारवाली और बंजर हो गयी है। पूरे समय तक खेतों में पानी भरा रहता है (वोटर लॉगिंग) इस कारण अब वहॉ गन्ना और धान नहीं उगता। यह उगानेवाले किसान अब कहते हैं कि हमारी जमीन से अब सिर्फ नमक ही निकलता है। इस बात का ठोस सबूत है महाराष्ट्र राज्य के सांगली के आस–पास की जमीन की परिस्थिती।"

गन्ने और धान में उपयोग होनेवाले पानी के बारे में हम पहले जरा सोचें और समझें। एक किलो बासमती जैसे चावल पैदा करने के लिए 400

से 500 लीटर पानी लगता है। और वह फसल 4 माह में तैयार होकर 35/– रु. प्रति किलो बिकती है। जबकि गन्ना लगाने से लेकर फॅक्टरी में एक किलो चीनी तैयार करने तक 5000 से 6000 लीटर पानी की जरूरत होती है। और उसे तैयार करने में 17 मॉह लगते है। वह चीनी सिर्फ 12/–रु. एक किलो में बिकती है!!! इतने समय और कम पानी से बासमती चावल की तीन बार की पैदावार हो सकती है। दूसरी और एक किलो गेहूं, जवार, बाजरा या मकई पैदा करने के लिए सिर्फ 10 से 15 लीटर पानी की जरूरत होती है। आज सरकार बासमती चावल और चीनी विदेश में निर्यात करती है और 8/– रु. प्रति किलो में बिकने वाले मकई तथा गेहूं जैसे अनाज आयात करती है!!! क्या भविष्य में हम उपजाऊ जमीन और जीवन के लिए जरूरी पानी आयात कर पायेंगे? आधुनिक खेती–पध्दति से गन्ना बोनेवालों को एक बार बीज बोने के बाद ज्यादा से ज्यादा दो बार पैदावार मिलती है। उसके बाद गन्ना जमीन से निकालकर फिर से बोना पड़ता है। अब तो क्षार और एसीड का मात्रा जमीन में इतनी बढ़ गयी है कि एक बार उत्पादन मिलने की संभावना भी खतम हो चुकी है। वह भला क्यों? जब किसान प्रति एकड़ 10 से 20 टन गन्ने का उत्पादन लेता है तब उस किसान से हम सवाल करते हैं कि, "आपने सोचकर कहत है 'कुछ नही दिया।' तब हम दिखाते है कि 'फॅक्टरीमें अत्याधुनिक मशिन से गन्ने की पिलाई करके चीनी बनाई जाती है। उससे निकलने वाला मोलासीस से पशुदाना, बगास और कुचे से कागज और स्लरी से शराब बनती है। जबकि खेतो में बाकी बचते हे सिर्फ सुखे पत्ते उसे सफाई करने के बहाने आप आग लगा देते हैं। 'धरती माता' ने इतना दिया और कुछ नही दिया तब तक ठीक था। मगर फसल पाने के लिए आपने जो रासायनिक जहर और अधिक पानी दिया, उसके बारे में आपका क्या कहना है?

सेन्द्रिय खेती की सावे–पध्दति से देखा जाये तो गेहूँ, मकई जैसे अनाज उगाने के लिए जितना पानी जरूरी है ठीक उतने ही पानी से घास जैसा गन्ना भ्झी उगाया जा सकता है। जिस प्रकार कोई घास को उगने से नहीं रोक पाता उसी तरह सावे–पध्दति से अगर गन्ना बोया जाये तो किसान भाई, आप सिर्फ एक बार गन्ना लगायेंगे तो पूरे जीवन भर एक समान ही उत्पादन पायेंगे। इस बात से आप को शायद आश्चर्य होगा, मगर हम दोबारा यहां कहना चाहते हैं कि भाई! 'बिना आचरण का उपदेश व्यर्थ है।'

संघवी फार्म में, जहॉ गन्ने के लिए प्रथम प्रयोग किया गया था, वहॉ सावे खेतीपध्दति कुछ इस प्रकार से अपनायी गयी थी। गन्ना बोने के लिए हमने बीज की दो पंक्तियों में 6 फीट का अंतर और दो बीजों में 6–6 इंच का अंतर रखा था। शुरु में बीज के दोनों तरफ 6–6 इंच का अंतर छोड़कर जल–सिंचन के लिए नाले बनाये थ। बीच में बची पॉच फीट की प्लेटफार्म जैसी जगह में फैलनेवाली (लता–बेल) सब्जी और दलहनी फसल (मूंग) लगायी थी। इस मिश्र फसल को लगाने का उद्देश्य अनावश्यक घास पर नियंत्रण करना था। बतायी गयी आकृति के मुताबिक ही हमने गन्ना बोया था।

गन्ने के बीज को अंकुरित होने के लिए सिर्फ नमी मिले इसलिए हमने 6 इंच गहरे नाले में जल सींचा था। इससे मूंग और सब्जी को भी पानी मिल गया था। गन्ना जब तक अंकुरित होकर बढ़े तब तक हमने मूंग और सब्जी का उत्पादन ले लिया था। बिना किसी छेड़खानी के जैसे – जैसे गन्ना बढ़ता गया, हम नाले को गन्ने से दूर लेते गये। पुराने नालों को गोबर और सेन्द्रिय पदार्थ से भरकर नये नालों से निकली मिट्टी से ढंक दिया और सिर्फ एक ही बड़ा नाला बीच में 3`फीट की दूरी पर रखा गया। पेड़ों की तरह गन्ने की जड़ो का विकास भी इस तरह संभव हुआ था। जमीन से कुछ अंतर छोडकर गन्ने को काटा और तीन बार एक समान उत्पादन लेने के बाद ही हमें सफलता मिली है, इस बात का हमने व्यापक प्रचार किया था। लोगों को गन्ने की खेती की सही जानकारी मिले इस उद्देश्य से हमने कई लेख भी लिखे थे जिससे प्रभावित होकर कई गन्ना उत्पादकों ने अनेक शिबिरों का आयोजन भी किया था। महाराष्ट्र के सांगली जिले में हर किसान को एक समान सेन्द्रिय गन्ने का उत्पादन कम खर्च और मेहनत से कैसे मिले? इस विषय पर ग्यारह शिबिर आयोजित हो चुकी थी। सावेजी की जानकारी और खेती की कार्यपध्दति को स्लाइड के व्दारा देखकर सांगली आकाशवाणी (रेडियो) ने चर्चा – शिबिर का आयोजन भी किया था। सांगली के 'निसर्ग प्रतिष्ठान के प्रेसिडेण्ट और लोकसभा के भूतपूर्व सदस्य श्री मोहन धारियाजी ने भास्कर हिराजी सावे को 'कृषि भुषण' की पदवी से सन्मानित भी किया था।

गन्ना बोने के बाद सात बार एक समान उत्पादन और वह भी कम खर्च, मेहनत और कम–से कम पानी से मिला था। जब हमने आठवीं बार

का उत्पादन तैयार किया, तब सुरत के गन्ना उगानेवाले किसान भाई हमारे फार्म पर गन्ने का उत्पादन देखने आये थे। सभी को हमने गन्ने की खेती की जानकारी दी। उसके बाद प्राकृतिक रूप से उगे गन्ने का स्वाद चखने को दिया था। गन्ने की मिठास चखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। कुछ किसान भाइयों ने तो दोबारा गन्ना खाने की इच्छा दिखायी। ऐसी इच्छा और बातें सुनकर मैं तो गद्‌गद् हो गया क्योंकि जो किसान खुद गन्ना उगाता है उसे कभी भी गन्ना खाने की इतनी इच्छा नहीं होती।

रेगिस्तान में उद्यान

उमरगाव–बलसाड में वर्षा ऋतु में करीब 80 से 90 इंच बारिश होती है। देखा जायेतो गुजरात राज्य में बलसाड ही एक ऐसी जगह है जिसे गुजरात राज्य का 'कश्मीर' कहा जाता है तभी तो इसे हरे–भरे 'ग्रीन–जोन' के नाम से जाना जाता है।

"सारस नाम के पक्षी प्रजनन और अंडे देती है, पर नर पक्षी कई प्राकृतिक सेन्द्रिय पदार्थ से घोंसला तैयार हैं। मादा पक्षी अंडे दे, इसके पहले नर पक्षी कई प्राकृतिक सेन्द्रिय पदार्थ से घोंसला तैयार करते हैं। उन घोंसलों के बीच में मादा पक्षी अंडे देती है, पर नर पक्षी अंडे सेने का कार्य संभालते ही उपयोग करते हैं। मादा पक्षी अंडे देती है तब नर पक्षी अपनी विशिष्ट करते हैं। उन घोंसलों के बीच में मादा पक्षी जब अंडा देती है तब नर पक्षी अपनी विशिष्ट कार्य – पध्दति से अंडे सेते हैं। अंडे से बाहर आए बच्चे के भोजन के लिए दूर–दूर से दाना लाकर उनका विकास भी करते हैं। बच्चा जब उड़ने के काबिल होता है तब रेगिस्तान में घोंसला छोड़कर सभी पक्षी उड़ जाते हैं। खाली कई घोंसले रेगिस्तान में पड़े रहते है। जब बारिश का पानी गिरता है तब उन्हीं घोसलों के बीच में सेन्द्रिय पदार्थ और गड्ढ़े के कारण पानी भरा जाता है। सारस पक्षी बच्चों के लिए जो दाने लाये थे उसके भी कुछ न कुछ बीज जरूर गिरे रहते हैं या बच्चे के मल के साथ निकले रहते हैं। इस तरह कुल मिलाकर देखा जाये तो पानी, सेन्द्रिय पदार्थ, मल ओर बीज के मिलन से रेगिस्तान में प्राकृतिक रूप से वनस्पति – जगत का सृजन होता है। हवाई जहाज (प्लेन) में बैठकर देखें, तो रेगिस्तान की भूमि पर गोलाई में उगी कई वनस्पतियां देखने को मिलती है।" यह अवलोकन बिल मोरीसन ने किया था। उसी के आधार पर गोलाई में भी पेड़ पौधे हो सकते हैं, इस आशय की एक किताब भी उन्होने लिख डाली । कइयों ने किताब का सहारा लेकर गोलाई में बाग लगाने का प्रयत्न किया, मगर उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्हें सफलता न मिलने के कई कारण सावेजी ने खोज निकाले। उसी किताब की 'गोलाई की बातें' लेकर सावेजी ने सफलता पाने की उम्मीद से संघवी फार्म में एक प्रयोग करने की इच्छा प्रगट की ताकि भारत के नौजवानों की बेकारी दूर की जा सके और छोटे किसानों को विश्वास दिलाया जा सके कि कम लागत, कम पानी और कम मेहनत से भी रेगिस्तान में बाग हो सकता है।

"सूर्यमंडल में बारह ग्रह होते हैं, जिनसे बारह राशि–चक्र बने हैं। हम इसी बारह का उपयोग करके एक गोलाई में बारह नारियल लगायेंगे। इस के लिए 72 फीट की गोलाई (परिध) में हम 6–6 फीट के अंतर पर बारह नारियल के पौधे लगायेंगे। गोलाई (परिध) में हम 6–6 फीट के अंतर पर बारह नारियल के पौधे लगायेंगे। गोलाई के बाहर केले और उसके अंदर पपीता और नाले की अगल–बगल में सब्जी भी लगायेंगे। गोलाई के मध्य में सिर्फ एक गड्ढ़े से नारियल के बारहों पौधों को पानी मिलता रहेगा। इसी गड्ढ़े में पानी के साथ हर प्रकार का सेन्द्रिय पदार्थ होगा जो खाद की भूमिका अदा करेगा।"

नई जमीन लेकर सूर्यमंडलों की रचना करते हुए एक एकड़ में बारह सूर्यमंडलों का निर्माण किया। दो सुर्यमंडलों के बीच में (मध्य से) 60 फीट का अंतर छोडा। सामान्य तौर पर नारियल लगाने की कार्य–पध्दति में एक एकड़ में 70 नारियल के पौधे लगते हैं। जबकि सावेजी ने जुड़वा नारियल के प्रथम प्रयोग में 84 पौधे लगाये थे और अब विश्व के प्रथम सूर्यमंडल के प्रयोग में 12 सूर्यमंडलों का समावेश किया था। इस तरह एक एकड़ में नारियल के 12 x 12 =114 पौधे लगाये।

सूर्यमंडल की आकृति की एक गोलाई में मुख्य रूप से 6–6 फीट की दूरी पर 12 नारियल हैं। दो नारियलों के अंदर और बाहर की गोलाई में केला और पपीता लगाया गया हैं। शुरु में जल–सिंचन के लिए चार नाले गोलाई में रखे गये हैं। सात दिन में एक बार नाला नंबर 1 और 3 में जल–सिंचन करना होता है। और नाले नंबर 2 और 4 में सात दिन में एक बार पानी देना होता है। बीच में जो गड्ढ़ा है उसमें सारे सेन्द्रिय पदार्थ है, वह जब सड़ेगा, तब केंचुएं उसका खाद बना देंगे। इस प्रकार तारीख 1–8–1992 के दिन सावे–सूर्यमंडल की सम्पूर्ण रचना हो चुकी थी।

फिर कम मेहनत, पानी और लागत से सूर्यमंडल से आमदनी शुरू हुई। चार माह से लेकर छः माह तक एक एकड़ से सब्जी से 20 हजार की आमदनी हुई सब्जी के सारे सेन्द्रिय पदार्थ निकालकर नाला नंबर 2 और 3 में रखकर तालाब की मिट्टी से भर दिया गया और अब बचे सिर्फ नारियल, केले और पपीते के पेड़, जिनका जलसिंचन सिर्फ नाला नंबर 1–4 और बीच में बनाये गये गड्ढ़े पर ही निर्भर था। इस प्रकार सावेजी ने कम–से–कम 50% पानी की बचत की। ग्यारह माह के बाद अब केले और पपीते से आमदनी शुरू हुई। एक एकड़ में कुल मिलाकर 144 केला +144 पपीता = 288 पेड़ थे। एक पेड़ से 154 रुपये मुनाफा x 288 पेड़ = 44352 का जो मुनाफा था वह कुल खर्च घटाकर सावे–सूर्यमंडल के एक एकड़ से मिला था।

सुर्यमंडल की सावे खेती –पध्दति से कहीं बेहतर विकास हो रहा था। तीन साल में तो नारियल के पेड़ो पर फल भी लगने शुरू हो गए थे। जड़ों का सही विकास 4 से 5 फीट तक हो चुका था। और बेहतरी के लिए हमने नाला नंबर 1 और 4 में भी केले और पपीते के सेन्द्रिय पदार्थ डालकर नारियल से सात फीट पर अंदर–बाहर दो नाले फिर से बनाये। नये नालों से जो मिट्टी निकली उससे हमने नाला नंबर 1 और 4 को भर दिया, इसमें सावेजी का उद्देश्य यह था कि बारह नारियल के पेड़ों की जड़ें आगे बढ़े और पेड़ों को पानी सिर्फ बीच में बनाये गये गड्ढ़े बने थे भविष्य में उन्हीं से पानी मिलनेवाला था। यह जो घटना वह विश्व की एक अनोखी और महान घटना होगी।

आप पहले पढ़ चुके है कि आधुनिक कृषि–पध्दति अपनानेवाले हमारे ही प्रदेश के अन्य किसान चौबीस घंटे में एक पेड़ को सींचने के लिए 140 से 150 लीटर पानी का उपयोग करते हैं। जबकि किसानों को ठगनेवाली विदेशी बूँद–बूँद सिंचन (डीप) कार्य पध्दति में रोजाना 70 से 80 लीटर पानी का सिंचन करना होता है। कल्पवृक्ष में सेन्द्रिय कृषि के लिए जो मंच (बांध) और नाले वाली कार्य–पध्दति है, उससे तो एक पेड़ को सिर्फ 15 से 20 लीटर पानी ही चाहिए। सावेजी ने तो संघवी फार्म में विश्व के प्रथम दो–दो नारियल वाले प्रयोग में मात्र 15 से 20 लिटर पानी का उपयोग से दो नारियल का विकास करके दिखाया भी है। अब एक पेड़ को जिसे सामान्य रूप से 15 से 20 लीटर पानी चाहिए, उतने ही पानी से अब सावेजी 12 नारियल का विकास करके दिखानेवाले है। जरा सोच । समझकर हिसाब करके तो देखिये? कि कहाँ तो आधुनिक कृषि में एक पेड़ के लिए 140 से 150 लीटर पानी की जरूरत, और कहाँ सावेसुर्यमंडल में एक नारियल के लिए सिर्फ 1 से 1.5 लीटर पानी की जरूरत!!! क्या रेगिस्तान (कच्छ और राजस्थान) में बसनेवालों के पास दैनिक जीवन के लिए 15 से 20 लीटर जरूरी पानी भी उपलब्ध नहीं? अगर किसी से कुछ नहीं बन पाता तो वह कम–से–कम सूर्यमंडल में बनाये गए बीचवाले गड्ढ़े के ऊपर शौचालय और स्नान घर ही बना ले तब भी सूर्यमंडल का अच्छा विकास होगा। अब तक हमने सूर्यमंडल से मिली आमदनी को देखा। अब

हम सावेजी के सूर्यमंडल से मिलनेवाले अन्य फायदे और नारियल की उपज के गणित को भी समझेंगे। कल्पवृक्ष में विकसित हो चुके पेड़ों से सालाना 300 से 350 नारियल का उत्पादन होता है, जो कि उन्हें पिछले 40 वर्षें से बिना किसी रुकावट के एक पेड़ से मिल रहा है। इतना उत्पादन मिलने रूप से सूर्यप्रकाश का मिलना। मगर चलिये हम कम उत्पादन को लेकर ही इस गणित को थोड़ा समझें।

समझ लीजिये कि सावेजी को सिर्फ एक पेड़ से 300 नारियल ही मिलते हैं यानी कि 300 x 70 = 21000 नारियल का उत्पादन 70 पेड़ों से एक साल में हुआ। आपको खुश करने के लिए मैं अपना व्यापारी गणित कम कर के एक नातरियल के सिर्फ 2 रुपये ही गिनता हूं। इस प्रकार सावेजी को 21000 x 2 रुपये = 42000 रुपये का मुनाफा एक एकड़ से हुआ। यह थी। उत्पादन और आमदनी की बातें। और अब हम पानी का जो सवाल है और जिसे पाने के लिए शायद भविष्य में विश्व–युध्द होने की संभावना है, उसका भी गणित जरा देख लें।

1) आधुनिक कृषि में 70 पेड़ x 140 लीटर = 9,800 लीटर पानी रोज चाहिए। इस प्रकार योजना 9800 लीटर पानी का उपयोग x 365 दिन = 35,77,000 लीटर पानी का एक साल में उपयोग होता है।

2) सावेजी की कृषि पध्दति से 70 पेड़ x 20 लीटर पानी रोजाना = 1400 लीटर, पानी का उपयोग रेाजाना और इस तरह 1400 लीटर x 365 दिन = 5,11,000 लीटर पानी का उपयोग एक साल में होता है।

3) सुर्यमंडल में नारियल के 144 पेड़ हैं, मगर बीच मे नाले तो सिर्फ 12 ही हैं। इसलिए सूर्यमंडल के 12 नाले x 20 लीटर पानी = 240 लीटर पानी का उपयोग रोजाना यानी 240 x 365 दिन = 87,600 लीटर पानी का उपयोग एक साल में होगा।

पानी की एक साल की तुलना :

1) आधुनिक कृषि से पानी का उपयोग : 35,77,000 लीटर 70 पेड़ों के लिए।

2) सावे सेन्द्रिय कृषि में पानी का उपयोग : 5,11,000 लीटर 70 पेड़ों के लिए।

3) सुर्यमंडल में पानी का उपयोग : 87,600 लीटर 144 पेड़ों के लिए।

सूर्यमंडल का प्रयोग भी मेरे जीवन का प्रथम प्रयोग ही है। इसके अवलोकन और विकास से एक गलती नजर आती है। वह यह कि दो नारियल के बीच में और दो सूर्यमंडल के बीच में अंतर ज्यादा रखना चाहिए था। प्रथम प्रयोग में नारियल का विकास जरा पास–पास और भरा हुआ है। विकास तो सभी नारियलों का होगा, मगर सूर्यप्रकाश कम मिलने के कारण ज्यादा उत्पादन नहीं मिल पाएगा, ऐसा लगता है सिर्फ 90 से 100 ही नारियल एक पेड़ से मिल पायेगा। अगर उत्पादन बढ़ाना हो, तो वर्तमान सूर्यमंडल में हमें पेड़ के बीच में जगह बनानी होगी। हर गोलाई (परिधि) से कम–से–कम तीन पेड़ निकालने ही होंगे। फिर एक एकड़ में सिर्फ 108 नारियल के पेड़ ही रहेंगे, तब शायद हर पेड़ पर 200 नारियल का उत्पादन संभव होगा। अब आप तो व्यापारी हैं इसलिए उत्पादन का गणित खुद ही बैठा लीजिए कि कम जमीनवाले किसान, कम पानी, कम लागत और कम मेहनत से कम–से–कम कितना मुनाफा कर पायेंगे?" सावेजी ने जैसा कहा उस हिसाब से सूर्यमंडल के कुल उत्पादन का गणित भी जरा हम देंखे।

1) सूर्यमंडल से बिना पेडत्र काटे नारियल का उत्पादन एक साल में 144 पेड़ x 90 नारियल = 12960 नारियल मिलेंगे।

2) सूर्यमंडल के पेड़ काटकर नारियल का उत्पादन एक साल में जो मिलेगा, वह 108 पेड x 200 नारियल = 21600 नारियल मिलेंगे।

3) कल्पवृक्ष में 70 पेड़ x 300 नारियल = 21000 नारियल का उत्पादन एक साल में मिलता है।

अरे इतना ही नहीं भाई! पेड़ काटने के बाद भी कल्पवृक्ष फार्म से तो 600 नारियल का अधिकतम उत्पादन सूर्यमंडल से मिला। यानी कि 600 नारियल x 2 रुपये = 1200 रुपये की अधिक आमदनी एक एकड़ से मिली!!!

ज्यादा मुनाफा

प्रभुजी ने छोटे–से–छोटे जीव को भी यह सद्‌बुध्दि और समझ दे रखी है कि खुद के निरोगी जीवन के लिए क्या और कैसा खाना उचित है। मगर यह समझ प्रभुजी ने इन्सान को नहीं दी। मनुष्य को सामने रखा हुआ खाना खुद के लिए योग्य है या नही, जयादातर इसकी जानकारी नहीं होती। और बिना समझे वह उसे खा भी लेता है। इसीलिए तो आज खाना भी प्रयोगशाला में जांचा जाता है। मगर बेर का अधिक उत्पादन पाने के लिए हमारे इस किसान भाई ने रासायनिक खाद और किड़ों को दूर रखने हेतु ज्यादा–से–ज्यादा जहरीली दवाइयों का प्रयोग किया है। अब कीड़े की क्या शामत आई है कि वह आत्महत्या करने हेतु जहरीले बेर का सेवन करेगा?"

"कोई भी पशु–पक्षी और कीड़ा खुद को मिलनेवाला खाद्य पदार्थ खाने से पहले नाक से सूंघकर खुशबू लेता है, जाँच लेता है कि खाना उसके खाने के योग्य है या नहीं। यह समझने के लिए मैं अपनी आँखों देखी एक बात बताना चाहता हूं। अपने गांव जामनगर में एक दिन एक होटल के आंगन में बैठकर, एक नजारा देखते हुए मैंने होटल के मालिक की कुछ बातें सुनी। मैंने देखा कि होटल के वेटर ने कोई चार–पांच दिन पुराने डबल रोटी (ब्रेड) के कुछ टुकड़े एक कुत्ते के सामने खाने के लिए डाल दिये। मैं और होटल का मालिक यह नजारा देख रहे थे। कुत्ते ने नाक से सूंघकर पहले ब्रेड को जांचा, फिर मुंह मोड़कर उसे बिना खाये वहां से चला गया। यह देखकर होटल के मालिक ने वेटर से कहा 'अरे भाई! उठा ले ब्रेड के टुकडे, यह ब्रेड कुत्ते के नहीं बल्कि मनुष्य के खाने योग्य है। इन दो ब्रेड के टोस्ट – सैंडविच बनाकर हम किसी भी मनुष्य को खिला देंगे। पता भी नहीं चलेगा और उपर से शायद उसी प्रकार के टोस्ट – सैंडविच का और ऑर्डर भी मिलेगा। उठा ले उठा ले, इसी से तो कमाई होगी।' शायद यही कड़वा सत्य कहीं न कहीं आपके जीवन से भी जुड़ा होगा।"

अब बेर जैसी ही एक बात जो अंगूर (द्राक्ष) के बारे में है, वह मैं बताता हूं। आज मंडी में बगैर बीज (सीडलेस) अंगूर की भारी बिक्री होती है। अगर इन्हें काटकर देखेंगे तो अंदर मरे हुए बीज नजर आयेंगे। तो फिर उस प्रकार के अंगूर को बगैर बीज (सीडलेस) कैसे कहा जा सकता है? सच यह है कि बीज की वृध्दी को रोकने हेतु जब बेल पर अंगूर छोटे–छोटे होते हैं, तब अंगूर के पूरे गुच्छे को सफेद चूने जैसे जलद एसिड में डूबोया जाता है। इस काम में काफी सावधानी रखनी पड़ती है, क्योंकि अगर गलती से वह सफेद एसिड पत्तों को जरा भी छू गया, तो पूरी बेल जलकर खत्म हो जाती है। अंगूर को नपुंसक (सीडलेस) बनाकर, फिर उसी की वृध्दि के लिए अन्य रासायनिक खाद का उपयोग करके उत्पादन लिया जाता है। सत्व–तत्व मिलेगा ऐसा समझकर बाजार से हम अंगूर खरीदते हैं। पचास बार धोने पर भी वह सफेद बिंदी जैसे दाग नहीं निकलते। बिना सोच–समझे अगर वह अंगूर दमा की बीमारीवाला खा ले, तो शायद उसे दमा का पंप या फिर ऑक्सीजन लेना ही पड़ेगा। ऐसी परिस्थिति का जिम्मा आधुनिक कृषि–पध्दति पर ही है। क्योंकि बगैर बीज के अंगूर की उपज लेने के लिए जो सफेद और तीव्र एसिड का उपयोग होता हैं उसका नाम है जुबरेलीक एसिड, जिसका गुण–धर्म संडास के सफाई में आनेवाले एसिड के समान है। इसी एसिड का उपयोग टमाटर, शिमला मिर्ची जैसी सब्जी उगाने में भी होता है। ऐसी सब्जी और अंगूर से पावभाजी, टमाटर–सॉस, शराब, किशमिश जैसे कई खाद्‌य – पदार्थ बनते हैं। ये तो सिर्फ आधुनिक कृषि–पध्दति और उत्पादन की कुड बातें हुई। मगर इससे भी अधिक चौंका देनेवाली बात कुछ और हैं। समाज में दो फल देने की या फल उगाने की शक्ति न हो, उसे हम हिजड़ा या सिर्फ ताली बजानेवाले (नपुंसक) कहते हैं। आजकल इन लोगों की संख्या बढ़ रही है। वह भला कैसे? क्योकि जिस बीज की अंकुरित होने की शक्ति एसिड के व्दारा छिन गई हो, ऐसा कृषि उत्पादन खाने से मानव–समाज की क्या दशा होगी? भले आप को आधुनिक खेती–पध्दति से चार गुना उत्पादन मिलता है, मगर ऐसा उत्पादन भला किस काम को जो हमें नपुंसक, कमजोर और बीमार बना दे। इस बाद का ठोस सबूत है; ना–मरदी के इलाज के लिए विदेश की 'वियाग्रा' नाम जैसे कई दवाइयों का भारत के बाजारों में बिकना।

सच तो यह है कि प्राकृतिक रूप से उगे फल और अनाज की सही पहचान पशु–पक्षी और किड़ों को सबसे अधिक होती है। जिस फल में सबसे अधिक मिठास और सत्व–तत्व होगा उसी फल में सर्व प्रथम पक्षी अपनी चोंच मारेगा। पक्षी की इस प्रकार की सही पहचान का प्रयोग हमारे रामायण ग्रंथ में शबरी माताजी ने किया है। प्रभु रामजी को सभी प्रकार के सत्व – तत्व एक साथ मिल जायें इसलिए शबरी माँ ने पक्षी के जूठे बेर

रामजी को खिलाए थे। अब आप ही बताइए कि बगीचे में आधुनिक खेती–पध्दति का जो बेर है क्या इनमें वह मिठास और सत्व–तत्व है? जिन्हें खाने के लिए कीड़े या पक्षी आकर्षित हों। ये तो हम इन्सान ही ऐसे नासमझ हैं जो दो लाख रूपये के लालच में आकर जहरीले बेर खाये जा रहे हैं।

सावेजी ने मुझे समझाया कि "अगर आपको कीड़ों की खाद्य – पदार्थ पहचान शक्ति को देखना हो तो एक प्रयोग कीजिए। हम धान (पॉलिश) कीजिए। एक को डबल पॉलिश कीजिए और दूसरे को बिलकुल कम। अब तीन बोरों में अलग–अलग चावल भर दीजिए। एक बोरे में कम, दूसरे में ज्यादा पॉलिश किए हुए और तीसरे में पूरा साबुत धान, अर्थात बिना पॉलिश किया यानी छिलके सहित वाला धान। तीनों बोरियां जमीन पर रख दीजिए। बिना पॉलिश के धान में छिलके के कारण कीड़ों को अंदर जाने का रास्ता नहीं मिलता इसलिए वह पूरी तरह से सुरक्षित है। मगर कम पॉलिशवाले चावल में कीड़े पहले आ जायेंगे। क्योंकि उसी में मिठास और सत्व–तत्व ज्यादा रहते हैं। डबल पॉलिश के कारण सारी मिठास और सत्व–तत्व कम होते हैं, इसलिए उस चावल में आखिर में कीड़े लगेंगे। अब कम पॉलिशवाले चावल को कीड़ों से बचाना हो तो उसे सुरक्षित रखने के कई तरीके हैं। जैसे नीम के सुखे पत्ते। गाय के गोबर से बनी राख। हल्दी और रेंड़ी तेल (अंरडी – केस्टर – ओईल) लगाना। तम्बाकू से बनी तपकीर का उपयोग। या फिर पिरामिड के आकारवाले गोदामों में रखना उचित है। न कि जहरीली गोलियां रखना। सब से अच्छा तो यह है कि अगर मिळास बढ़ानी हो तो पूरा धान रखिये और रोज लगनेवाला चावल घर पर ही साफ कीजिये, ठीक वैसे ही जैसे हमारे पूर्वज करते थे।"

आधुनिक कृषि के व्दारा प्राप्त जहरीले उत्पादन की सही पहचान अब विदेश के लोगों को हो चुकी है। अब वे यह भी जान गये हैं कि ऐसे उत्पादन को खाने से शरीर के कई महत्वपूर्ण अंगो को बूरी तरह से क्षति पहुंचती है। जिंदगी भर की पूंजी भी तब उसे नहीं बचा पाती। और आखिर मे वे अंग काट कर फेंक देने पडते हैं? इससे तो अच्छा है सेन्द्रिय पदार्थ से प्राप्त प्राकृतिक उत्पादन खाना, जिस की सही पहचान पशु, पक्षी और कीड़ो को है। विदेशी गोरे इतने बेवकूफ और मूर्ख नहीं जो इनका यूं ही चार गुना ज्यादा दाम चुकाते हैं। वे जानते हैं कि भले ही प्राकृतिक उत्पादन के दाम ज्यादा है, मगर बीमारी, अनावश्यक डॉक्टरी खर्च और किसी भी बाजार में नहीं मिलनेवाले शरीर के अंग भी सुरक्षित रहते हैं। इन सभी फायदों के सामने ये चार गुना दाम तो कुछ भी नहीं।

मुख्य रूप से हमारी जो बातें चल रही थीं, वे थीं सेन्द्रिय खेती के उत्पादन के दाम आखिर इतने ज्यादा क्यों? मैंने विदेश की दुकान में रखे दो प्रकार के नारियलों का दाम जांचा। हरे नारियल जो आधुनिक कृषि के उत्पादन थे, उनका बिक्री दाम था एक पौंड, जबकि सेन्द्रिय कृषि व्दारा प्राप्त नारियल का दाम था चार पौंड। मैंने सारी जानकारी दी और अपने बारे में भी बताया। सुनकर वह काफी प्रभावित हुआ और हमारे नारियल का दो पौंड देते हुए एक बड़ा ऑर्डर भी दे डाला। मैं ठहरा व्यापारी इस कारण मुनाफा कितना मिलेगा, यह गिनती भी शुरू कर दी। जैसाकि मैंने बताया था कि सावेजी के बगीचे में उगे एक नारियल के दो रुपये मिलते हैं। तब 50 नारियल x 2 रुपये = 100 रुपये की आमदनी होती है। वही नारियल अब विदेश में भेजने से मुझे कितना मुनाफा होगा? यह गिनती की। भारत में उस वक्त एक पौंड सरकार को देने से 40 रुपये मिलते थे। मतलब यह कि दो पौंड के मुझे 80 रुपये मिलने थे। अब वही 50 नारियल x 80 रुपये (दो पौंड) = यानी 4000 रुपये हुए। नारियल बगीचे से लंदन की दूकान तक पहुंचाने का खर्च ज्यादा–से–ज्यादा गिनने पर भी 2000 रुपये का मुनाफा, मिलेगा, जबकि सावेजी को सिर्फ 90 रुपये मिलते है। यह तो सिर्फ 50 नारियल के मुनाफे की बात हुई। पुरे फार्म के नारियल विदेश में बेचने से कितना मिलेगा? वह गिनती अब आप ही कर लें। गिनती करने से पता चलेगा कि अब शायद मेरे जैसे व्यापारी का पेट भर जायेगा! लंदन से मिले बड़े ऑर्डर को पूरा करने के लिए मैंने हर तरह की तैयारी शुरु कर दी। भारत सरकार के सभी कानूनी दाँव – पेच समझकर मैंने माल निर्यात करने का नंबर भी हासील कर दिया। उसके बाद मैंने माल विदेश भेजने की सारी योजना सावेजी को बताई, जिसे सुनकर सावेजी बहुत नाराज हो उठे। वह भला क्यों?

दुःखी मन से सावेजी ने एक बहुत कड़वा सत्य बताते हुए कहा कि "लंदन के इन्ही गोरों ने भारत को बर्बाद करने में कोई भी कसर बाकी नहीं छोड़ी। भारत की सारी संपत्ति लंदन ले गये। अब लूटी हुई संपत्ति दिखाकर अगर भारत की प्रजा को नंगा नाच नचाएंगे तो शायद प्रजा और सरकार ऐसा करने को तैयार हो जाए ता इसमें मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा। क्योंकि उनके तैयार किये ऐसे कई भारतीय हैं जिन्हें हम 'देशी गोरा'

कहते हैं। वे तो आज भी उन्हें हर तरह की मदद कर रहे हैं। आज भी उन्हीं विदेशी लोगों के व्दारा भारत में राज चल रहा है। उसका ठोस सबूत देखना है?

अंग्रेजो ने कूटनीति अपनाकर भारत–पाकिस्तान बना डाला। जब अंग्रेज भारत छोड़कर गये तब भारत और पाकिस्तान की तिजोरी पूरी तरह से खाली करके गये। उस वक्त दोनों देशों के उपर किसी भी प्रकार का काई कर्ज नहीं था। मगर आज उन्हीं गोरों के हाथों हम ठगे जा रहे हैं। और देखिए दोनों देशों की क्या हालत है? फिर किस काम की है यह संपत्ति? जो साथ में जानेवाली नहीं, और अगर जरूरत जितना मिल जाता है तो हमें संतोष कर लेना चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे कि बाघ–शेर जैसे प्राणी संतोष और स्वाभिमान के साथ जीते है। बाघ और शेर जब जरूरत हो तभी शिकार करते हैं। पेट भर जाने के बाद अगर कोई शिकार निकला, तो भी वे उसे छूते नहीं। मगर इन्सान ही एक ऐसा प्राणी, बल्कि जानवर है, जो जितना हाथ लगता है, सब कुछ शिकार कर डालता है! जरूरत हो या न हो बस काट–काटकर फ्रीज या बड़े–बड़े कोल्ड स्टोरेज में संग्रह करके रखता है। यही बात धन कमाने के बारे में भी है। आज आदमी दूसरों का हम छीनकर तिजोरी भर कर रखता है। आनेवाली पीढ़ी के हाथ में बिना मेहनत किये सारी संपत्ति लग जाती है। यह उसे कामचोर, आवारा, जुआरी, ऐयाशी और शराबी बना डालती है। पर कुछ अच्छे लोग ऐसी संपत्ति का सदुपयोग भी करते हैं। मगर समाज में ऐसे लोग कितने प्रतिशत हैं? मेरी तो हरदम यही इच्छा बनी रही है कि जब तक थोडे मुनाफे से जरूरतें पूरी हो जाती हों तब तक किसी भी वस्तु के दाम बढ़ाना उचित नहीं। जैसा मैं सोचता हूं वैसा ही आचरण भी करता हूं। जैसाकि आपने मुझे बारबार कहा था कि मेरे नारियल के पौधे सबसे अच्छे हैं और पूरे भारत के किसान समाज में मशहुर हैं। इसलिए हमें बिक्री दाम बढ़ाना चाहिए। मगर मेरा परिवार संतोषी और स्वाभिमानी हैं क्योंकि हम जानते हैं कि किसान जगत का रखवाला है और रखवाले को ठगना प्रभुजी को ठगने के समान होता है। इसी कारण मैं जहां तक हो सकता है, दाम नहीं बढ़ाता।

विदेश में उत्पादन बेचने की बात मेरे सामने भी आई थी। मगर मैंने साफ इनकार कर दिया। क्योंकि हम आज भी मानते हैं कि किसी भी प्रकार के माल, प्राकृतिक संपत्ति और उत्पादन पर सबसे पहला हक भारतवासी का ही बनता है। आज रासायनिक खाद का जो उत्पादन है उससे तो भारतवासी कमजोर, डरपोक और नपुंसक बन गया है। किसी भी क्षेत्र में देखिए, भारतवासी आखिरी नंबर पर मिलेंगे। और जो बुध्दिवान है वह गोरें की गुलामी (नौकरी) करतें है। इसलिए हम चाहते हैं कि हर भारतवासी निरोगी, तंदुरुस्त, उत्साही और दयावान बने। ज्यादा न सही, मगर बूंद जितना भी सत्व–तत्व अगर हम देशवासियों के भोजन में पहुंचाते हैं तो उससे हमें बहुत संतोष और आनंद मिलता है। ये सब मेरे निजी विचार हैं। मुझे कोई हक नहीं बनता कि मैं आपको माल निर्यात करने से रोकूं। साथ ही एक बात और जो 100 प्रतिशत सच है; वह यह कि हम भारतवासियों को अपने लोगों के किए किसी भी काम की कोई कदन नहीं। इसलिए कहा जाता है कि काम करो भारत देश में और उसकी वाहवाही होती है विदेश में। अगर देश में प्रचार करने के बाद भी प्राकृतिक उत्पादन का बाजार खड़ा करने में आप असफल रहे तो जरूर विदेश में माल भेजना। यह मेरी इच्छा और आप से नम्र विनती है।"

सावेजी की ज्यादा मुनाफा न कमाने की बातें हमारे दिलोदिमाग और आत्मा को छू गई। इसी कारण से हमने विदेश में कृषि उत्पादन निर्यात करने का ख्याल दिल से निकाल दिया।

मुंबई में रासायनिक खादवाले और पाउडर से पकाये हुए एक दर्जन आम 250 3पये में बेचे जाते हैं। विदेश के हिसाब से अगर गिनती की जाये तो हमारे सेन्द्रिय कृषि के आम 1000 रुपये में प्रति दर्जन बिक जाते। मगर सावेजी की आध्यात्मिक बातों को ध्यान में रखकर और लोगों को आम की सही पहचान कराने के उद्देश्य से हमने रासायनिक खाद से भ्झी कम दाम में, यानी सिर्फ 100 रुपये प्रति दर्जन का बिक्री –भाव रखा था। हमने 2000 बक्से बगीचे से मंगवाये थे। हमने मुंबई जैसे बड़े शहर में दो साल तक अखबारों में लगातार इश्तहार भी दिए थे। काफी पढ़े–लिखे लोगों ने हमारे आम खरीदे। कई लोगों ने वाहवाही भी की थी। फिर भी हम सेन्द्रिय कृषि के आम बेचने में पूरी तरह से असफल रहे। 100 रुपये में 35 रुपये तो सिर्फ बक्से और बगीचे से मुंबई लाने का खर्च था। बाकी कृषि बाजार समिती, सरकारी कम्रचारी के घूस और अन्य खर्च अलग से। आप यकीन नहीं करेंगे कि हम इतने बड़े शहर में 1000 बक्से भी काफी मुश्किल से बच पाये थे। बाकी बचे 1000 बक्से अपने ही सर पर गिरे। काफी नुकसान उठाना पड़ा था। जानते हैं क्यों?

जलस्तर में वृध्दि

सावेजी के दस एकड़ फार्म के लिए सिर्फ एक ही कुआं है। सप्ताह में सिर्फ तीन दिन ही फार्म में जल – सिंचन के लिए मोटर चलाकर बिजली का पयोग होता है। हर साल वर्षा ऋतु में सावेजी का कुआं सम्पूर्ण रूप से भर जाने के बाद शेष पानी छलककर बाहर निकल जाता है। सावेजी की खेती–पध्दति मे पानी उपयोग मात्र घी जितना ही होता है। इसी कारण 1960 से लेकर आज तक गर्मी के दिनों में भी कुएं का जलस्तर 100 फुट से भी नीचे चला जाता है या पूरी तरह से सूख जाता है। वहीं सावेजी के कुएं का पानी आज तक कभी भी 40 फुट से नीचे गया ही नहीं । क्योंकि दूसरे किसान आधुनिक खेति पध्दति का उपयोग करते है जिसकी कार्य–पध्दति में 'आमदनी अठन्नी और खर्चा एक रूपया' जैसी बात होती है। उनकी इसी नासमझी के कारण गर्मी के दिनों में उनके घर की महिलाओं को पानी भरने के लिए सावेजी के कुएं पर आना पड़ता हैं।

1987 में संघवी फार्म की शुरुआत हुई थी। तब हमारे पहले बोरवेल में पानी का भंडार 80 फुट पर मिला था। जैसे – जैसे बगीचे का विकास हुआ–वैसे–वैसे हर बार हम नये बोरवेल का उपयोग करते गये। आज संघवी फार्म में कुल मिलाकर पांच बोरवेल हैं। हर नये बोरवेल में हमें जल नीचे जाते हुए मिला। मगर हमारा एक भी बोरवेल 120 फुट से गहरा नहीं।

क्योंकि पास के दूसरे किसानों के पानी कार सतर जहाँ 100 फुट से भी नीचे है वही संघवी फार्म में पानी 60 फुट पर कैसे? इसी बात और चमत्कार को ध्यान में रखकर सावे परिवार स्वाध्याय परिवार से हुड़ गया।

सौ की आमदनी में दस का खर्च अधिक है

1951 में सावेजी ने कल्पवृक्ष फार्म पर कुआं सिर्फ 20 फुट गहरा ही खोदा था। मगर जबसे गुजरात सरकार ने उमरगाँव में उद्योग स्थापित किए। तभी से सब को अधिक से अधिक पानी देने के लिए सरकार ने कई बोरवेल भी खुदवाए। गाँव के किसानों ने भी आधुनिक कृषि का दामन पकड़ा हुआ है। इन दोनो कारणों से पानी का स्तर काफी नीचे चला गया है। कल्पवृक्ष फार्म भी इसी का शिकार है।

कल्पवृक्ष में भी 20 फुट के पानी का स्तर नीचे जाने लगा था। इसी कारण से जब तीन बार कुआं खोदा गया तो पानी 40 फुट नीचे मिला। जबकि पास के अन्य कुओं और बोरवेल का पानी 100 फुट से भी ज्यादा नीचे है। कई किसान तो बोरवेल में पानी न होने पर भी सूखे बोरवेल में मोटर चलाते हैं। इस कारण हवा का दबाव तैयार होता है और परिणाम यह होता हैं कि समुंदर का खारा पानी का बोरवेल में प्रवेश होना। बोरवेल में प्रवेश करता है, तब आस–पास के मीठे पानीवाले बोरवेल और कुएं भी थोड़े बहुत प्रभावित होते है। इस बड़ी समस्या के कारण सावेजी आज महसूस करते हैंकि खुद के कुएं का गंगाजल जैसा मीठा पानी स्वाद में जरा खारा हो रहा है। अब यही परिस्थिति आगे भी बनी रही तो एक न एक दिन कुएं का सारा पानी खारा हो सकता है। तब पानी बिना कैसे जीवन बितायेंगे? कैसे कल्पवृक्ष फार्म के पेड़–पौधों को जीवित रख पायेंगे? ये सारे प्रश्न सावेजी के सामने खड़े हुए थे।

सावेजी के मन में उठनेवाले ज्यादातर प्रश्नों और उलझनों के जवाब जंगल के पेड़–पौधों से मिल जाते हैं। इस बार भी सावेजी को जंगल का अवलोकन काम आया था। सावेजी ने सोचा कि "जिस प्रकार जंगल के पेड़ पौधों को जुताई, खाद, खरपतवार, फसल–रक्षा की जरूरत नही वैसे ही जल – सिंचन की भी कोई जरूरत नहीं? वहां तो कोई जल सींचने जाता ही नहीं! तो फिर पानी–सिंचन के पीछे इतना भारी खर्च करने की मुझे भी क्या जरूरत? जंगल के पेड़ – पौधों को प्रकृति ने इतनी सूझबूझ दे रखी है कि वर्षा के सिर्फ चार माह ही उन्हें पानी मिलेगा और बाकी समय बिना पानी के ही बिताने होंगे। इसलिए जरूरत भर पानी खुद के पास संग्रह कर के रखना होगा। इस तरह जंगल की वनस्पति कम पानी से कैसे जीवित रहती है, यह बात समझ में आ गई तो फिर मेरे बगीचे के पेड़ों को भी वैसे ही जीने की समझ मैं क्यों न दूं?"

सावेजी ने इसे समझने के लिए एक प्रयोग का आयोजन किया। यह प्रयोग करने में उन्होंने काफी जोखिम भी उठाना पड़ा सावेजी ने तीस साल तक काफी उत्पादन देनेवाले चीकू के पेड़ पर प्रयोग किया। चीकू के पेड़ के आजू–बाजू जल–सिंचन के लिए नाले थें उनमें से छः नाले सावेजी ने सम्पूर्ण रूप से बंद कर दिये। उनका यह प्रयोग विश्व का प्रथम प्रयोग था, एक ऐसा प्रयोग जिसमें अब चीकू के पेड़ के लिए जुताई, खाद, पानी, खर–पतवार, और फसल–रक्षा की कोई भी सुविधा न थी।

प्रयोग का एक साल समाप्त होने पर यह परिणाम सामने आया कि बिना सिंचन से चीकू का उत्पादन कम हुआ। पहले जिस चीकू के पेड़ से दस टोकरी जितना उत्पादन मिलता था। वह अब आठ टोकरी पर आ गया। मगर यह क्या बात हुई! पहले चीकू की दस टोकरी से ज्यादा वजन तो आठ टोकरी का हुआ! इसका मतलब कि चीकू कम जरूर हुए, मगर पहले से बड़े आकार के मिले। जैसे जैसे फल बड़े होते हैं, वैसे–वैसे मंडी में बाजार–भाव भी ज्यादा मिलता हैं इस प्रकार विश्व के इस प्रथम प्रयोग से सावेजी को खूब मुनाफा और पानी–सिंचन की पूर्ण बचत हुई। साथ ही पेड़ से फल तोड़ना, टोकरी में बांधना, पानी–मोटर और बिजली के खर्च जैसी बड़ी लागत भी कम हुई। सबसे बड़ा मुनाफा जो था, वह था पानी का। इस प्रकार सावेजी ने कृषि की जो शुरुआत सर्वप्रथम सेन्द्रिय पदार्थ और पानी से की थी, वह अब इस प्रयोग से सम्पूर्ण 'प्राकृतिक कृषि' हुई। इस प्राकृतिक कृषि से उन्हें 100 रुपये की कमाई पर जो 10 रुपये की लागत थी, वह अब घटकर 7 रुपये हो गई! अब जो मुख्य खर्च था, वह सिर्फ पेड़ से फल तोड़ने, फल की खुबसूरती बढ़ाने, शुध्दता लाने के लिए पानी से सफाई करने का और टोकरी को मंडी में भेजने का था। जंगल की तर्ज पर ही सिर्फ वर्षा ऋतु के पानी पर चल रहे इस चीकू के प्रयोग के आज छः साल पूरे हो गये हैं। अब तक न तो उत्पादन कम हुआ और न ही पेड़ पर ही किसी प्रकार का कोई बुरा पिरणाम नजर आया। इस प्रकार सावेजी को प्रभु श्रीकृष्ण ने जिन–जिन कामों के लिए नियुक्त किया था, वे सारे करीब–करीब पूरे हो रहे थे। जिस खोज के लिए प्रभुजी ने सावेजी को निमित्त बनाया था, उस खोज और पेड़ की माँ की तलाश भी अब पूरी हो चुकी थी। संक्षेप में, सावे गुरुजी पर्यावरण के भक्षक न होकर पूरी तरह उनके रक्षक बन गये। और विश्व के सारे नये प्रयोग उन्होंने किसान समाज के चरणों में रख भी दिये।

"हर किसान को यह प्रथम सोचना चाहिए की कृषि में खुद को अच्छा मुनाफा चाहिए या उत्पादन? आधुनिक कृषि में उत्पादन जरूर अधिक मिलता होगा, मगर मुनाफा तो गायब हो जाता है। इस कारण में हरबार कहता हूँ कि, मेरा फार्म मेरे लिए स्कूल और कॉलेज है। पेड़–पौधों को जुताई, खाद, पानी, खार–पतवार और फसल–रक्षा की कोई जरूरत नहीं इस ब्रम्हसत्य का ज्ञान मुझे प्रकृति के चक्र को देखकर ही मिला। इसी से मैंने प्रयोग किये। वाकई में पेड़–पौधों को क्या देना हैं, हमें उसी कि सही जानकारी प्राप्त करनी अत्याधिक जरूरी है। कृषि–कार्य करते समय पेड़–पौधों को क्या जरूरी है? कहां जरूरी है? कब जरूरी हैं? कितना जरूरी है? और किस तरह जरूरी है? इन सारी बातों को जानना अति आवश्यक है। इसी जानकारी के न होने के कारण किसान–समाज नासमझी में पेड़–पौधों पर अत्याचार करता हैं। वे आधुनिक कृषि पढ़े हुउ मगी अनुभवहीन लोगों की सलाह मानते हैं। ये डिग्रीवाले, जिनसे कमीषन (घूस) मिली हो, उन्हीं उत्पादकों का माल उपयोग करने की गलत सलाह देते हैं। बेचारे अनपढ़ किसान इस सलाह को सच मानकर खेतों में उनका उपयोग करते हैं। खुद तो दुःखी होते ही है, साथ–साथ पेड़–पौधों में बसे प्रभु रणछोड़रायजी, जो श्री कृष्ण भगवान का ही रूप हैं, उनको भी दुःखी करते हैं। आधुनिक खेती–पध्दति से पेड़–पौधों का गला घोंटा जाता है। इसी प्रकार पानी नहीं बल्कि नमी चाहिए, ऐसी बातें मेरे प्रयोग से सिध्द होती हैं। फिर भी इसे देखने के बावजूद हजारों लीटर पानी दे–देकर पेड़ – पौधों के नाक और मुंह बंदकर उनकी सांस बंद कर दी जाती है। मेरा बिना जल–सिंचन का यह प्रयोग जो चीकू के पेड़ पर सफल हुआ इसका मुख्य कारण, मुझे लगता है कि, चीकू की कलम रायण नाम के पौधों की जड़ पर भेट कलमकी जाती है। इसी कारण मुझे उत्पादन के साथ–साथ मुनाफा भी मिला है। मुझे यह प्रयोग मजबूरन करना पड़ा वर्ना मेरा ऐसा मानना है कि अगर सिर्फ नमी मिले इतने ही पानी का उपयोग करके कृषि की जाये तो पेड़ – पौधे खिल उठते हैं। और तभी ही यह सोने पे सुहागा जैसी बात होती है। संक्षेप में, सिर्फ बीज बोकर जल.सिंचन करें, यही मेरी नम्र विनती और सलाह है। अब तो मारी भी उम्र काफी हो गयी है। इसलिए कृषि के नये प्रयोग और खोज का जिम्मा आप लोगों पर है। कृषि के प्रयोग से कुछ ऐसा कर दिखाएं कि दुनिया देखती रह जाए। पर्यावरण की रक्षा और किसान की आत्महत्या रोकने में आप लोग पूरी तरह से सफल हों, मेरी यही शुभकामना और आशीर्वाद है।"

महान किसानों को मिलन

दोनों के बीच हुई चर्चा कुछ इस प्रकार थी :

फूकुओकाजी : मुझे अपनी बीमारी के कारण ही प्राकृतिक चक्र की सही पहचान हुई। प्रकृति के रहस्य जानने के बाद मैंने 20 वर्ष से सिर्फ प्राकृतिक कृषि ही की है। भारत देश में तो नई फसल उगाने के लिए जुताई करके बीज बोये जाते हैं, मगर मेरी कार्य–पध्दति अलग है। मैं सभी बीजों पर सूखी मिट्टी डालकर गोली बनाता हूं। और रोटी बनाने के लिए जैसे आटे में पानी डालकर सानते हैं, मैं बीज और मिट्टी का वैसा ही मिश्रण करता हूं। सनी हई मिट्टी से छोटी छोटी गोलियां बनाता हूं, जिल्हें धूप में सूखा कर रखता हूं। चिड़िया बीज न खायें, इसलिए बीज के ऊपर मिट्ट डालकर गोलियाँ बनाता हूं। कुछ दिनों में जब मेरी फसल तैयार होकर काटने योग्य होती है, तब सूखाकर रखी गयी बीज की गोलियों को मैं खेतों में इधर–उधर छिड़क देता हूं। खड़ी फसल की छांव में गोली के बीज अंकुरित होने लगते हैं। इसके बाद मैं फसल के दाने ऊपर से ही काटकर ले लेता हूं। बाकी बचे पौधों के शेष भाग को खेत से निकाले बिना खाद में रूपांतरित हो जाते हैं। इस प्रकार नई फसल को खाद भी मिल जाता है। मैं मेरी फसल प्राकृति रूप से ही तैयार होती है। पिछले 20 वर्षों से मैं इसी प्रकार से फसल लगाकर उत्पादन पाता रहा हूं मेरी खेती में जुताई, खाद, पानी फसल–रक्षा और खरपतवार की जरूरत पड़ती ही नहीं। फिर भी मुझे अपेक्षित उत्पादन मिलता है। सावेजी, अब आप बताएं कि आपकी और मेरी खेती पध्दति में क्या अंतर हैं? और प्राकृतिक कृषि से अच्छा उत्पादन पाने के लिए क्या क्या करना जरूरी है?

सावेजी : कुछ साल पहले मुझे आपकी कृषि के बारे में एक किताब पढ़ने को मिली थी। मैं आपके सारे कृषि–सिध्दांतों से पूरी तरह सहमत हूं। आपकी खेती–पध्दति के कई प्रयोग भारत में किये गये हैं। मगर किसानों को जब उसमें सफलता नहीं मिली तब प्रयोग में सफलता न मिलने के कारण मुझसे पुछे गये। मेरे अनुभव के आधार पर मैंने कहा कि जापान में जब कभी गर्मी की मात्रा बढ़ती है तो फौरन बारिश होती है, जबकि भारत में बारिश का मौसम सिर्फ चार माह का ही होता है। इसलिए भारत के किसान जुताई के बाद एक–एक पंक्ति में बीज बोते हैं और चिड़ियों से बीजों को बचाने के लिए मिट्टी से उन्हें ढंक देते हैं। दूसरी बात, हमारे यहां आपके देश की तरह पानी नहीं बरसता। और बार–बार बारिश भी नहीं होती। इसी कारण हमारे देश में जितना पानी है, उसका उपयोग घी जीतना हो सोच–समझकर करना होता है। जब जुताई करके बीज बो दिये जाते हैं, तब उतने विसतार में हम पानी का सिंचन करते हैं। अगर किसान गोले बनाकर उसे खेतों में डालेगा तो प्रश्न उठता है कि पानी कब बरसेगा? और कब बीज अंकुरित होंगे? और कब फसल तैयार होगी? इन बातों को ध्यान में रखकर हमें जुताई के साथ–साथ जल–सिंचन करना जरूरी होता है। शायद आप सवाल करेंगे कि भाई साहब, वह जुताई क्यों? बीज के गोले बनाकर भी तो पानी का सिंचन हो सकता है। मेरी खेती–पध्दति के अनुसार यह गलत है। क्योंकि आप बीज के गोले बनाकर उस पर पहले उगी फसल के बचे हुए पौधों को जमीन पर ही दबा देते हैं जबकि हम उसे जमीन से कुछ दूरी पर से काट लेते हैं जिससे हमारा पशुधन जीवित रहता है। पशुधन को हम इस पौधों के बचे हुए सेन्द्रिय पदार्थ खिलाकर उसी से नई फसल के लिए खाद के रूप में गोबर प्राप्त करते हैं। फसल–रक्षा के लिए गौमूत्र लेते हैं। निरोगी शरीर पाने के लिए दूध लेते हैं। ट्रान्सपोर्ट और जुताई के लिए बैल भी प्राप्त करते हैं। बचे हुए पौधों के सेन्द्रिय पदार्थ अगर जमीन से नहीं काटे जाएं, तो सूखने के समय ये पौधे हवा के बजाय जमीन का ही संग्रह किया हुआ नाइट्रोजन चूस लेंगे। इसलिए मेरी खेती–पध्दति में हरी घास या हरे रंग के पौधे काट बिना जमीन में कभी दबाये नहीं जाते। प्रथम जुताई के समय जीव–हत्या होगी, शायद अब आपका अगला प्रश्न यह हो। जीव–हत्या नहीं होगी। ऐसा मेरा अनुभव है। फिर भी जाने–अनजाने किसी जीव की हत्या हो भी गयी, तो वह प्राकृतिक है। जीव हत्या से पाप मिलता है, यह बात भी 100 प्रतिशत सच है। मगर इस पृथ्वी पर जन्म लिया, यही सबसे बड़ा पाप है। पाप–दोष प्रायश्चित के लिए सभी धर्मो में उचित मार्गदर्शन दिया गया है। यानी माला जपना, नमाज पढ़ना जैसे कई उपाय हैं। जब पाप की बातें निकली है, तो फूकुओकाजी मैं आपसे एक सवाल पूछता हूं कि मान लीजिये एक बिल्ली खुद के जीवनचक्र को चलाने के लिए एक चूहे को पकड़ने के लिए दौड़ रही है और यदि आपके हाथ में लकड़ी है; तो आप शायद बिल्ली को रोककर एक जीवहत्या रोकते हैं। ऐसे में आप ही बताइए कि क्या इस कम्र को आप पुण्य समझेंगे? या फिर वह बिल्ली जो भुखी मरी उसको पाप समझेंगे? मेरे इसी प्रश्न में आपका जो दूसरा प्रश्न था कि कृषि में क्या

करना जरूरी है, इसका उत्तर भी समाया हुआ है।

प्रश्न का उत्तर देने की बजाय फूकुओकाजी तो बस मंत्रमुग्ध होकर सावेजी के तत्वज्ञान और आध्यात्मिक बातों पर चिंतन करने लगे कि किसान–समाज सर उठाकर, स्वाभिमानी बनकर, किसी तरह जी सके, ये रहस्य वे सावेजी के मुंह से सुन रहे थे। सावेजी के शब्दों से एक प्रकार की प्राकृतिक ऊर्जा निकल रही थी। जैसे माँ की गोदी में सर रखकर जिस ऊष्मा की अनुभूति होती है, ठीक वैसा ही वह महसूस कर रहे थे फूकुओकाजीने सावेजी से प्राकृतिक कृषि की अधिक जानकारी देने का आग्रह किया।

'कृषि में क्या करना चाहिए, इस बात की समझ तो सभी किसानों को होती ही है। मुझे तो सिर्फ इतना ही कहना है कि कृषिचक्र में कुछ भी करने की सोचेंगे तो शायद कुछ भी नहीं मिलेगा। कृषि – कार्य में सिर्फ पान का सिंचन करे साथ और सहयोग देंगे तो प्रकृति आपको बहुत कुछ (भरपूर) देती है। इस बात का ठोस सबूत हैं हमारे कल्पवृक्ष और संघवी फार्म।

सावेजी प्राकृतिक कृषि की बस इतनी ही व्याख्या कर शांत हो गये। जबकि महर्षि जैसे महान किसान मासानोबु फूकुओकाजी तो निसर्ग प्राकृतिक कृषि मंदिर के स्थापक शिल्पकार सावेजी को एकटक देखते ही रह गये।

फूकुओकाजी : मैं महात्मा गांधीजी की पवित्र भूमि के दर्शन के लिए भारत आया हूं। मुझे गांधीजी की जीवन–चरित्र की हर छोटी–से–छोटी बातें मालूम हैं। मगर अफसोस कि मुझे कभी बापू के दर्शन नहीं हुए। मगर आज मुझे इस कल्पवृक्ष के मंदिर में सावेजी के रूप में गांधीजी का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। इसलिए मैं सावे गुरुजी को भारत के "दुसरे गांधीजी" कहकर मानपत्र देता हूं। मुझसे विश्व के कई लोगों ने एक सवाल पूछा है कि एस विश्व में आपकी खेती – पध्दति देखकर, समझकर अपनानेवाले कितने किसान हैं? इस वक्त मैं कल्पवृक्ष मंदिर में खड़ा हूं इसलिए झूठ नहीं बोलूंगा कि विश्व में तो क्या, मेरे अपने जापान में भी मेरा एक भी अनुयायी नहीं। इस बात का मेरे मन में कई दिनों से खेद था कि प्राकृतिक कृषि की आध्यात्मिक बातें समझनेवाला या करनेवाला इस पृथ्वी पर कोई नहीं। मगर आज वह जहरीला कांटा दिल से निकल गया है। अब प्रभुजी मुझे कभी भी मृत्यु दें, परवाह नहीं। क्योंकि मेरे मन में अब कोई खेद नहीं। क्योकि अब प्राकृतिक कृषि करनेवाले और करानेवाले सावे गुरुजी तो यहाँ हैं। मैं आज तक यह नहीं समझ पाया कि आँखों से देखने के बाद भी लोग प्राकृतिक कृषि क्यों नहीं अपनाते? सावेजी, इसका क्या कारण है? और आप सेन्द्रिय कृषि के प्रचार में कहां तक सफल हुए हैं? आपकी कृषि देखकर कितने किसान सेन्द्रिय कृषि कर रहे हैं?

सावेजी : मेरा अनुभव भी आप जैसा ही है। मैंने जब सेन्द्रिय कृषि शुरू की तब मेरे परिवार को समाज के काफी विरोध का सामना करना पड़ा था। मेरे गांववालों ने मुझे पागल और नासमझ इंसान का प्रमाणपत्र दिया था। सामान्य रूप से किसान मेरे खेतों के किनारे से ही मेरी खेती–पध्दति का अवलोकन कर रहे हैं। कुछ लोगों ने मेरी खेतों के किनारे से ही मेरी खेती–पध्दति का अवलोकन कर रहे हैं। कुछ लोगों ने मेरी कार्य–पध्दति को थो
ड़ा–सा अपनाया हैं। मगर साथ रासायनिक खाद, दवा और आधुनिक कृषि तकनीकी ज्ञान का भी उपयोग करते हैं। यानी वे मेरी कृषि को पूरी तरह से नही अपनाते। मुझे लगता है कि गीली लकड़ी का गीलापन निकल जाये तो उस लकड़ी से आग ज्वाला बनकर निकलती है। हमारी प्राकृतिक, सजीव, कुदरती, जैविक और आधारदायी कृषि भी गीली लकड़ी की भांति जल रही है। जब समाज हम जैसे प्राकृतिक कृषि प्रमी को पागल समझते है, तो फिर पागल की बातें कोन सुनेगा? मगर नही! मेरे जीवन में मात्र अशोक संघवी ही ऐसे अकेले व्यक्ति हैं, जिन्होंने पूरी तरह से मेरी खेती–पध दति में विश्वास रखा। इतना ही नहीं, पूरे विश्व को यह समझााने भी निकले हैं कि मैंपागल और नासमझ नहीं हूं। मेरे उस उमरगांव में करीबन 200 एकड़ भूमि पर सम्पूर्ण रूप से मेरी कार्य–पध्दति से सेन्द्रिय खेती की जाती है।

'किसान को ठगने का मतलब प्रभुजी को ठगना है।' यही सावे–संघवी का जीवनमंत्र है। इसीलिए हमें सेन्द्रिय कृषि के तहत कुछ भी बेचना जरूरी नहीं लगता। अगर हमें लोगों को लूटना या ठगना होता तो हम अपनी कार्य–पध्दति पेटेंट करवाते। अरे भाई! अब तक तो हमने ज्ञान के सागर से सिर्फ एक बूंद जितना ही ज्ञान हासिल किया है। इस प्रकार अब तक हमने कोई किताब भी नहीं लिखी। दूसरे किताबी कीड़े तो ज्ञान न होने पर भी बड़ी–बड़ी किताबें लिख डालते हैं और किसान भाइयों को ठगते हैं। अगर हम भी कुछ ऐसा करते तो शायद अधिक – से अधिक धन इकट्ठा

कर लेते। मैंने आज तक ऐसी कोई बात लिखकर नहीं रखी कि कितने किसान मेरे यहां आये और मुफ्त में जानकारी ले गये। इसलिए मुझे यह नहीं पता कि देश–विदेश के कितने लोगों ने मेरी खेती–पध्दति को अपनाया है? मगर जब से संघवी भाई मुण्से जुड़े हैं, तब से पूरे भारत और विदेशों से काफी चिट्ठयां आने लगी है। सेन्द्रिय कृषि में किसानों की रूचि जगी है। तभी तो हमारी मदद चाहते हुए हजारों खत आते हैं। यह बात सिध्द करती है कि विश्व में एक न एक दिन निश्चित ही सेन्द्रिय और प्राकृतिक कृषि की क्रांति आयेगी। आयेगी, और जरूर आयेगी। अगर अब भी किसान समाज नींद से नहीं जागा तो उनकी आर्थिक स्थिति, पर्यावरण और जमीन की उपजाऊ शक्ति कभी नहीं सुधार पायेगी। जो संसार हमें पागल और नासमझ कहता हो वह हम जैसों की बातें क्यों सुनेगा। इस बात को दिल में रखना शायद ठीक नहीं। फूकुओकाजी, मैने आपकी किताब में पढ़ा है कि धान के उत्पादन में आपका काफी अच्छा अनुभव रहा है। तो कृपा करके मुझे बताएं कि क्या धान के उत्पादन करने की मेरी कार्य–पध्दति सही है?

फूकुओकाजी : हमारे जापान में धान एक पंक्ति (कतार–लाइन) में लगायी जाती है। ताकि सभी पौधों को पूरी तरह से सूर्यप्रकाश मिल सके। मगर मैं तो बीज को गोला बनाकर ही धान का उत्पादन पाता हूं। मैं मानता हूं कि एक कंठी (कलाबाली) में साधारण तौर पर अगर 250 चावल के दाने हों तो वह उत्तम उत्पादन कहा जाता है। आप भी धान एक पंक्ति में लगाते हैं। वह कार्य–पध्दति अच्छी है। मैने अभी दो–तीन धान की कंठी तोड़कर गिनती करायी, तो मुझे 275 से 300 तक चावल के दाने मिले जो कि सर्वश्रेष्ठ उत्पादन है। अब विदाई लेने से पहले मैं सभी पत्रकारों के सामने अपनी अंतिम इच्छा बताना चाहता हूं कि विश्व में किसान भाई भारत के दूसरे गांधीजी, जो मेरे अनुभव के अनुसार सावेजी हैं, उनसे सेन्द्रिय और प्राकृतिक कृषि का ज्ञान ग्रहण करके कृषि में आगे बढ़ें। आज सावे गुरुजी की खेती और बगीचा देखकर मुझे अत्यन्त आनंद और शांति मिली है।

क्या पशुधन भारी बोझ है?

ऐसे तो 'पशुधन' सिर्फ चार अक्षरों का ही बना है। मगर यह सिर्फ चार अक्षर ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की इमारत के चार मुख्य स्तंभ है। कि कभी पशुधन के कारण ही भारत देश में समृध्दि, सुख और शांन्ति थी। और भारत एक कृषि प्रधान देश बना था । कामधेनु यानी गौमाता, सेन्द्रिय कृषि की मूलभूत और जरूरी पूंजी है। हर एक पशु खाद और दवा का एक सम्पूर्ण कारखाना ही है। अगर एक पशु को काटा तो समझिए कि पूरे एक कारखाने को बर्बाद किया गया। आज बिना किसी रोकटोक के बेरहमी से पशुधन की हत्या हो रही है। तभी तो देश हर तरह से बर्बाद हुआ है और विदेश के करोड़ों डॉलर के कर्ज में पूरी तरह से डूब चुका है।

अंग्रेजों ने भारत में शासन करने के दौरान ही पहली बाद गौमाता की हत्या शुरू की थी। क्योंकि आजादी देने से पहले अंग्रेजों ने एक ऐसी योजना बनायी जिसके चलते भारतवासीयों पर शासन किये बिना ही भारतीय गुलाम बना रहे। और पूरी तरह से विदेशियों के रहमो–करम तले ही जिन्दा रहना पड़े। साथ ही साथ भारत पर वे अपनी संस्कृति भी थोप सके। योजना लागू करने के लिए पहले तो गोरों ने गलत प्रचार शुरु किया कि "भारत का पशुधन काफी कमजोर हैं। उससे काफी कम दूध प्राप्त होता है। पशु किसी के भी खेतों में या जंगल में इधर–उधर घूम के जमीन पर उगी घास को खा जाते हैं। इस कारण जमीन पर सूर्य की तेज किरणें पड़ ने लगती हैं। और जमीन का तापमान बढ़ जाता है। जमीन की नमी खत्म हो जाती है। और यही कारण है कि कुएं में पान का स्तर भी घटकर नीचे चला जाता है। ये पशु कहीं पर भी गोबर और पेशाब करते हैं, जिससे काफी रोग–जीवाणु बढ़ते हैं।"

संक्षेप में, गलत प्रचार के माध्यम से अंग्रेज यह समझाना चाहते थे कि पशु व्दारा ही सारा पर्यावरण खराब होता है। पशु काफी कमजोर होने के कारण खेती की जुताई और ट्रान्सपोर्ट का काम ठीक तरह से नहीं कर पाते। इस कारण भारतवासियों के लिए पशु पालन एक भारी बोझ है और उसे घर में रखना एक नासमझी है। उन्होंने लगातार गलत बातों की चच्रा और प्रचार कर–करके लोगों को गुमराह करने का काम किया और विदेशी पूंजी दिखा–दिखाकर पशुवध को पूरी मंजूरी भी दे डाली। इस तरह अंग्रेजों का तीर सही निशाने पर लगा। भारतीय संस्कृति की नींव डगमगाने लगी।

जैसे–वैसे ज्यादा–से–ज्यादा पशु कटते गये, वैसे – वैसे मुफ्त में मिलनेवाला गोबर (खाद) और गोमूत्र (दवा) मिलना कम होता गया। ताक में बैठे अंग्रेजों ने विदेश की आधुनिक कृषि–पध्दति को भारत के किसानों पर थोप दिया। शुरू–शुरू में तो खेतों से इतना उत्पादन मिला कि सबने यही समझा कि आधुनिक कृषि ही सबसे उत्तम कृषि पध्दति है।

भारत का किसान सिर्फ एक हल और बैलों की जोड़ी से खेती करता था। पूरे विश्व ने भारत को कृषि प्रधान देश का नाम दिया था। उसी भारत का किसान धीरे–धीरे अपनी समृध्दि गंवाने लगा। गाँव टूटने भी लगे। असल में उन्हीं अग्रेजों की योजनाओं के कारण सारा पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो रहा है इसके बावजूद पूरा दोष पशु पर ही डाल दिया गया जिसके फलस्वरूप पशु की हत्या में दिन–पतिदिन वृध्दि होती चली गयी। अंग्रेजों की ऐसी क्रूर योजना को देखकर पशुधन पर लगाया गया गलत आरोप और कंलक दूर करने की कसम खायी थी। जिसके परिणामस्वरूप स्वराज मिलने के साथ ही कानून बनाकर गौहत्या को रोक दिया था। इस सुंदर कार्य और योजना को हिंदू, मुस्लिम, बौध्द, सिख, जैन, पारसी और अन्य सभी भारतवासियों ने सार्वजनिक सहमति दी थी। सर्वसम्मति से बने कानून के बारे में कुछ देशद्रोहियों ने अदालत में विरोध दर्ज कराया। विरोध ा में एक भाई तो सबसे आगे थे क्योंकि उस भाई को गौमांस भक्षण काफी प्रिय था। वैसे तो वे भाई साहब थे भारतीय संस्कृति के, मगर हर तरह से उनका विकास हुआ था विदेशी संस्कृति से। संक्षेप में यह कि वे पूरी तरह से अंग्रेज ही थे। मगर फिर भी सबने मिलकर उसे 'भारत के पंडित' की पदवी दे डाली। भारत के ऐसे पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी गलत आर्थिक नीती, निजी स्वार्थ और स्वाद के लिए 1958 में सर्वोच्च अदालत में कसाई के धंधे को मूलभूत अधिकार बताकर एक नया कानून भी पास करवाया था। इस तरह भारत देश ने अपने पांव पर खुद ही कुलहाड़ी मारी। साथ ही साथ भारतीय संस्कृति की इमारत को गिराने के लिए उसके स्तंभ पर प्रंचड आघात भी किया। ऐसे तो पशुवध के लिए काफी कठोर कानून बनाये गये हैं, मगर कौन उसकी परवाह करता है कि बेझिझक आज भी पशुहत्या बिना रोक–टोक जारी है। ऐसी है हमारी सरकारी नीति।

पशु अगर धन नहीं होता तो पूर्वज पशु को कभी पशुधन कहते ही नहीं। जब पशु धन ही है तो फिर ऐसी कौनसी परिस्थिति निर्मिती होती है कि गोपालन, गौशाला और पांजरापोल (कमजोर पशु रखनेवाले स्थान) को पशु की देखभाल का खर्च भारी बोझ लगता है। जब पशु खुद ही धन देनेवाला है तो फिर गौशाला और पांजरापोल के भाई हाथ में किताब लेकर, घर–घर जाकर, लाचारी दिखाकर पशु को भारी बोझ बताकर धन इकट्ठा करने के लिए क्यों निकलते हैं? अब मैं पशुधन के बारे में एक ठोस सच्चाई बताना चाहता हूं क्योंकि जिस सत्य को छुपाने के लिए उस पर काफी मिट्टी डाली गयी है मैं उसको हटाना चाहता हूं और मैं उस ठोस सबूतों को दिखाना भी चाहता हूं। अगर किसान मेरी बतायी गयी बातों पर विश्वास रखें और पशु को पहचान कर कर्म करें तों हमें काफी खुशी होगी। कि तभी तो हम अपने आपको भाग्यशाली समझेंगे कि हम पशुधन की सही पहचान कराने में सहायक बने है।

हजारों साल पहले हमारे पूर्वजों ने धर्म के जरिए गाय में करोड़ों देवी–देवता हैं, ऐसा समझाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने गाय को जीवन में और घर में लाने के लिए माता का स्थान भी दिया था। उन्होंने गौमाता से जुड़ी कई बातों को आचार्यों, मुनियों और धर्मगुरुओं की वाणी व्दारा प्रचार भी करवाया था कि कोई भी धर्म की बातों का अगर उल्लंघन करता है, तो प्रभुजी उसे स्वर्ग के बजाय नर्क में भेज देते हैं। महापुरूषों की बातें सुनकर मानव डरने लगा और पशुवध रुक गया। हर पूजा–पाठ और ध ार्मिक कार्य में वह पशु से मिली चीजों का उपयोग भी करने लगा। धार्मिक कार्य शुरु करने से पहले पुजारी या घर के बुजुर्ग घर की शुध्दि और इसे पवित्र करने के लिऐ पूरे घर में गौमूत्र का छिडकाव करवाते है। घर का आंगन गोबर का उपयोग होता है। यज्ञ में आहूति देने के लिए गाय के दूध ा और घी का उपयोग किया जाता है। कई लोग तो गोमूत्र को प्रभुजी का प्रसाद समझकर पीते भी हैं। ये सारी बातें शास्त्रों में लिखी हुई हैं जिनका हजारों लोग सालों से आज भी पालन करते आ रहे हैं। आज के आधुनिक युग में जीनेवाले और अपने आपको शिक्षित और साफ–सुथरा समझनेवाले लोगों से मेरा एक प्रश्न है कि आपने गाय का मल (गोबर) और पेशाब (गौमूत्र) का उपयोग करके घर को पवित्र और शुध्द किया? या घर को गंदा किया? अंग्रेजो ने कहा था। और यह जानते हुए भी कि मल–मूत्र से घर साफ–सुथरा नही बल्कि नियम के अनुसार गंदा ही होता है! तो फिर पढ़े – लिखे भाइयो, इसका उपयोग क्यों? क्या इसलिए कि स्वर्ग में जाना है? अगर शास्त्रों और धर्म की बातों को आप नही मानेंगे, तो घर और शरीर कैसे शुध्द होंगे? सभी लोग मानते है कि शास्त्रों की बातें कभी गलत नहीं

होती इसलिए श्रध्दा से उसका पालन करते हैं। हमारे पूर्वज गोबर और गोमूत्र के सभी अच्छे पहलुओं को जानते थे। कोई भी उसका विरोध न करें, इसलिए सभी धार्मिक शास्त्रों में उसका उपयोग करने की बातें लिखी गयी हैं। मगर जिस तरह से आज पशुधन की हत्या हो रही है, वह अगर ऐसे ही जारी रही तो भविष्य में पूजा–पाठ और यज्ञ होंगे कैसे? अब अगर हम कहें कि गौमूत्र से घर वाकई में पवित्र और जीव–जंतु से मुक्त होते हैं, तो क्या आप मानेंगे? फिरसे आप वैज्ञानिक सबूत मांगते हैं उनके लिए फिर से एक प्रश्न है। आज जिस तरह से पशुधन कट रहा है कि गौमूत्र मुफ्त में भी मिलता नहीं। उसके दूध से भी अधिक दाम देनें पड़ते हैं। गौमूत्र का उपयोग न होने के कारण आज कीड़ो और मच्छरों की मात्रा काफी बढ़ गई है। इससे छुटकारा पाने के लिए आधुनिक विज्ञान ने कीड़ो और मच्छरों का सफाया करने के लिए कई उपकरण और जहरीली दवाइयां बनायी हैं। रोजाना घर–घर में फिनाईल जैसी दवाइयों से जमीन साफ की जाती है। तिलचट्टे और चूहे मारने को पाउडर का उपयोग होता है। हम रात को मीठी नींद पाने के लिए स्प्रे करते हैं। अगरबत्ती और दवाएं बोतल में जलाई जाती हैं। ये दवाइयां कितने जहर से भरी होती हैं, यह समझना हो, तो आप जानते ही है तो फिर मच्छर और तिलचट्टे का सफाया क्यों नहीं होता? दूसरे ही दिन उतने ही या उससे अधिक मच्छर कहा से आ जाते है? जरा हिसाब तो लगाइए भाई! आपने कितने रूपयों का खर्च किया? और हमारे जैसे गरीब (बनाये गये) देशों ने गोरों कि कितनी आमदनी बढ़ायी? कि हम जहां थे, वहीं के वहीं हैं। इस हिसाब से क्या आपको नहीं पध्दति कहीं अच्छी है। ठोस सबूतों को आग्रह करनेवालों को सावेजी के घर कल्पवृक्ष फार्म पर एक रात आने का आमंत्रण है। और बगल में रहनेवाले पड़ोंसी के घर भी जाकर देखिएगा कि दोनों के घरों में मच्छरों का कितना प्रकोप है?

गौशाला और पांजरापोल के कार्यकर्ताओं से हमारी विनती है कि–जिस प्रकार जरूरत पड़ने पर हम गौमूत्र का उपयोग करते हैं, उसी तरह अगर इसका सदपपयोग सभी और आप भी करें तो आपकि संस्था को अच्छी से अच्छी आमदनी होगी। भारतीय जनता के लाखों रूपयों की बचत भी होगी। वह भला कैसे? जीव–जंतु, कीडे, मच्छर से बचने और खेतों में फसल–रक्षा के निमित्त घोल के लिए एक लीटर गौमूत्र लीजिए। उस गौमूत्र में नीम, तम्बाकू, मिर्ची, करंज, झंडू, तुलसी और उग्र–वह वनस्पति जिसे बकरी भी नहीं खाती–सभी को समान मात्रा में या कम–ज्यादा मात्रा में लीजिए। सभी को साथ में कूटकर गौमूत्र में उाल दीजिए। तीन से चार दिनों के बाद कपड़ा रखकर छान लीजिए। छानने से प्रापत सेन्द्रिय पदार्थ का उपयोग खाद के रूप में कीजिए और गौमूत्र के घोल को एक–एक लीटर की बोतल में भर दीजिए। उस घोल का उपयोग जब करना हो तो एक लीटर घोल में आठ लीटर सादा पानी मिलाना जरूरी है। इस निर्दोष घोल के उपयोग से एक भी जीव–जंतु की हत्या नहीं होगी। दूसरी बात इस घोल का असर कम–से–कम 15 दिनों के बाद शुरू होगा। उसके बाद आपको उसके चमत्कारिक परिणाम देखने को मिलेंगे। धीरे–धीरे घर और खेतों में शुध्धिकरण देखने को मिलेगा। अगर जीव–जंतुओ की मात्रा अधिक हो तो शुरू – शुरू में स्प्रे पंप के जरिए घोल का उपयोग रोजाना कर सकते हैं। अवलोकन के बाद अंतर बढ़ाना जरूरी है।

गौमूत्र के निर्दोष घोल से घर भी शुध्द होता है। दवाई की बोतल और सुगन्धित मेट का उपयोग हो जाने के बाद कभी फैकना नही। वह खाली बोतल और मेट का उपयोग आप बार–बार कर सकते हैं। उपयोगी घोल के लिए 95% मिट्टी के तेल (केरोसीन) में 2% चंदन या सुगन्धित अत्तर और 3% गौमूत्रका उपर लिखा हुआ तयार घोल मिलाकर अच्छी तरह से हिलाइये। अगर 3% गौमूत्र का घोल न हो तो तुलसी और नीम का बाजार से तेल लाकर एक–एक बुंद डाले। खाली बोतल के ढ़क्कन को खोलकर उसमें यह नया घोल 80% भरीये और उपयोग की हुई मेट के उपरी हिस्से पर सिर्फ तीन बुंद डालकर फिरसे मेट का उपयोग करिए। हम संघवी परिवार के लोग कई वर्षो से इसी मिट्टी के तेल से बने हुए घोल का उपयोग करतें हैं। सुबह–शाम यज्ञ में गाय का गोबर, घी, सूखे चावल, कपुर और अन्य जड़ी–बुट्टी की आहुती भी देते हैं। कुछ नही कर सकते तो आखिर में शाम के समय खिडकी–दरवाजे बंद रखकर, हर कमरे के लिए गाय के घी के दिए रौशन करे और एक घंटे के बाद ही खिडकी–दरवाजे खोलें।

पशुधन से मिलनेवाले गोबर का उपयोग क्या वाकई फायदा पहुंचा सकता है? यह बात महाराष्ट्र में रहनेवाले नॅडेप काका के जीवन का सच जानने के बाद ही मालूम हुई। गोबर के कारण नॅडेप काका का हाथ कटने से बच गया। आज गोबर के कई रहस्य जानकर नॅडेप काका ने एक बड़ा उद्योग स्थापित किया है। काका ने गोबर से स्नान करने की टिकिया, महिलाओं के बालों की सभी समस्याओं और सौंदर्य बढ़ाने का पाउडर,

अच्छी नींद के लिए अगरबत्ती, जैसी कई औषधियों का उत्पादन केन्द्र स्थापित किया है।

'गोबर और गौमूत्र की सभी बातों की जानकारी तो है मगर पशुध ान को बचाने के लिए जरूरी घास और पानी हम कहा से लायें? हमे यह भी भली–भांति मालूम है कि पशु तो धन होता है मगर उसके खाने की घास के लिए हमे चंद इकट्ठा करना ही पड़ता है। गाय हमारी माता है यह सभी जानते हैं, मगर किसानों के घर में ऐसी क्या समस्या आ खड़ी होती है कि वे माँ समान गायमाता को धक्के मारकर घर से बाहर निकालते हैं? कुछ लोग गौमाता को कसाइ के हाथों से बचाते भी हैं। कुछ गौमाता को उनके अपने भाग्य पर (जहां खाने के लिए मिले, वहीं खाने के लिए) छोड़ देते हैं। फिर तो मजबूरन गायमाता को कूड़ा–कचरा ही खाना पड़ता है। यही कारण है कि हमारी गौशाला या पांजरापोल में उनका ऑपरेशन कर कई किलो प्लास्टिक की थैली निकालनी पड़ती है। अब आप ही बताइए कि इस कार्य में खर्चा होगा या नहीं? फिर उनको गौशाला या पांजरापोल में बगैर खर्च के कैसे पाला–पोसा जायेगा

तो भाइयो, यही तो है गोरों की कपटपूर्ण चाल और योजना। इसी योजना को पूरी तरह सफल बनाने में आज हमारे राज्यकर्ता भी तो जुड़े हैं। पूर्वजों को यह पशुधन भारी बोझ क्यों नही लगा? बंबई के श्री. अरविंद पारेख, जो विनियोग परिवार के साथ "बंबई के देवनार जैसे कतलखाने में रोजाना जितने भी पशु कटने आते हैं, उन्हें रोजाना मैं राज्यसभा में लाकर खड़ा कर दूंगा। यह देखने के लिए कि कानून बनानेवाले भाई उन्हें किस तरह संभालते हैं, जरूरी घास और पानी कहाँ से लाते हैं? जब इंसान को जरूरतभर पानी और खाना नहीं मिलता तो फिर इन पशुओं को कैसे संभाला जायेगा?" इस प्रकार से महाराष्ट्र में पशुधन की सही व्यवस्था और जानकारी न होने के कारण गौहत्या निषेध कानून बनते – बनते रह गया।

एक तरह से देखा जाये तो देशी गोरे नेता की बातें ठीक हैं क्योंकि देश विरोधी नेताओं को पशुधन बचाने में कतई दिलचस्पी नहीं। काँग्रेस हो, भाजपा हो या खुद को हिंदूवादी कहनेवाली कोई भी पार्टी हो सबको पशुवध से सिर्फ डॉलर पाने की तमन्ना है। अगर वाकई नेताओं के दिलों मे पशु के प्रति प्रेम और सन्मान होता तो सत्ता में आते ही गौहत्या रोकने का कानून बनाते। मगर काँग्रेस से भी कई गुना ज्यादा और अपने आपको हिंदू कहनेवालों ने नये कत्लखाने शुरू करवायें। उन्होंने नई पीढ़ी को पूर्ण रूप से मांसाहारी बनाने के लिए मेकडोनाल्ड्स जैसी अनेक संस्थाओं को भारत में होटल खोलने की मंजूरी दी। आखिर सब नेतागण हिंदू का सही अर्थ क्यों भूल जाते हैं? हमारे पूर्वजो को हिंसा से ही दुःख मिलता है, यह बात हमेशा याद रही। तभी तो हिंसा से 'हिं' और दुःख से 'दु' लेकर 'हिंदू' समाज की रचना की। मगर आज के नेता पशुधन बचानेवालों के यज्ञकुंड में हड्डियां जलाने का काम ही कर रहे हैं। अभी भी देर नहीं हुई हैं भारतवासियों, राज्यकर्ताओं, नींद से जागो और पशुधन किस तरह सेन्द्रिय कृषि की सावे–पध्दति से पूरी तरह बच सकता है? इसके सौ प्रतिशत ठोस सबूतों को भी पढ़े।

आज तो समाज में भी कई ऐसे सबूत मिलते हैं। जिनसे पता चलता है कि कैन्सर जैसी बीमारी भी गौमूत्र से ठीक हो गई है। आपने पूर्व में जाना कि पशुधन से कितने फायदे सावेजी ने लिये। अब संघवी फार्म के फायदे की बातें समझिए। सन् 1987 में संघवी फार्म की शुरूआत सेन्द्रिय पदार्थ का उपयोग करते हुए की गयी थी। सेन्द्रिय कृषि की सावे–पध्दति में उपयोग में न आने वाली घास को प्रभुजी का वरदान माना जाता है। इसी कारण उन्हें जड़ से नहीं उखाडते बल्कि जमीन से कुछ ऊपर से काट देते हैं। आज 2004 में हमारे फार्म के 17 साल पूरे हो चुके हैं। इस समय घास से मिले फायदे और घास की उपज की गणना मैं आपके समक्ष रखता हूं।

गाँव के एक पशुपालन करनेवाले ग्वाले से घास के बदले में गोबर लेने की हमारी बात तय हुई थी। उस पशुपालक के पास 30 पशु है। वह ग्वाला पूरे साल की घास खरीदकर गोदाम में भरकर रखता था। इस प्रकार सूखी घास के पीछे भारी लागत लगती थी। संघवी फार्म के शुरू के दिनों में ही यह बात तय कर ली गयी थी कि रोजाना यह ग्वाला दो बैलगाड़ी भरकर हर चारा (घास) काटकर ले जाये (सावे कार्य–पध्दति से) और बदले में पशुओं का गोबर देकर जाये। चार साल तक इस योजना के मुताबिक कार्य सही सही चला। एक दिन मुझे मजाक सूझा और उस ग्वाले से सही जानकारी पाने की इच्छा भी हुई। इसलिए मैने ग्वाले से झूठ–मूठ कहा कि गोबर काफी कम मिलता है। इसलिए हमने अब ऐसा सोचा है कि इस घास देना बंद कर रहा है। मैंने बस इतना ही कहा था कि वह हाथ जोड़कर विनती करने लगा और सारी सचाई उगलने लगा।

वह हाथ जोड़कर कहने लगा कि "अशोक भाई! आपके सावे–संघवी

परिवार को पशुधन की सच्ची दुआ लगेगी। जब से मैंने आपके फार्म की घास अपने पशुओं को खिलाई है तब से सारे पशु निरोगी घास खाकर स्वस्थ हो गये हैं। आज चार साल में एक बार भी मुझे पशुओं के डॉक्टर की जरूरत नही पड़ी। रासायनिक खाद और दवाइयोंवाली घास खाकर पशुओं को पानी जैसा पतला दस्त होता था। वे कई दिनों तक बीमार भी रहते थे। पहले तो मेरी गाये कभी–कभी 1 से 3 लीटर दूध देती थीं मगर जब से मैंने संघवी फार्म की हरी निरोगी घास पशुओं को देना शुरू किया है तब से सभी गाये 3 से 5 लीटर दूध रोजाना देने लगी है। पहले पैसा लगाकर पूरे साले के लिए सुखी घास गोदाम में रखनी पड़ती थी। वह लागत तो बची ही, ऊपर से हरा चारा खाकर गर्मी के दिनों में भी गायें उतना ही दूध देती हैं। जबकि दूसरे पशुपालक सूखा चारा देते हैं। और दूध भी कम पाते हैं। मेरे यहा के दूध में सत्व–तत्व, मलाई, मक्खन, घी ज्यादा निकलता है और गाढ़े दूध का बाजार–भाव भी कही ज्यादा मिलता है। गर्मी में तो सूखी घास की भी मुसिबत खड़ी होती है जबकि संघवी फार्म में गर्मी में भी दो बैलगाड़ी हरा चारा आसानी से मिल जाता है। अब तो बाजार की घास को मेरे पशुधन छूना भी पंसद नहीं करते। जबकि आपके फार्म की पूरी की पूरी घास का एक तिनका तक शेष नहीं छोडते। ऐसी विशेषता है आप के फार्म की घास में। आपसे मेरी विनती है कि, अगर गोबर के साथ–साथ मेरे मुनाफे से कुछ रुपये भी आप चाहते हैं तो जरूर ले लीजिए मगर घास काटकर ले जाने से हमें मना मत कीजिए।"

ग्वाले की सच्ची बातें आप समझ ही गये होंगे। उसी के साथ–साथ एक और सच्ची बात जुड़ी है। कुछ सालों से हमारे संघवी फार्म में रात को बहुत चोरी होती है। जानते हैं, किस चीज की चोरी होती है?.... जी नहीं, फलों की नहीं! फार्म से गांव के भले घरों की महिलाएं रात को आती हैं, सिर्फ घास चुराने!!! एक दिन सभी महिलाओं को हमने घास की चोरी करते पकड़ लिया। कुछ महिलाएं भागने लगीं तो उन्हें काफी चोट भी लगी। फिर ये महिलाएं रोते–रोते कहने लगीं, "हमें पुलिस के हाथ मत देना, हम पड़े–लिखे घ की महिलाएं है। हम मजबूरन यह चारी अपने गौमाता और बच्चों के लिए कर रहे हैं। गाय हमारी माता हैं। वह भूखी मरे यह हमसे बर्दाश्त नही होता। जब से संघवी फार्म की चोरी की हुई घास हमने गौमाता को खिलाई है तब से वह काफी स्वस्थ हो गयी हैं। यही कारण है कि अपने बच्चों के अच्छे भविष्य और गौमाता की खतिर हमें रात में आकर घास की चोरी करनी पड़ती हैं।"

गाँव की महिलाओं की बताई बातें मेरे मन को छू गई। मैंने उसी वक्त उनसे हाथ जोड़कर माफी मांगी और विनती कि कि "सब भूमि गोपाल की है और गोपाल (श्रीकृष्ण) की गौमाता के लिए अब चोरी करने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि शास्त्रों में भी लिखा है कि, श्रीकृष्ण खुद के और मित्रों के लिए दही–मक्खन चुराते थे, इसीलिए वह 'मक्खन चोर' के नाम से जाने जाते है। आप सभी माता (देवी) अपनी गौमाता के लिए घास चोरी करती हैं, वह इसलिए कि आपके बच्चें स्वस्थ और निरोगी रहें। तो माताजी आप और श्रीकृष्ण में मैं कोई फरक नही देखता। शास्त्र में भी लिखा है कि, गौमाता का दूध सव्र श्रेष्ठ है। इसी कारण पूरे विश्व में सिर्फ गौमाता का दूध ही बिकता है, मगर हम भारतीय एक ऐसे कम बुध्दिवाले है जो पशु गंदा पानी पिती है, उसी में बैठती है, जो मंद बुध्दिवाली है और रंग में सम्पूर्ण काली है उसी भेंस का दूध पीते हैं! इस प्रकार के भैंस के दूध से बच्चों का विकास कैसे संभव होगा? शास्त्र और प्रकृति की एक और ठोस बांत है कि, गाय के दूध को माता का दूध क्यों कहा गया है? इसलिए की जिस बच्चें की माता न हो उसके पाँच साल के विकास तक गौमाता का दूध ही उत्तम है, उसके बाद दूध पीना उचीत नही। फिर भ्झी दूध लेना चाहते हो तो सिर्फ गौमाता का ही दूध। वह इसलिए की मनुष्य जिस माता या पशु का दूध उपयोग करता है उसे प्रकृतिने सिर्फ दो ही स्तन दीये है, जबकि गौमाता को चार स्तन है। दौ स्तन खुद के बछड़े के लिए और दौ स्तन जिस बच्चें की माँ न हो उनके लिए। अब आपसे विनती है कि, रोज सुबइ हम जहां से बतायेंगे, वहां से आप लोग घास काटकर ले जाइयेगा। मगर इस घास के बदले हमें आपके आशीर्वाद और दुआओं की अपेक्षा जरूर रहेगी।" ये जो बातें मैंने आपको बतायीं उससे आपको क्या लगता है? क्या जंगली घास कृषि के लिए दुश्मन है? कि किसानों के लिए वरदान?

अब प्राकृतिक चक्र की रचना और नियमों को समझिए। पशु जब जमीन पर उगी हुई घास खाते हैं तब जरा बारीकी से निरीक्षण कीजिये। तब आप यह देखेंगे कि ज्यादातर पशु जमीन से बाहर निकली हुई घास ही दांत से काट–काट कर बार–बार भूमाता को नंगा करने के लिए वह घास को जड़ सहित उखाड़ता है। जैसे किसान खेतों में खरपतवार करते हैं, उसी तरह यह पशु भी उखाडकर खाता है। वह पशु कोई और नहीं

बल्कि गधा है। उसी के स्वभाव जैसा होने के कारण किसान भी आज आधुनिक खेती–पध्दति के हाथों गधा बना हुआ है। तभी तो बारबार गधे जैसा काम कर–करके वह भी तो खरपतवार करता है। जो प्राकृतिक चक्र के विरुध्द काम करेगा, उसे गधा नही तो क्या इंसान कहेंगे? आधुनिक कृषि की बातें सुन–सुनकर किसान ने खुद के जीवन को तो गधे जैसा बनाया ही, साथ ही पशुधन को भी घास से वंचित कर दुःखी कर रहा है।

गोरों को तो बस जैसे भी हो अपना माल बेचना है। इसीलिए उन्होंने आधुनिक खेती–पध्दति की योजना बनायी है। देशी बीज के काफी लंबाई तक बढ़ने से पौधोंके कई सत्व–तत्व उस विकास के क्रम में ही कम हो जातें है और किसान को उत्पादन कम मिलता हैं, ऐसा गोरों ने समझाया। बाद में अपने बनाये हुए संकरित बीज देकर और शुरुआत में ज्यादा उत्पादन दिखाकर उन्होंने किसानों को मोहित भी किया। पशुधन को मुफ्त मिलनेवाली घास को दुश्मन बताकर खेतों से बाहर किया। देशी बीज के पौधे पशु फिर भी आसानी से खा लेते थे जबकि संकरित बीजों से होनेवाले पौधे छोटे और दांत टूट जाये, इतने कठोर होते हैंतब उसे पशु कैसे खायें? वे सिर्फ जलाने के काम में ही आते हैं। अब पशु जीवित रहने के लिए आखिर खायेबा क्या? किसान भी पशु को जीवित रखने के लिए देगा तो आखिर क्या देगा?

पशुधन रखनेवाले अगर चाहते है कि पशु किसी भी तरह से जीवित रहे, तो वे कभी भी उन्हें भाग्य के भरोसे घर में पलने के बजाय कूडे–कचरे के डिब्बे के पास नज़र आते हैं। उनका खाना प्लास्टिक की थैली कभी न था। वे तो बेचारे फेंकी हुई प्लास्टिक की थैली में घर का बचा हुआ खाना या सब्जी काटकर निकाले गये जो सेन्द्रिय पदार्थ होते हैं असल में उसे ही खाने के लिए कचरे में मुंह डालते हैं पर प्लास्टिक की थैलियां खाली कैसे की जायें? लिहाजा प्लास्टिक की थैली और सेन्द्रिय पदार्थ सभी एक साथ खा जाते हैं। प्रकृति ने पशु के मुंह की रचना ही ऐसी की है कि एक बार जो मुंह में जाये उसे बाहर निकालने में वे असमर्थ होते हैं। इसलिए उनके पेट में प्लास्टिक की थैली ऐसी गौमाता से मिलनेवाला दूध किस प्रकार का होगा? तो भाई! यही तो है गोरों की कपटपूर्ण चाल और योजना।

क्योंकि आज बाजार में दूध एक लीटर 10/– में बिकता है जबकि गोमूत्र एक लीटर 30/– में! और गोबर की आमदनी अलग से। इसलिए तब तक घर में पशुधन को बेटा बनाकर रखिए, जब तक कि पशु को प्राकृतिक मृत्यु नहीं मिलती। आप अपने और दूसरों के पशुधन को भी बाहर जाने से रोकिए। तब ही बड़े–बड़े कतलखानों को मांस के लिए पशु मिलना बन्द होगा। अब जब कतलखाने को पशुधन मिलेगा ही नहीं तो फिर वह क्या काटेगा? अब मेरे जीवन से जुड़ी पशुधन की एक सच्ची घटना को मैं आप लोगों को बताना चाहूँगा। बम्हांड का कार्यभार संभालने वाले श्री महेशजी से जुड़ी है। महेशजी का काम है संहार करना। उनके यमदूत जब मृत्यु लोक से बाहर निकलते हैं तब अपने वाहन भैंसा (पाडा) पर सवार होकर निकलते हैं। मैं उसी भैंसा की बात बताने जा रहा हूं।

एक दिन सुरेश भाई फार्म के दरवाजे पर खड़े थे। तभी उन्होंने देखा कि ऐ कसाई छोटी आयुवाले और कमजोर यानी चल भी न पानेवाले एक भैंसे के बच्चे को मार–मारकर घसीटते हुए ले जा रहा था। सुरेश भाई से यह दृश्य देखा न गया और कसाई को वहीं पैसे देकर उन्होंने भैंसे को छुड़वा लिया। मार–मारकर कसाई ने भैंसे की आधी जान निकाल दी थी। ऐसे भैंसे के बच्चे (पाड़ा) को संघवी फार्म में लाकर रख दिया। वह पूरी जानकारी सुरेश भाईने मुझे फोन पर दी। तब मैंने कहा 'वैसे भी भैंसेके पालन–पोषण का कोई खर्च तो लगनेवाला है नही। क्योंकि वह तो सिर्फ घास ही तो खायेगा। फिर क्यों न भैंसे को वहीं रखा जाये?' इस तरह सावे–संघवी के हाथों एक भैंसे को जीवन–दान मिला था। अरे! अचानक यह क्या हो गया? कसाई के हाथ से कटनेवाला और मार खा–खाकर लगभग मृत्यु लोक तक पहूंचा हुआ वह भैंसा छः महीनों में बिलकुल स्वस्थ, निरोगी, ताकतवर और पूरे काले रंग का खूबसूरत हो गया। वह भी बिना किसी दवाई के! जी हां! सिर्फ संघवी फार्म के निरोगी घास और पानी पीकर। अब भैंसा का सही उपयोग करने के लिए सावेजी ने भैंसा – गाड़ी ही बना डाली। यह भैंसा अब रोजाना करीबन दो टन माल–मिट्टी ढोने के काम में आता है। हमने कसाई के हाथों से बचाकर पशुधन का इस तरह से सदुपयोग करना शुरू किया था।

अहिंसा को माननेवाले भारत देश के साथ गोरों ने पशु के साथ–साथ भारत की प्रजा को भी घुट–घटकर मारने का नया षड्यंत्र रच डाला है। वह योजना 'जर्सी गाय' के माध्यम से लागू कर दी गयी है। गोरों के दिल में अब दया जागी है! इसलिए उन्होंने हमें जर्सी गाय (दोगली गाय) और वहां के सांड़ के शुक्राणु के जरिये हमारे देशकी अच्छी–से–अच्छी

नस्लों को खत्म करने की उनकी यह एक गहरी चाल है। आखिर वह भला कैसे? हमारी गायों से जर्सी (संकरित) गाय तैयार करने की जो कृत्रिम गर्भधारणा कार्य–पध्दति है, वह जानने लायक है। पत्थर और कठोर से कठोर दिलवालों को भी हिला देने वाली यह कार्य–पध्दति कुदरत के नियमों के विरुध्द अतिशय क्रूरता पर आधारित है। इसमें पशुओं का कुदरती मैथुन (संभोग) क्रिया का जो अधिकार है, वह भी छीन लिया जाता है।

कृत्रिम गर्भधारण करने के लिए सबसे पहले तो अपनी गौमाता को पिंजरे में डाला जाता है। इसके बाद गौमाता के पिछले दोनों पांव बांध दिए जाते हैं। गौमाता के गले में फांसी जैसा फंदा डालकर उपर की और खींचकर रखा जाता है। इससे गौमाता बिलकुल हिल न पाए, इस तरह उसे पिंजरे में बांधकर रखा जाता है। उसकी पूंछ भी उठाकर बांध दी जाती है। उसके बाद जननेंद्रिय में कोहनी तक हाथ डाला जाता है। गौमाता की जननेंद्रिय में गर्भाशय की नस ढूंढ़कर घुसे हुए हाथ से उसे पकड़कर रखा जाता है। उसके बाद गोरों का दान दिया हुआ–वीर्य (विदेशी सांड़ के शुक्राणु) को कांच की नली की सहायता से दूसरे हाथ के जरिये जननेंद्रिय में डाला जाता है। इस प्रकार दोनों हाथ पूरी तरह से गौमाता की जननेंद्रिय में होते हैं। पहले हाथ से पकड़ी गयी गर्भाशय की उस नस पर दूसरे हाथ से डाली गयी नली के शुक्राणु को छिड़क दिया जाता है। कभी–कभी तो बाहर निकालने के समय काच की नलि टूट जाती है, मगर इसकि पर्वा कोन करेगा? इस तरह जब जननेंद्रिय में शुक्राणु डालने का काम पूरा हो जाता है, तभी गायमाता को पिंजरे से छोड़ा जाता है। गौमाता पिंजरा खुलते ही तोप के गोल के समान उछलकर इन यमदूतों के हाथ से निकलकर भाग जाती हैं।

जिस भारत में गाय को माता और परिवार के एक सदस्य का दर्जा मिला हो, ऐसे अहिंसा में विश्वास रखनेवाले देश में इतना अमानवीय अत्याचार! वह भी करोड़ों देवी–देवता जिस में बसे हों, उस गाय माता के साथ! यह भारतीय संस्कृति हो ही नहीं सकती। इस प्रकार का काम करनेवालों को पशुओं की कितनी बददुआ लगती है? क्या उसे आप जानते हैं? इस संकरित बीज क्रॉस ब्रिडिंग के कारण ही भारत में बगैर मोंट (जोठा) के बछड़े पैदा होते हैं। जिससे बैल होगा तो वह बैलगाडी या जुताई के उपयोग में भी नहीं आयेगा, क्योंकि उसके मोंट (हल आदि रखने की उभरी हुई जगह) होती ही नहीं। मैं यह भी बता दूं कि जर्सी गाय हमारी एक गौमाता के बदले दूध जरूर ज्यादा देगी, मगर किस किमत पर? इस विदेशी गाय को पूरे समय हरा चारा, भरपूर पानी और ठंडा वातावरण मिलना चाहिए। अगर जब सभी जरूरत पूरी होगी तब कहीं जाकर यह विदेशी गाय ज्यादा दूध देगी, वर्ना नहीं। अगर उस दूध का परिक्षण कराएं तो न तो इसमें कोई स्वाद होता है और न ही कोई पोषक तत्व। बस यूं समझ लें कि वह दूध नहीं, बल्कि सिर्फ सफेद पानी ही होता है। और उसका जो गोबर वह भी पानी जैसा ही।

अब आप ही बताएं कि भारत का ग्वाला विदेशी गाय की जरूरतों को आखिर कैसे पूरा करेगा? कहां से लायेगा जर्सी गाय के पालन–पोषन का खर्च? जबकि एक जर्सी गाय के खर्च में हमारी चार गौमाताएं सुखे चारे और कम पानी से गुजारा करके भी जर्सी गाय से अधिक दूध और मुनाफा देती है। फिर भी जब हमारे ग्वालों और पांजरापोलवालों से देशी पशुओं का खर्च नहीं उठाया जाता तब विदेशी पशुधन को वे कैसे संभालेंगे? जैसे कोयल अपने अंडे कौए के घोंसले में रखकर अपना काम निकाल लेती हैं, वैसे ही गोरे भी किसी न किसी तरह से भारत में अपने पशु का विकास करा लेते हैं। फिर हरे–हरे डॉलर दिखाकर हमारे यहां ही उसे कटवाकर खाने के लिए ले भी जाते हैं। ताकि हमारे भारतवासियों को ही इस हिंसा का पाप – दोष और सजा मिले, कैसी सजा? मैंने आगे हिंदू शब्द का अर्थ समझाया था कि 'हिंसा से ही दुःख मिलता है।' पशुधन पर जब जुल्म होता है, तो पशु की बद्दूआ और तरंग (वायब्रेशन) निकलते हैं। इस बात को हमारे आधुनिक वैज्ञानिकों ने शोध व्दारा सिध्द करके, अमेरिका में ठोस सबूत पेश करते हुए बताया गया था कि 'आंध्र प्रदेश में बार–बार आनेवाले तुफान का मुख्य कारण वहां पशुओं की अत्याधिक हत्या किया जाना है। पशुओं की इस तरह हत्या सोमलिया, इथोपिया में भी होती थी। जिस की सजा, वे भुगत रहे हैं। आप सब जानते होंगे कि उनकी आज क्या हालत है।'

इतनी ठोस बातें, सबूत और पशुधन को बगैर खर्च के संभालने की योजना हमने बतायी है। फिर भी देश में सुहाने दिन लौट आए ऐसी संभावना काफी कम दिखायी पड़ती है। क्योंकि मनुष्य के पेड़–पौधे और पशुधन को देखने की दृश्टि और विचार ही बदल गये हैं। मनुष्य तो उसे पैसा कमाने का एक मात्र साधन ही समझ रहा है। तभी तो क्रूर बनकर पशु की हत्या करवा रहा है। कुदरती संपत्ति की खुली लूट मचा रखी है।

सब ऐसा मानते हैं कि गलतियां इंसान ही करता है, मगर कभी–कभी प्रभुजी भी गलती कर बैठते हैं। वह कैसे? मैंने वनस्पतिजगत और प्राणी जगत की कई बातें बतायी हैं। इनके आधार पर मुझे बंबई आकाशवाणी से जब दस मिनट का वक्तव्य देने का आमंत्रण मिला था। उस वक्त मैंने पशुधन की सारी सच्चाई बतायी थी। साथ ही साथ यह भी कहा था कि 'पृथ्वी का जब सर्जन हुआ तब सबसे पहले प्राणीजगत, उसके बाद वनस्पतिजगत का सर्जन हुआ। दोनों जगत एक दूसरे के सम्पूर्ण रूप से पूरक थे, जिससे पूरा पर्यावरण सुरक्षित था। संक्षेप में प्राणीजगत और वनस्पतिजगत को इंसान की कोई जरूरत न थी मगर प्रभुजी को खुद के सर्जन में संभवतः कुछ कमी लगती थी, तभी तो उन्होंने हजारो साल बाद बंदर से शुध्द शाकाहारी बुध्दिजीवी इंसान का सर्जन कर डाला। आज प्रभुजी शायद सर पर हाथ रखकर रोते होंगे। 'हाय रे! मैंने जीवन में यह क्या गलती कर डाली कि मैंने इंसान का सर्जन कर डाला?' प्रभुजी आज क्यों रोते होंगे? इसलिए की इन्सान आज प्रभुजी के प्राकृतिक चक्र और उनके पहले के दोनों सर्जनों में गलतियां निकालने लगा है। शाकाहारी से मांसाहारी बने हुए लोग आज शिबिर और चर्चाएं कर–करके या मेरे जैसे इंसान को आकाशवणी में आमंत्रित करके 'क्या हमारा पशुधन पर्यावरण और गौशाला के लिए भारी बोझ है?' विषय पर वक्तव्य देने को कहते हैं। जबकि चर्चा का विषय असल में यह होना चाहिए कि 'क्या इंसान पशुधन और पर्यावरण के लिए घातक है?'

बिना पानी मूंगफली

किसान इस बात से भी बहुत चिंतित है कि गोबर नहीं मिलेगाख तो फिर कृषि आखिर होगी कैसे? सरकार की नीति भी देखिए कि एक ओर गौहत्या व्दारा घाव देती है, तो दूसरी और मरहम लगाने का ढोंग भी करती हैं। प्राकृतिक कृषि के नाम से कुछ साल पहले सरकार ने किसान के घाव पर मरहम लगाने की बात की थी। दिल्ली स्थित केंद्रीय योजना आयोग ने प्राकृतिक कृषि की बातें करते हुए दिखावा किया था कि किसान अधिक गोबर की मांग कर रहा है। अतः झूठ बोलकर विदेश से बड़ी मात्रा में गोबर आयात करने की तैयारी भी कर ली गई थी। भारत के पर्यावरणवादियों ने जब यह रेडियेशन (वि–किरण) वाला गोबर भारत में लाने का जबरजस्त विरोध किया, तब कहीं जाकर वह योजना रद्द हुई। इससे अच्छा तो योजना व्दारा करोड़ों भारतवासियों का मलमूत्र जमा किया जाए तो उससे भी कृषि में क्रांति लाई जा सकती है। क्योंकि हम मानव के मल को 'सोन खाद' और मूत्र को 'हीरा खाद' कहते हैं, जो सबसे उत्तम सेन्द्रिय खाद हैं। मगर मुझे लगता है कि 'कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी ही रहेगी।' जब भी मौका मिलेगा, तब भारत सरकार विकिरणयुक्त गोबर अवश्य आयात करेगी, क्योंकि उन्हे विदेशी गोबर खाने में मीठा लगता है। जाने दीजिए, हमें सरकारी नीतियों में नहीं उलझना है। बिना पशुधन और बिना गोबर के भी अच्छे उत्पादन कैसे मिलता है, इस बात का ठोस सबूत आपके सामने रखता हूं।

जब अन्न का उत्पादन करनेवाले कई किसान फार्म के दौरे पर आते हैं तब उनका यही कहना होता है कि "अगर जल–सिंचन की सही व्यवस्था हो, तभी अच्छा उत्पादन मिलता है। जबकि सूखी खेती करनेवाले, जो सिर्फ बारिश के पानी से ही उत्पादन पाते हैं, उन्हे अगर बारिश का पानी कम मिले, तो खेतों में काफी नुकसान होता है। आपकी सेन्द्रिय कृषि में क्या इस समस्या को कोई समाधान है?"

यह वर्ष 1989 की बात है। भास्कर सावेजी की सेन्द्रिय खेती–पध्दति से हमें काफी लाभ हो रहा था। अतः कृषि का विस्तार बढ़ाने की इच्छा जगी थी। मगर इस बार हमें सेन्द्रिय खेती पध्दति से खेतों में फसल के प्रयोग करने की इच्छा हुई। इसी उद्देश्य से गुजरात राज्य के राजकोट जिले में हमने 20 एकड़ जमीन भी खरीदी थी।

राजकोट में बसने वाले एक किसान ने खेती में काफी नुकसान उठाया था। आधुनिक कृषि के चंगुल में वह इस तरह से फंस चुका था कि भारी कर्ज के कारण उसे 20 एकड़ जमीन सिर्फ 50 हजार रुपये में हमें बेचनी पड़ी थी। कम दाम मिलने का कारण था कि वह उपजाव जमीन बंजर हो चुकी थी। रासयनिक खाद के अधिक उपयोग के कारण जमीन में क्षार की मात्रा काफी बढ़ चुकी थी। दूसरी बात यह कि वहां पानी के लिए न तो कोई बोरवेल या कुआं था और न ही वहां बिजली या पक्की सड़क थी। इसलिए किसान की जमीन का कोई भी खरीददार नहीं था। मगर हमें उसी जमीन पर कुछ करने की इच्छा जगी। क्योंकि पैसा खर्च करके अच्छी जमीन पर तो कोई भी खेती करके दिखा सकता है मगर हमें तो कुछ नया कर दिखाना था। जब हमने वह जमीन खरीदी तब वर्षा ऋतु के शुरू होने में सिर्फ एक महीना ही रह गया था।

उसी जमीन पर मूंगफली लगाने की योजना बनायी। सावेजी ने योजना समझाते हुए कहा था कि "रासायनिक खाद से जमीन की उपजाव–शक्ति खत्म हो चुकी है मगर पास से पहाड़ के पानी को बहा ले जानेवाली एक नही है। जो इस वक्त गर्मी के मौसम में पूरी तरह से सूख चुकी है। उसी नही को खोदकर हम मिट्टी निकालेंगे और इस बिगड़ी हुई जमीन पर दो ईंच की परत बिछाकर पुरानी जमीन को ढंक देंगे। उस नई मिट्टी में हम बतार बनाकर मूंगफली के बीज बोएंगे। भले ही हमें इस साल उत्पादन न मिले मगर कम–से–कम हमें खाद के रूप में सेन्द्रिय पदार्थ तो जरूर मिलेगा, जिससे हम जमीन की उर्वरता को बढ़ा पायेंगे।" सावेजी की योजना के अनुसार जमीन की साफ–सफाई करके हमने नदी से लायी गयी मिट्टी से उसे ढंक दिया। मूंगफली के बीज को योजना के अनुसार बो दिया। 20 एकड़ जमीन के लिए 10,000 रूपये बीज पर खर्च हुए और नदी से मिट्टी लाने–बिछाने के 10,000 रूपये और खर्च हुए। इस तरह जमीन खरीदने, मिट्टी बिछाने और बीज खरीदने का कुल खर्च 70,000 रूपये आया।

सावेजी की कृषि की कार्य–पध्दति का यह एक प्रमुख नियम है कि, पहली–जुताई और बीज उग जाने के बाद जरूरत न हो, तो कभी भी बीज बोयी गई जमीन पर पाँव मत धरो। क्योंकि इससे पौधों को नुकसान होने की संभावना बढ़ जाती है। इस नियम को ध्यान में रखकर जब हमने बीज लगाये, तभ्झी हमने बीजों पर मिट्टी चढ़ा दी थी। बीज जहां लगाए थे, वह मिट्टी का छोटा पिरामिड कहिए या छोटा पहाड़, वैसा दिखायी पड़ता था। इसका कारण सावेजी ने समझाया कि "इससे बारिश का पानी जड़ो के पास नहीं ठहरेगा और पास में जो नाली होगी उससे अतिरिक्त पानी बह जायेगा। इस प्रकार मूंगफली के बीज को सिर्फ पानी की नमी ही मिलेगी। नाली में बारिश का पानी होने के कारण वहाँ ज्यादा घास निकलेगी जो कि मूंगफली को अधिक फायदा देगी।" इस तरह बिना जल–सिंचन के और वह भी सिर्फ बारिश के पानी से मूंगफली लगाने की योजना पूरी हुई। हमने मूंगफली लगायी सावे–पध्दति से, जबकि पूरे गाँव में मूंगफली लगायी गयी आधुनिक खेती–पध्दति से।

वर्षा ऋतु का आगमन समयानुकूल हुआ था। जितने भी किसानों ने मूंगफली की फसल बोयी थी, करीब–करीब सभी के बीज अंकुरित हुए थे। आधुनिक कृषि के नियमानुसार और पढ़े–लिखे लोगों की बतायी गयी कार्य–पध्दति के मुताबिक कार्य किया गया था। मगर हमें तो सावेजी की सेन्द्रिय खेति–पध्दति के मुताबिक कार्य किया गया था। मगर हमें तो सावेजी की सेन्द्रिय खेती–पध्दति में कुछ नहीं करना पड़ा था। बस पूरे के पूरे दिन आलसी बनकर खटिया पर सोते–सोते दूसरी बारिश होने की प्रतीक्षा करनी थी। हमारी मूंगफली अंकुरित होकर मंच जैसे छोटे पहाड़ पर खड़ी थी। और नाले में काफी घास भी निकली थी। हम तो घास को प्रभुजी का वरदान समझते हैं। इस कारण हमने उसे छुआ तक नहीं और इस प्रकार सूर्य की किरणें भी जमीन को छूने में असमर्थ थी। इस कारण पूरा खेत हरे रंग का दीखता था। सभी की आंखें आसमान पर लगी हुई थी कि कब वर्षो हो और मूंगफली को जरूरी पानी मिले। मगर अफसोस! सभी की आशा निराशा में बदल गयी। जरूरी पानी गिरा ही नहीं। जिन के पास जल–सिंचन की व्यवस्था थी उन्होंने फसल को सींच दिया, मगर हम जैसे कई किसान भाई थे, जिनके पास पानी का कोई साधन नहीं था। उनको सर पर हाथ रखकर रोने की नौबत आ गयी। मगर भाई, यह क्या चमत्कार हुआ कि हमारी बोयी हुई फसल ज्यूं की त्यूं हरी–भरी खड़ी रही। जबकि बिना–सिंचनवाली अन्य किसानों की फसल जलकर राख जैसी हो गयी थी। यानी पूरी तरह से सूख चुकी थी।

राजकोट किसान समाज में हमारी फसल को लेकर काफी चर्चा होने लगी। कि आखिर सच क्या है? यह जानने के लिए कई किसान भाई हमारे खेतों पर भी आये। सावेजी ने आय हुए किसान भाईयों को उनकी

गलती और सेन्द्रिय कृषि की विशेषता से अवगत कराया कि "आप लोगों ने सबसे पहली गलती यह की कि आधुनिक कृषि के नियम के अनुसार खरपतवार करके खेतों की सारी घासों को निकाल कर फेंक दिया जिसके कारण सूर्य की गर्मी से जमीन में मौजूद नमी खत्म हो गई। दूसरी गलती आप लोगों ने ज्वलनशील रासायनिक खाद डालकर की। जिसके कारण जो थोड़ी बहुत नमी बची थी वह भी खाद की गर्मी से बाहर निकल गई। इस प्रकार आप लोगों ने सारी नमी का बाष्पीकरण कर डाला। अपेक्षित पानी न मिलने के कारण बेचारा मूंगफली का पौधा सुख गया। जबकि मैंने कुछ नहीं किया। इसलिए नमी ज्यूं की त्यूं बनी रही।" मगर अब वर्षा न हुई तो हमारी फसल भी सूख जायेगी।'

आखिर में वर्षा हुई, मगर काफी देर से। फिर भी मूंगफली के सत्तर प्रतिशत पौधे बच गये। पानी मिल जाने के कारण फसल को नया जीवनदान मिल गया। मूंगफली के खेत की सिर्फ मिट्टी बदलकर हमने जो प्रथम प्रयोग किया था, उसमें हम सम्पूर्ण रीत से सफल रहे थे। हमें 20 एकड़ भूमि से पहले ही साल बिना पानी के मूंगफली का 4000 किलो उत्पादन मिला। जिसे बेचकर हमें 1,50,000 रूपये की आमदनी हुई थी। कुल मिलाकर हमारी लागत थी 70,000 रूपये सिर्फ चार माह में हमें 80,000 रूपये का मुनाफा हुआ था। साथ–साथ हमें यह भी जानने को मिला कि आधुनिक कृषि की मूंगफली की अपेक्षा प्राकृतिक कृषि की मूंगफली से तेल भी ज्यादा मात्रा में मिलता है।

इस प्रकार हमें यह अनुभव हुआ कि सावे पध्दति किसी भी क्षेत्र में सफलतापूर्वक हो सकती है। किसानों की ऐसी जमीन, जिसमें क्षार की मात्रा काफी बढ़ चुकी हो, उसे तालाब, नदी या पहाड़ के नीचे की मिट्टी से सिर्फ एक ही फसल से उपजाऊ बनाया जा सकता है। एक लाख की खाद लाने से कहीं बेहतर तो यह है कि दस हजार रूपये खर्च करके मिट्टी लाई जाए। इस प्रयोग के साथ हम अगर थोड़ा बहुत गोबर भी डालें तो सोने पे सुहागा वाली बात शत–प्रतिशत सच साबित हो सकती है। एक बात और सिध्द हुई कि व्यापार धंधे में मशीन पर लगाई लागत कम होती है, जबकि कृषि में लगाई रकम काफी बढ़ती है। इसी कारण काफी ऊँचे दाम में हमारी वह जमीन बेची गई। इस अनुभव से साबित होता है कि "**धन कमाने का उत्तम मार्ग कृषि ही है।**"